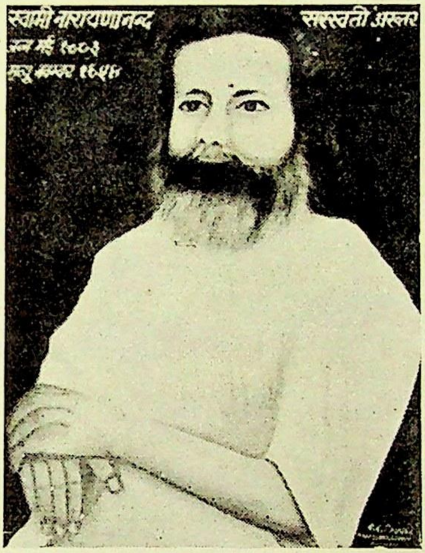
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर'



स्मृति ग्रन्थ

सं.: डा. शम्भुशरण शुक्ल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर'



स्मृति ग्रन्थ

सं.: डा. शम्भुशरण शुक्ल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

185472

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदरणीय
डॉ. रामविलास जी शर्मा
को
सादर

[signature]
15.3.91

सांस्कृतिक सर्वेक्षण समिति
पीलीभीत (उ.प्र.)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर'

सम्पादक
डॉ० शम्भुशरण शुक्ल 'अभीत'
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय
पीलीभीत (उत्तर प्रदेश)

097
185472
Central Library
185472
Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R.P.S
097
ARY-S

© : सम्पादकाधीन

प्रकाशक : सांस्कृतिक सर्वेक्षण समिति
पीलीभीत (उ० प्र०)

मुख्य वितरक :
विभूति प्रकाशन
के० 14, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

मूल्य : 125.00

संस्करण : 1990

वितरक : श्रीमती मंजुला शुक्ला
मंजूश्री प्रकाशन
प्राध्यापक निवास
उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत (उ० प्र०) 262001

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदाता मण्डल

डॉ० रामस्वरूप आर्य (बिजनौर)
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा (जयपुर)
डॉ० रमेश कुन्तल 'मेघ' (अमृतसर)
डॉ० प्रताप नारायण टंडन (लखनऊ)
डॉ० राजमल बोरा (औरंगाबाद)
प्रो० गणेशदत्त त्रिपाठी (इन्दौर)
डॉ० सरगू कृष्ण मूर्ति (बंगलौर)
श्री० रामनारायण अग्रवाल (मथुरा)
डॉ० सियारामशरण शर्मा (झांसी)
डॉ० महेन्द्र भानावत (उदयपुर)
वैद्य शरद कुमार मिश्र (सहारनपुर)
डॉ० जगदीश दत्त शर्मा (मुजफ्फरनगर)
डॉ० अविनाश चन्द्र अग्रवाल (मुरादाबाद)
डॉ० बृजेन्द्र अवस्थी (बदायूं)
डॉ० कु० रमा सिंह (जोधपुर)
डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे (सागर)
डॉ० यतीन्द्र तिवारी (कानपुर)
डॉ० इन्दिरा आचार्या (बरेली)
प्रो० सेवक वात्स्यायन (कानपुर)
डॉ० रणजीत कुमार साहा (दिल्ली)
डॉ० धन प्रकाश मिश्र (मेरठ)
डॉ० कर्णराज शेषगिरि राव (वाल्टेयर)
डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' (ज्वालापुर—हरिद्वार)
डॉ० योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण' (रुड़की)
डॉ० बटरोही (नैनीताल)
डॉ० बी० के० सिंह (आगरा)
डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ (नैनीताल)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

सम्मान्य डॉ० रामस्वरूप जी आर्य, रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बर्द्धमान कालेज, बिजनौर (उ०प्र०) की प्रेरणा से मेरे संयोजकत्व में सन् 1970 में पीलीभीत में 'सांस्कृतिक सर्वेक्षण समिति' का गठन हुआ—इसका उद्देश्य पीलीभीत का सांस्कृतिक सर्वेक्षण करना था। इसके बाद मैंने 'अमर-उजाला' दैनिक बरेली में एक लेख 'पीलीभीत : एक ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक परिचय'[1] प्रकाशित कराया जिसे काफी पसन्द किया गया। पांचाल परिषद बरेली के श्री अभय बाबू ने एक पत्र लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया।

श्री ए० एस० रतूड़ी—तत्कालीन कुलपति रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, ने संरक्षता तथा तत्कालीन आयुक्त रुहेलखण्ड मण्डल श्री श्याम बिहारी लाल ने समिति की अध्यक्षता स्वीकार कर समिति की गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। आगे चलकर समिति कुछ निष्क्रिय-सी हो गयी। समिति के सलाहकार सदस्य सर्व श्री बाबू वृन्दावनदास और डॉ० श्याम परमार तथा समिति के सम्मानित सदस्य वरिष्ठ पत्रकार श्री रामवरण मिश्र के स्वर्गवास से समिति की अपूरणीय क्षति हुई। कुछ युवा सदस्य अपने-अपने धन्धों में लग गए। अतः सर्वेक्षण का जितना कार्य होना चाहिए था, उतना न हो सका और उसकी गतिविधियां भी प्रकाशित न हो सकीं।

सर्वेक्षण के क्रम में मुझे स्वतन्त्रता सेनानी, लावनी के आचार्य, कवि, सम्पादक स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर' के बारे में पता चला कि वे पीलीभीत के थे और संस्कृत विद्यालय देवबन्द के अधिष्ठाता रहे थे। सन् 1976 में मेरी भेंट इलाहाबाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर सहारनपुर के वैद्य शरद कुमार मिश्र से हुई। उन्होंने बताया कि स्वामी जी ने उन्हें गोद में खिलाया था। मैंने उनसे स्वामी जी से सम्बन्धित एक लेख लिखने को कहा जो उन्होंने शीघ्र ही भेज दिया। इसके बाद स्वामीजी से सम्बन्धित सामग्री की खोज

---

1. सितम्बर 7, 1973

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना प्रारम्भ किया पर विशेष सफलता नहीं मिली। इस दृष्टि से मैं कानपुर गया और लाठी मोहाल मोहल्ले में लक्ष्मणदास धर्मशाला, जहां स्वामीजी रहते थे, पहुंचकर श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा, जो स्वामीजी के प्रमुख सहयोगी तथा प्रशंसक थे, तक पहुंचने की चेष्टा की। यहां ज्ञात हुआ कि अरोड़ा जी का स्वर्गवास हो गया है। उनकी पुत्रवधू श्रीमती शान्ति अरोड़ा से भेंट हुई पर वे कोई विशेष जानकारी देने में असमर्थ रहीं।

नगर के प्रसिद्ध कवि श्री रमेशचन्द्र त्रिवेदी 'पुष्प' से एक दिन बातचीत के दौरान पता चला कि स्वामी जी का कुछ साहित्य उनके पास है तथा कुछ कुमार विजयी नाम के सज्जन शोधकार्य हेतु ले गये जो उन्होंने वापस नहीं किया। पुष्प जी ने स्वामीजी कृत 'लावण्यलता' की हस्तलिखित प्रति तथा 'लावनी का इतिहास' की प्रकाशित प्रति मुझे सौंप दी। इसके साथ ही संस्कृत विद्यालय देवबन्द की वार्षिक रिपोर्ट तथा स्वामी जी का एक इश्तहार भी मुझे दिया। संस्कृत विद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट में दिए पते से मैंने एक पत्र डॉ० सत्यव्रत शर्मा अजेय को लिखा पर कोई उत्तर नहीं मिला। एक दिन 'नवभारत टाइम्स' में पढ़ा कि गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर स्वामीजी का शताब्दी समारोह मना रहा है। मैंने गुरुकुल कांगड़ी के कुलपति महोदय को पत्र लिखा पर कोई उत्तर नहीं मिला।

फिर यह तय किया गया कि जो सामग्री प्राप्त हुई है उसी को एक स्मारिका रूप में प्रकाशित किया जाए। इसी क्रम में एक बार फिर चेष्टा की गई। 'स्वामी नारायणानन्द सरस्वती स्मृति साहित्य समारोह' के नाम से आयोजन समिति का गठन हुआ। विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों तथा लावनी कला के विशेषज्ञों की सलाहकार समिति बनायी गयी। इसी क्रम में मैंने एक पत्र देवबन्द के संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्यजी को लिखा। उन्होंने उत्तर तो नहीं दिया पर मेरे पत्र को डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' के पास पहुंचा दिया। इसके लिए मैं उनका विशेष रूप से आभारी हूं क्योंकि इसके बाद कार्य तीव्र गति से चला। डॉ० अजेय ने मुझे श्रीराम शर्मा 'राम', कविवर गुलाब खण्डेलवाल, सुप्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के पते दिये। मैंने सभी को पत्र लिखे और सभी ने लेख भेजे। मैं इन सभी महान लेखकों का हृदय से आभारी हूं। इसके साथ ही डॉ० अजेय से पता चला कि डॉ० सुधेश ने स्वामी जी पर एक लेख 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित कराया था। मैंने उन्हें लिखा और उन्होंने उसकी फोटोस्टेट प्रति मुझे भेज दी, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूं। आदरणीय दादा श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी जी ने भी स्वामी जी को श्रद्धांजलि अर्पित की, मैं उनका कृतज्ञ हूं।

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने मेरठ विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद के 'लोक साहित्य अंक' में प्रकाशित 'लावनी' लेख को स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित करने की अनुमति दी। श्री रामनारायण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी की ख्याल लावनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्परा' से कोई भी अंश लेख के रूप में प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की इसके लिए मैं इन दोनों लेखकों का आभार व्यक्त करता हूं।

'महाराष्ट्र का हिन्दी लोक काव्य' के लेखक श्री कृष्ण जी गंगाधर दिवाकर से मेरा पत्र-व्यवहार होता रहता था, परन्तु इधर श्री राजमल बोरा से विदित हुआ कि उनका स्वर्गवास हो चुका है। मैंने उनकी पुस्तक का थोड़ा-सा अंश लेख के रूप में साभार प्रकाशित किया है, इससे ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ी है।

सर्वश्री डॉ० रामस्वरूप आर्य, डॉ० प्रतापनारायण टंडन, डॉ० कमल पुंजाणी, डॉ० कर्ण राजशेषगिरि राव, डॉ० के० एन० गोस्वामी, डॉ० महेन्द्र भानावत, डॉ० विष्णुदत्त राकेश का विशेष रूप से आभारी हूं जिनके लेखों से ग्रन्थ की गरिमा बढ़ी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तीन खंडों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में स्वामी जी के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा लावनी विधा से सम्बन्धित लेख दिये गए हैं। दूसरे खण्ड में 'पीलीभीत जनपद' से सम्बन्धित सामग्री है जिसमें पीलीभीत के भौगोलिक, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, साहित्यिक, बोली, संगीत, से सम्बन्धित लेख हैं। मेरी दृष्टि से यह खण्ड पूर्ण नहीं है और भी बहुत कुछ आना चाहिए था पर न आ सका, पाठक तथा समीक्षक इसे मेरा प्रमाद भी समझ सकते हैं और मेरी विवशता भी। मैं आचार्य विश्वेश्वर के जीवन वृत्त तथा साहित्य सेवा पर लेख देना चाहता था पर उनके भतीजे से वांछित जानकारी न मिल सकी और मैं भी वृन्दावन न जा सका। इसी प्रकार उर्दू शायर रहमानी साहब पर बार-बार आग्रह करने पर भी अपने साहित्यिक मित्रों से एक वर्ष से अधिक हो जाने पर भी लेख प्राप्त न कर सका। आशा है—इस आयोजन के उपरान्त उन्हें प्रेरणा मिलेगी और वे या तो मेरा सहयोग करेंगे अथवा स्वयं ऐसा ही कोई आयोजन कर पीलीभीत के भूले-बिसरे साहित्यकारों को प्रकाश में लायेंगे।

तृतीय खण्ड में स्वामीजी का एक पत्र, उनके जब्तशुदा दो गीत 'सन्त सन्देश' में प्रकाशित कविताएं तथा लेख, 'लावण्यलता' से सात ख्याल दिए गए हैं। इससे पाठकों को स्वामीजी की रचनाओं का रसास्वादन करने का भी अवसर मिलेगा। इसके साथ ही स्वामीजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'लावनी का इतिहास' का भूमिका भाग भी संक्षिप्त रूप में दे दिया गया है जिससे पाठकों को लावनी के स्वरूप की जानकारी के साथ-साथ उनके आचार्यत्व की झलक भी देखने को मिलेगी।

स्वामीजी द्वारा सम्पादित 'संत सन्देश' के दोनों अंक उपलब्ध कराने के लिए मैं स्वामीजी के शिष्य श्री रामऔतार ब्रह्मचारी का आभारी हूं। डॉ० अजेय के सहयोग से स्वामी जी से सम्बन्धित बहुत-सी सामग्री का पता चला। स्वामीजी की लावनियों के कई रजिस्टर बरेली में मोहल्ला चाहबाई के श्री बाबूराम ख्यालगो के पास हैं। मैं उनसे मिला। वे भी उन खस्ताहाल रजिस्टरों का उद्धार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हैं पर इसके लिए धन और श्रम दोनों की आवश्यकता है। इसके साथ ही कुछ सामग्री ज्वालापुर में भी है। यदि सम्भव हुआ तो समिति इस सामग्री के उद्धार की चेष्टा करेगी।

स्व० बनारसी दास चतुर्वेदी जी स्वामीजी पर अपार श्रद्धा रखते थे। जो उनके विभिन्न पत्रों तथा कुछ पुस्तकों की भूमिकाओं से विदित होता है। मैंने उन पत्रों, विचारों, भावनाओं को 'बनारसी दास चतुर्वेदी और स्वामी जी' शीर्षक से संकलित किया है। इसी प्रकार महाप्राण निराला और स्वामी जी की नोंक-झोंक के एक-दो प्रसंगों को भी संकलित कर दिया है। विश्वास है—पाठकों को इससे विशेष आनन्द मिलेगा।

लेखों में भूमिका स्वरूप, कुछ लेखकों ने कुछ ऐसी बातें दी हैं जिनसे पुनरावृत्ति हुई है। मैंने उन्हें हटाना उचित नहीं समझा। संस्मरणों में कहीं मुझे ऐसा लगा है कि संस्मरण का कोई अंश लेखक की विस्मृति से ग्रसित है जैसा कि स्वाभाविक है वहां पर मैंने सम्पादकीय टिप्पणी देकर उस तिथि को सही कर दिया है। इससे पाठकों को वास्तविक तिथि जानने में सहायता मिलेगी। मैं लेखकों के प्रति पूर्ण आदर और श्रद्धा के साथ नत-मस्तक होते हुए उनसे निवेदन करूंगा कि वे इसे अन्यथा न लेंगे।

पाण्डुलिपि तैयार करने में कु० रेणु सक्सेना शोध छात्रा रुहेलखण्ड विश्व-विद्यालय ने विशेष श्रम किया है; मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं। इसके अतिरिक्त महेन्द्र प्रताप सिंह-उप निबन्धक रजिस्ट्रेशन हल्द्वानी, राकेश कमल मनोरंजन कर-निरीक्षक बड़ौत, डॉ० (श्रीमती) ऊषा गर्ग शाहजहांपुर, डॉ० (श्रीमती) किरण लता गर्ग बड़ौदा, देवेन्द्र कपूर, एम० एल० शर्मा एडवोकेट अश्वनी कुमार का विशेष सहयोग मिला। मैं अपनी ओर से तथा समिति की ओर से इनकी मंगल कामना करता हू।

मनुष्य स्वयं में अधूरा है तब उसकी कृति में पूर्णता कहां तक होगी? पूर्णता के लिए प्रयत्न करना हमारा धर्म है। हमने चेष्टा की है। सफलता कहां तक मिली है और असफलता कितनी रही है—इसका उत्तर विज्ञ पाठकों और सुधी समीक्षकों पर छोड़कर अपने सहयोगियों तथा असहयोगियों—सभी को प्रणाम करता हूं।

दीपावली, 1989 —शम्भु शरण शुक्ल 'अभीत'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

अनुक्रम

खण्ड : एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंड-दो

पीलीभीत दर्शन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड-3

स्वामीजी की कलम से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड : एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानंद सरस्वती 'अख्तर'



पता क्या खाक बतलाएं निशां या वे निशां अपना।
लगा विस्तर जहां बैठे वहीं समझो मकां अपना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धांजलियां

'अत्यन्त दुख के साथ यह समाचार पढ़ा जायेगा कि 11.11.1954, वृहस्पतिवार को पीलीभीत में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यसेवी स्वामी नारायणानन्द अख्तर का देहावसान हो गया। स्वामीजी बड़े ही मिलनसार और उदारचित्त मानव थे। प्रताप परिवार उनके निधन से अत्यन्त दुखित है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह कुटुम्बियों को इस आघात को सहने का बल दे तथा स्वामीजी की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।'

(सम्पादक—दैनिक प्रताप, 28.11.1954)

नारायण आनन्द ब्रह्म से मिले पूर्ण आनन्द मिला।
अक्षर-अक्षर मिले सरस गति मिली रसीला छन्द मिला।
जिसके लिए जीव जगती में सदा तड़फता रहता है।
मिला, हां मिला उसी अंक में वास परम स्वच्छन्द मिला॥

—(गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही')

मधुमय भाव विलास, कोष आनन्द संभाले।
नारायण के संग स्वयं भू की प्रतिभा ले॥
गही लेखनी, रही शारदा का घर घाले।
बस 'खयाल' के ब्याज काव्य के रत्न निकाले॥
'रत्नाकर' सा गहन डर अपनी उपमा आप थे।
सच तो है 'प्रणयेश' यह, उनके कार्य अमाप थे॥

(प्रणयेश शुक्ला—कानपुर के प्रसिद्ध कवि)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलख-बिलखकर रोई कविता टूट गया वीना का तार ।
मूर्छित हो गिर पड़ी 'लावनी' लुटा चंग का भी शृंगार ।।
रोवेगा इतिहास स्वयं भी और रुलायेगा जग को ।
चले गए स्वामीजी सुरपुर होकर यश-रथ पर असवार ।।
(सत्यव्रत शर्मा, अजेय—साप्ताहिक प्रताप, 20 जून-1955)

'कविता का संगीत करके शुभ शृंगार ।
स्वामीजी सुरपुर गये तज असार संसार ।।'
(शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन')

'शालिग' सोच न कीजिए प्रकटत सो लय होत ।
नारायण से मिल गई नारायण की ज्योति ।।
(शालिग राम बजाज)

'बाद मुद्दत के मिली यक वृक्ष की छाया हमें ।
वो भी हमसे छीन ली इस मौत के पतझर ने ।।'
(शंकर लाल कनौजिया)

"अन्तरतल में गूंज रहे जिनके स्वर ।
श्री स्वामी नारायणानन्द जी 'अख्तर' ।।
संस्कृत, हिन्दी, उर्दू भाषा के माहिर ।
कवि, सम्पादक, लावणीकार जग जाहिर ।।
जिनने कि 'संत सन्देश' कवीन्द्र निकाला ।
रंगत ख्याल में जिनका ठाठ निराला ।।
बोली स्वतन्त्रता जिनके जय गानों में ।
लघुता दिखलाई देती उपमानों में ।।"
(श्री श्रीनिधि द्विवेदी—'प्रताप' कानपुर, 20 जून 1955)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कवे ! तुम्हारा काव्य, काव्य की ज्यों गरिमा,
लावनी छन्द का सब इतिहास तुम्हारा है।
हर शब्द-शब्द के अनुगुंजन मय अधरों पर,
माधुर्य भरा मोहक मृदुहास तुम्हारा है।।
हे ! आजादी के सेनानी, साहित्यकार,
अन्तरतम के यह भाव सुमन स्वीकार करो।
कविता की किंचित कड़ियों के ही मिस मानो,
तुम आज 'रमन' का विनत नमन स्वीकार करो।।

(राधा रमण त्रिवेदी 'रमन')

'पूज्यपाद स्वामीजी महाराज देश और धर्म की एक विभूति थे। अपने व्यक्तित्व, चरित्र और कृतित्व के कारण वे वन्दनीय हैं।'

(श्रीनारायण चतुर्वेदी—सम्पादक के नाम 1.1.83 का पत्र)

'हे 'लावनी' गायक ! कवे ! हे देशभक्त ! तुम्हें नमन ।
अंजलि भरे आंसू तुम्हें 'श्रद्धांजलि' देता वतन ।।'

(ब्रज विनोद कुमार मिश्र)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती और बनारसीदास चतुर्वेदी

(स्व० बनारसीदास चतुर्वेदी स्वामीजी पर अपार श्रद्धा रखते थे। उनके पत्रों से यह बात स्पष्ट होती है। स्व० बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी को लिखे गए पत्रों के वे अंश जिनमें स्वामीजी का श्रद्धा के साथ स्मरण है—द्रष्टव्य है। इसके साथ ही कुछ अन्य प्रसंग तथा पत्र भी—सं०)

(1)

99, नार्थ एवेन्यू
नई दिल्ली
26.9.56

प्रिय नरेश जी,

आपने मकान बनवा लिया, यह बहुत अच्छा किया। यद्यपि वह बहुत खर्चीला सिद्ध हुआ। उसमें एक कमरा साहित्यिकों के चित्रों से सुसज्जित कर दीजिए। अपनी जीविका के कार्य के बाद जो भी समय बचे इसमें इसी प्रकार के मसाले को इकट्ठा करते रहिए।

कल ही मुझे स्वामी नारायणजी का दाढ़ीवाला चित्र मिला। उसका तो एक इन्लार्जमेन्ट आपके कमरे में होना चाहिए। उनकी पुण्य तिथि निकट ही है। खयालगो लोगों के लिए उन्होंने बहुत काम किया था।[1]

1. प्रेरक साधक—खण्ड चार, प्रेरक पत्र (बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ), पृ० 496

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2)

फीरोजाबाद
8.11.61

'प्रिय भाई नरेश जी,

पालागन।

अपने निबन्धों का संग्रह अवश्य और शीघ्र कीजिए। मेरे गुरु स्व० पं० लक्ष्मीधरजी बाजपेयी पर आपने बहुत अच्छा लिखा था। इसे तो आप संग्रह में रखेंगे ही। उग्र जी के आत्मचरित की आलोचना भी खासी अच्छी थी। स्वामी नारायणानन्द के विषय में आपने लिखा या नहीं? वे भी एक संस्मरण के हकदार हैं।[1]

टीकमगढ़ से 4.7.51 को बनारसीदास चतुर्वेदी ने डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'[2] को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि वे स्वामी नारायणानन्द को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। पत्र इस प्रकार है :

'प्रियवर

वन्दे

स्वामी नारायणनन्दजी को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं। उनकी उस कविता की ध्वनि 'अपने को आप गंवा बैठा'[3] अब भी मेरे कानों में गूंज रही है जो उन्होंने ना० प्र० सभा आगरे में पढ़ी थी।…'विशाल भारत' में उनका एक विस्तृत लेख भी छपा।…खयालगो सम्प्रदाय के इतिहास लिखाने की जरूरत है।…कृपया स्वामीजी को मेरा प्रणाम कहिए। उनके दर्शन मुझे अवश्य करने हैं।'

डॉ० शर्मा के अनुसार इस पत्र के पश्चात ही स्वामीजी ने 'लावनी का इतिहास' लिखना प्रारम्भ किया था।

एक ग्रन्थ की भूमिका में भी बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्वामीजी का स्मरण किया है :

'लावनी साहित्य के बारे में अब तक जो कार्य किया है उसकी चर्चा अवश्य की जाए। जहां तक मैं जानता हूं, स्वामी नारायणानन्द ने नागरी प्रचारिणी सभा

1. प्रेरक साधक, पृ० 498
2. उपाचार्य—गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार।
3. 'सुख सुगन्ध लोभी मन मधुकर काम कमल पर जा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फंसकर अपने को आप गमा बैठा।''
—लावण्यलता, खयाल रंगत, लंगडी रूपक अलंकार, वैराग्य नं० 6

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरा की एक मीटिंग में लावनी साहित्य पर अपना लेख पढ़ा था। आगे चलकर मैंने शायद 'विशाल भारत' में छापा भी था।"[1]

'स्वामी नारायणानन्द सरस्वती स्मृति ग्रन्थ' के सम्पादक को चतुर्वेदी जी ने लिखा था :

चौबान मोहल्ला
फीरोजाबाद
26.11.79

प्रियवर,

आपका 11.11.79 का पत्र अभी मिला।

आपका अभिप्राय खयालगो नारायणानन्द जी से तो नहीं है? यदि उन्हीं से अभिप्राय हो तो उनके बारे में फिर लिखूंगा। उनकी एक पुस्तक खयालगो लोगों पर थी।

विनीत
बनारसीदास'[2]

1. बनारसीदास चतुर्वेदी—भूमिका-हिन्दी की खयाल लावनी परम्परा, लेखक, रामनारायण अग्रवाल, पृ० 1
2. आगे पत्र व्यवहार नहीं हुआ—सं०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती और महाप्राण निराला

('कवीन्द्र' के माध्यम से स्वामी नारायणानन्द सरस्वती और 'मतवाला' के माध्यम से महाप्राण निराला एक-दूसरे पर व्यंग्य करते रहते थे। नोंक-झोंक के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं।—सं०)

'कवीन्द्र के गतांक में छायावाद पर एक नोट निकला था। उसमें बंग भाषा के नक्व ालों की ओर संकेत था कि 'कहां चला जो चाल कौवा हंस की उसका चलन बिगड़ा' कहावत के अनुसार यह विकृत छायावाद हमारे अहंमन्य स्वयंभू कवि को न ले डूबे।...अधिक कहने की जरूरत नहीं 'मतवाला' को देखने वाले जानते हैं कि इसका काम ही भड़ैती है।'

'आजकल कुछ ऐसी शैली ही निकल गई है कि जो नये कवि होते हैं, वे आंधी मेह, बवंडर, खंडहर, बादलराग, वीणा के तार और जीवन-स्रोत के साथ ही दीख पड़ते हैं, ऐसे कवियों को हम झंझावाती कवि कहते हैं, पर निरालाजी उनमें बढ़े-चढ़े हैं, इसमें सन्देह नहीं।...क्या मजाल जो कोई कविता समझ जाए, इसे तो खुद समझे या खुदा समझे...मतवाला के उपरोक्त अंक में ही एक रचना 'बादल राग' है, उसको कविता कहना तो मानो वाग्देवी की हंसी करना है और अपना जी कुढ़ाना है।...हम प्रत्येक लाइन की समालोचना न करके केवल मोटी-मोटी भूलें दिखाते हैं। जैसे—'स्वर्ग के अभिलाषी हे वीर!' बादल भी क्या कोई मनुष्य है, जो स्वर्ग का अभिलाषी होगा। वह तो सदा स्वर्ग में ही निवास करता है। अभिलाषी की जगह यदि वे अधिवासी कर देते तो शायद ठीक रहता।

छन्द का प्रवाह कैसा रहता है, उसे देखकर हमें मुड़िया विद्यालय का पहाड़ा बांचने वाले बालकों की याद आ जाती है—वे इस तरह मस्त होकर बांचते हैं:

पन्द्रह
दूना तीस
तियां पैंतालिस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौका साठ
पना पचहत्तर
छक्का नब्बे

पाठकगण देख लें कि निरालाजी के छन्द में और इसमें कितना साम्य है ।[1]

निराला ने लिखा, छायावाद पर आपने जो लिखा है, उसे पढ़कर हमें एक देहाती कहावत याद आ गई । किसी लड़के ने अपने पिता से कहा था, बाबूजी मैं भी फफीम खाऊंगा । पिता ने जवाब दिया, बेटा पहले नाम सीख लो, फिर फफीम खाना ।[2]

पीलीभीत के वरिष्ठ पत्रकार स्व० रामवरण मिश्र ने एक बार स्वामी नारायणानन्द स्मृति ग्रन्थ के सम्पादक शम्भु शरण शुक्ल को बताया—संन्यासी स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने जब कानपुर से 'कवीन्द्र' निकाला तो 'मतवाला' ने लिखा—संन्यासी होना अलग बात है और सम्पादक होना अलग बात ।

'हिन्दी में सम्पादक बनना काम बड़ी आसानी का ।
चलती नाव यहां बालू पर काम नहीं है पानी का ।'

---

1. चाप चरन चौबे—'मतवाले का मतवालापन, भाद्रपद सम्वत् 1981, 33-34 (चाप चरन चौबे—स्वामीजी का प्रच्छन्न नाम—सं०)

2. डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना' (प्रथम खण्ड) के पृ० 63 पर यह उद्धरण दिया है । डॉ० शर्मा ने लिखा है, 'किन्हीं स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने छायावादी कविता का मज़ाक उड़ाया था । निराला ने उन्हें आड़े हाथों लिया ।' ये स्वामी नारायणानन्द सरस्वती कोई और नहीं—लावनी के आचार्य 'कवीन्द्र' के सम्पादक स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर' थे—सं० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्मुख और बहिर्मुख के उत्तम संगम—स्वामी जी

□ कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

मेरी आयु तब होगी दस वर्ष की। मैं देवबन्द के देवीकुण्ड संस्कृत विद्यालय में लघु-सिद्धान्त कौमुदी पढ़ता था। पढ़ाई की दृष्टि से मैं उन दिनों 'थर्ड क्लास' विद्यार्थी था। तभी मैंने एक दिन देखा कि एक भरे-पूरे शरीर के संन्यासी वहां कहीं से आए हैं। वस्त्र तब उनके गेरुवा थे। मेरा ध्यान जिस बात ने उनकी ओर आर्कषित किया, वह उनका एक वाद्य था। खंजरी वाद्य मैंने नटों के पास देखा था, जो गलियों में घूम-घूमकर कला दिखाने का काम किया करते थे। यह वाद्य भी वैसा ही था, पर खंजरी से 4-5 गुना बड़ा था। इस वाद्य ने मेरा ध्यान, दो-तीन दिन देखकर इसलिए आर्कषित किया कि इसे शहर जाते समय वे अपने बाएं कंधे पर कमर की ओर लटका लेते थे। यह मुझे अजीब-सा लगा, क्योंकि मैंने दण्डधारी और चिमटाधारी साधु तो देखे थे, पर यह नयी चीज थी।

पढ़ाई में थर्ड क्लास होकर भी मुझमें एक चैतन्य बिन्दु पांच वर्ष की आयु से ही कुलबुलाने लगा था। इस वाद्य को देखकर भी वह कुलबुलाया। एक दिन मैं अकेला स्वामी जी की कोठरी में चला गया। मुझमें तीव्र जिज्ञासा भी थी और झिझक भी, पर स्वामी जी ने मुझे देखते ही आत्मीयता से अपने पास बैठा लिया और मेरी पढ़ाई की बात पूछी। झिझक ने झटका खाया और मेरा प्रश्न स्वामी जी के सामने आ टपका—'आप यह बड़ी खंजरी कंधे पर क्यों रखते हैं, स्वामीजी?' सुनकर वे हंस पड़े, तो मैं झेंपा, पर उन्होंने सहजता से कहा—'यह खंजरी नहीं है, इसे चंगा कहते हैं और इसे हम गाते समय बजाते हैं।' मैंने चपलता से कहा—'जैसे मेरी मां, गीत गाते समय ढोलक बजाती है?' सुनकर बहुत खुश हुए और मुझे कलाकन्द की एक डली खाने को दी।

संयोग देखिए कि दूसरे ही दिन जब मैं देवीकुण्ड के बड़े तालाब में तैर रहा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, वे शौच होकर आए और पौड़ियों पर बैठकर मिट्टी से हाथ धोने लगे। मैंने दूर से देखा, तो तैरकर उनके पास आ गया और कहा—'स्वामी जी, अपना कमण्डलु मुझे दीजिए, मैं कुल्ला करने के लिए आपको बढ़िया पानी लाकर दूंगा।' स्वामी जी ने कमण्डलु मुझे दे दिया, मैं तैरकर थोड़ी दूर गया और वहां कमण्डलु पानी से भरकर फिर स्वामी जी के पास तैर आया—'स्वामी जी, किनारे का पानी मैला है, यह लीजिए।' वे कुछ देर मुझे देखते रहे, फिर उठ गए। उस दिन से यह नैतिक कर्म हो गया कि वे मुझे इशारे से बुलाते और कलाकन्द की डली दे देते।

एक दिन मैं उनकी कोठरी में गया, तो देखा कि वे गुनगुना रहे हैं और कुछ लिख रहे हैं। मुझे यह अजीब-सा लगा और यह भी कि उन्हें मेरे आने का बहुत देर तक पता ही नहीं चला। काफी देर तक मैं इस दृश्य का आनन्द लेता रहा। यह भी आश्चर्य है कि मुझे यह दृश्य अच्छा लगा कि वे गुनगुनाएं और लिखें, लिखें और गुनगुनाए। कुछ देर बाद उन्होंने सिर ऊपर उठाया, मुझे लाड़ से पास बैठाया और कलाकन्द की डली दी। मैंने पूछा—'स्वामी जी, यह आप क्या लिख रहे हैं?' उनके उत्तर में मैं खो गया—'यह कविता है।' मैं कुछ नहीं समझा, पर वे मेरी बेसमझ को समझ गए। समझाया—'एक तो वह लिखा जाता है, जिसे पढ़ते हैं, एक वह, जिसे गाते हैं;' स्वामी जी ने दो पंक्तियां गाईं। मैंने उद्बुद्ध होकर कहा—'स्वामी जी, जैसे अमरकोश के श्लोक! स्वामी जी ने मुझे अपने से लगा लिया और बहुत थपथपाया।

कई दिन बाद वे मुझे खेतों पर घूमने ले गए। वहां बैठकर उन्होंने कहा—'कन्हैयालाल, तुम्हारे भीतर जागती आत्मा है। तुम्हें किसी पाठशाला में नहीं पड़े रहना है, तुम्हें तो ऊंचे आसन पर बैठना है।' उस दिन से यह हो गया कि मैं उनकी कोठरी में जाता तो वे मुझे कुछ पंक्तियां किसी कविता की सुनाते। एक दिन ऐसे ही क्षण में मेरा ध्यान उनके चंग की तरफ गया। उन्होंने तुरन्त चंग उठा लिया और उस पर अपनी उंगलियां नचाते हुए उन्होंने एक कविता गायी। मुझे बहुत अच्छा लगा। फिर एक दिन वे मुझे एक सभा में ले गए। वहां बहुत आदमी थे और एक आदमी चंग बजाकर गा रहा था। स्वामी जी को देखते ही सब खड़े हो गए और उन्हें अच्छे स्थान पर बैठाया। बाद में स्वामी जी ने भी काफी देर गाया, वे सब वाह-वाह करते रहे। उठकर चले, तो मैंने कहा—'स्वामी जी, इन लोगों को गाना नहीं आता, आप अच्छा गाते हैं। तभी तो आपको अच्छी जगह बैठाया था!' स्वामी जी ने मेरे सिर पर हाथ रखकर बहुत प्यार से कहा—'बेटा, तुम भी इसी तरह अच्छे आसन पर बैठोगे। तुम पर भगवान की कृपा है।' एक दिन वे हमारे घर आए और उन्होंने पिताजी से भी मेरे बारे में बात की। तभी तो कहता हूं कि श्री स्वामी नारायणानन्द सरस्वती मेरे भविष्य के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व प्रथम भविष्यद्रष्टा थे। उनके सम्पर्क में जो भी आया, उनके बिम्ब से प्रतिबिम्बित हुआ। वे प्रतिभा को परखते थे, उसे पोषण देते थे, संवारते थे। वे जीवन के श्रेष्ठ साधक थे।

1920-21 के असहयोग आन्दोलन के आते ही उन्होंने गेरुवा वस्त्रों का परित्याग कर दिया था और सफेद खादी का बनियान और सफेद खादी की लुंगी ही उनका वेश हो गया था। मैं भी इसी आन्दोलन में पढाई छोड़कर राजनीति से जुड़ गया था। उन्हीं दिनों की बात है। वे देवबन्द आये हुए थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा—'स्वामी जी, संन्यास की पृष्ठभूमि तो विराग है, पर आप में तो पूरे वेग से मानव के राग की, राष्ट्र के राग की, साहित्य के राग की शमा जलती है, आपने संन्यास क्यों लिया?' प्रश्न सुनकर वे अपने अतीत में खो गये और काफी देर चुप रहे। फिर वे खुल पड़े। जो कुछ उन्होंने कहा, उसका सार यह है कि किसी ऐसे पारिवारिक आदमी से, जिसे वे पूर्ण विश्वास के साथ अपना बहुत कुछ मानते थे, गहरी चोट लगी, उनका राग विराग में बदल गया और उन्होंने दण्डी स्वामी का रूप ले लिया। कहकर भी वे बहुत देर अपने में लीन रहे, मुझे लगा कि वे अतीत के उसी विश्वास और अविश्वास के वातावरण में रम रहे हैं। थोड़ी देर में वे उससे बाहर आये, बोले—'हां!'

मैंने उनमें तल्लीन हो, अत्यन्त कोमल स्वर में पूछा—'स्वामी जी, संन्यास लेने के बाद आपकी जीवनचर्या का क्या रूप बना?' उनका उत्तर था—'मैं कुछ दिनों बाद ही हिमालय चला गया और एकान्त-साधना में रम गया।' मैंने उनके मौन भाव को और भी सधी उंगलियों से उधेड़ा—'स्वामी जी, कहां हिमालय की मौन-साधना और कहां खयालबाजी के कई-कई दिन चलने वाले ये दंगल! आप शिखर से एकदम इतने नीचे कैसे उतर आए?' उनका उत्तर फूट पड़ा—'पुरानी बात है, ठीक स्मरण नहीं कि कुम्भ या कोई और पर्व था, मैं अपनी कन्दरा से उठ चला, तो हरिद्वार जा टिका। इधर-उधर घूमा, चारों ओर आदमी ही आदमी, श्रद्धा से ओत-प्रोत और आनन्द से अभिभूत, स्वयं मैं कन्दरा और कुम्भ के बीच, घड़ी के पैण्डुलम-सा।

इसी मनस्थिति में उस छोटे पुल पर आ-खड़ा हुआ, जो ब्रह्मकुण्ड और गंगा-प्लेटफार्म को जोड़ता है। पुल के नीचे गंगा, हिमालय से आती और दक्ष की राजधानी कनखल की ओर प्रवहमान गंगा, मेरे पीछे दूर उत्तुंग शिखर हिमालय, सामने आगे बढ़ती गंगा, हिमालय स्थिर, गंगा गतिशील। मेरे अन्तर में एक प्रश्न पूरे जोर से गूंजा—'जीवन की सत्य स्थिरता है या गति? एकान्त है या समाज?' विचारों में आंधियां उठ खड़ी हुई, एक नवीन सत्य का उदय हुआ। जीवन का सम्पूर्ण सत्य यह है कि हमारे संकल्प अन्तर्मुख हों और कर्म बहिर्मुख। बस, मैंने अपने दण्ड को गंगा में प्रवाहित कर दिया—समाजार्पणमस्तु।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1930 के सत्याग्रह आन्दोलन में देश की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने जेल-यात्रा की, यह हुई एक स्थूल बात, पर स्वामी जी के पूरे जीवन का ही चित्र यह है कि अन्तर्मुख और बहिर्मुख का समग्र संयोजन था उनका व्यक्तित्व। उन्होंने कोई चार हजार ख्याल लिखे। जितने ख्याल जिस नगर में लिखे, वहां से चलते समय उन्हें बस्ते में बांधकर किसी मित्र-भक्त के पास रख दिया, पर महत्त्वपूर्ण बात यह कि वह बस्ता फिर कभी उन्हें याद ही नहीं आया। कौन जाने उनके कृतित्व को अपनी भुजाओं में दबाए कुछ बस्ते आज भी इस प्रतीक्षा में हों कि कोई खोजी आकर इस साहित्य-सम्पदा को संभाले, तो हम उत्तरदायित्व से मुक्त हों। उनके ख्याल-साहित्य का सर्वांगीण प्रतिनिधित्व 'लावण्य लता' ही करती है। यह पुस्तक भी आदरणीय सनेही जी के आग्रह से ही प्रकाशित हो गई थी और उन्होंने ही उसकी भूमिका लिखी थी।

इस साहित्य के अतिरिक्त उनकी कविताएं भी कम नहीं हैं, पर उनका हाल भी निराला ही है कि कुछ कविताएं छपीं, बटीं और राम का नाम। उनकी राष्ट्रीय कविताएं दमदार थीं, उद्बोधन-साहित्य का उत्तम उदाहरण! वही बात कि न कहीं जमाव, न कहीं लगाव, 'तेरी महफिल में जिधर बैठ गये, बैठ गये!'

अब एक संस्मरण। देवबन्द का देवीकुण्ड संस्कृत विद्यालय भी उनका एक पड़ाव था। बिना सूचना आते, ठहरते और किसी दिन कहते—'अच्छा भाई, अब चलें।' हम कहते—'स्वामी जी, अभी और रहिए।' उनका एक ही उत्तर—'हां भाई, फिर आएंगे।' कोई मुझ-सा पूछता—'स्वामी जी, कब?' उनका एक ही उत्तर—'जब तुम बुलाओ या जब हमारा मन कहे।' विद्यालय की आर्थिक स्थिति जब गड़बड़ाती, उन्हें आवाज दी जाती और वे आ जाते। नगर में घूमते, लोगों को उद्बोधित करने, प्यार से विद्यालय का महत्त्व समझाते और बस यों ही दो-तीन महीनों में मासिक चन्दा बढ जाता और स्वामी जी उठ चलते। दिक्कत ही क्या थी चलने में? न पास बिस्तर, न कपड़ों की अटैची, न कोई गठरी, न मुठरी?' बस, दो लुंगियां दो कौपीन, दो बनियान, जय जगदीश हरे!

एक बार विद्यालय की गिरती अवस्था का पता पा, वे आये। सदा की तरह स्थिति सुधर गई। कुछ स्वार्थियों ने चाहा कि स्वामी जी को टरकाएं और विद्यालय की उन्नति का श्रेय चाटें। दो-तीन उद्धत विद्यार्थियों से छोटा-सा हंगामा कराया गया। स्वामी जी उठे और सीधे स्टेशन पर जा बैठे। मुझे सूचना मिली, मैं दौड़ा-दौड़ा स्टेशन गया। वे एक बेंच पर मस्त-मगन बैठे थे। सहज भाव से मुझे पास बैठाया। मैं भौंचक कि न आक्रोश, न क्षोभ—शान्तम्, शान्तम्, परम शान्तम्। मैंने आवेश में कहा—'चलिए स्वामी जी, मैं देखता हूं कौन आपसे आंख मिलाता है!' कहा—'हमसे आंख तो तुम्हीं मिलाते हो। कोई खास बात थोड़ा ही है, जब

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन होगा या हमारी आवश्यकता होगी, हम आ जाएंगे।' गुनगुनाए, बोले—'लो, एक शानदार चीज आ रही है भीतर से लिख लो, नहीं तो उड़ जाएगी।'

मैंने डायरी निकाली, पेन खोला, उनकी गुनगुनाहट तेज हुई और जन्मी जीवन वेद की एक ऋचा।

चढ़ाया सर पै हम को दोस्तों ने मिस्ले गुल 'अख्तर'
मिसाले खार अक्सर दुश्मनों के दिल में हम खटके !

प्यार के तरन्नुम में बोले—'प्रभाकर, तुम भी ऐसे ही जीना कि दोस्त फूलों की तरह सिर चढ़ाएं और दुश्मनों के दिल में कांटे की तरह खटकते रहो।'

—**कन्हैया लाल मिश्र (प्रभाकर)**
विकास लिमिटेड स्टेशन रोड
सहारनपुर (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-चेतना के प्रतीक : स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

□ श्रीराम शर्मा 'राम'

साठ-पैंसठ वर्ष बीत गये, जब स्वामी नारायणानन्द सरस्वती के प्रथम बार दर्शन हुए थे। तब मैं केवल दस वर्ष का बालक ही था। संयोग से हरिद्वार पहुंच गया था, मन में संस्कृत पढ़ने की ललक थी। हर की पौड़ी पर स्नान करने गया, तो लगा, मैं सचमुच ही स्वर्ग के द्वार पर जा खड़ा हुआ था। तीनों ओर पर्वत और उन्हीं के मध्य से कलकल करती, किलकिलाती जाह्नवी की पुनीत धारा। मानो जन-जन को पखारने के निमित्त इस मन्दाकिनी का धरती पर अवतरण हुआ था। वह कुम्भ का अवसर था।

स्नान किया और तदुपरान्त बाजार में एक भवन के समक्ष जा खड़ा हुआ। जिज्ञासा थी, संस्कृत पाठशाला का पता चले। मैं अबोध अज्ञानवश उस अदृश्य पथ की ओर बढ़ गया था। द्वार पर एक व्यक्ति से जानना चाहा तो वह हाथ उठाकर बताया, वह सामने बरामदे में चारपाई पर स्वामी जी बैठे हैं। वे संस्कृत पाठशाला बता देंगे। मैं उस भवन में प्रवेश कर गया। समीप आते ही प्रणाम किया। देखा, एक गौरवर्ण संन्यासी, सिर पर बड़े बाल, चौड़ा मस्तक, बड़ी आंखें—आकर्षक स्वरूप था वह ! वे सहज भाव से मुस्कराए—'लगता है, घर से भागकर आए हो। क्या उद्देश्य है, यहां आने का ?'

स्वामी जी श्वेत खद्दर की धोती पहने थे। खद्दर की मिरजई। मुंह पर बढ़ी हुई दाढ़ी। मैंने बताया—'संस्कृत पढ़ना चाहता हूं।'

'कुछ पढ़े हो ? जल्दी निकल आए हो घर से। मां-बाप परेशान होंगे।'

'मैं अनाथ हूं—स्वामी जी। मां-बाप नहीं रहे। दर्जे चार पास किया है।'

उन्होंने मेरी ओर देखा। जैसे खोजना चाहा। मानो 'अनाथ' शब्द सुनकर वे विचलित हो गये थे। तुरन्त बोले—'हमारी एक पाठशाला है, देवबन्द में ! यहां भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक हैं। जहां चाहोगे, तुम्हारा प्रबन्ध हो जाएगा। कुछ खाया ?'

'जी, अभी नहीं।' और मैं स्वतः ही उदास हो गया था। जेब खाली थी। पिछली रात भी कुछ नहीं खाया था। उसी समय एक मारवाड़ी सज्जन वहां आए और स्वामी जी से बोले—'महाराज, इस पुण्य तीर्थ पर एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहता हूं।'

स्वामी जी ने कहा—'यह लड़का संस्कृत का विद्यार्थी है। इसे भोजन कराओ।' और मुझसे बोले—'जाओ लालाजी के साथ।'

जब मैं लौटा, तो एक सज्जन वहां बैठे थे। मुझे देखकर स्वामी जी ने कहा— 'यह लड़का है। आचार्य जी से कहिएगा, इसे दाखिल कर लें।' मुझसे बोले— 'वकील साहब देवबन्द से आए हैं, तुम्हें पाठशाला पहुंचा देंगे।'

मैंने स्वीकृति में अपना सिर झुका दिया। उसी दिन देवबन्द पहुंच गया। देवीकुण्ड पर स्थित पाठशाला में काफी विद्यार्थी थे, आज के विशिष्ट साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर भी वहीं पर विद्याध्ययन कर रहे थे। पाठशाला के आचार्य बड़े सौम्य और विद्वान थे। उनका वात्सल्य भाव दर्शनीय था, यद्यपि वहां स्वामी जी नहीं थे, परन्तु विद्यार्थी और आचार्य सभी उनके प्रशंसक थे। जब स्वामी जी वहां आते तो पाठशाला में नयी बहार आ जाती। विद्यार्थियों के नये वस्त्र बनते। यदा-कदा उन्हें खीर-हलुवे का भोजन भी प्राप्त होता। नगर के व्यवसायी स्वामी जी का अत्यधिक सम्मान करते थे। स्वामी जी किसी धर्म या सम्प्रदाय के प्रचारक नहीं थे, परन्तु वे जहां जाते, जहां बैठते, अपने विचारों की सुगन्ध छोड़ जाते थे। देवीकुण्ड पर और नगर में धनिक समाज की प्रेरणा पर ख्याल और चंग का प्रदर्शन होता था। स्वामी जी चंग पर ही अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करते थे। वे 'तुर्रा' पक्ष के समर्थक थे, 'कलगी' अधिक पसन्द नहीं करते थे।

मेरे जीवन का यह सुखद आश्चर्य था कि हरिद्वार में, कुम्भ के पर्व पर स्वल्प अवधि में जो कुछ स्वामी जी के विषय में नहीं जान पाया, वह देवबन्द की संस्कृत पाठशाला में दूसरों के मुख से सुन लिया था। कुछ मास पूर्व, मैंने हर की पौड़ी पर कलकल निनादिनी गंगा में गोता लगाया था। वहां श्रद्धा और भक्ति के साथ जन-जन को अञ्जलि भर-भरकर सूर्यदेव को अर्घ्य देते हुए देखा था। मानो वह समाज अपने मन की भावना उलीच-उलीचकर मां भागीरथी के श्रीचरणों में अर्पित कर रहा था। कुछ ऐसा ही भाव मैंने स्वामी जी के प्रति विद्यार्थी वर्ग में और आचार्य में पाया था। तब यह ज्ञान नहीं, हरिद्वार सरीखे महान तीर्थ पर हिन्दुत्व का वह सांस्कृतिक, सामाजिक और दार्शनिक स्वरूप स्वतः ही अपनी अपूर्वता के साथ मुखरित हो उठा था। कदाचित उसी प्रकार का भाव देवबन्द के देवीकुण्ड पर विद्यार्थी समुदाय में एक संन्यासी के प्रति मैंने पाया था। यद्यपि मैं इस समय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक था। अकिंचन था, याचक था। झोली पसारकर जीवन की भिक्षा पाने के लिए सब ओर देख रहा था। सहज भाव से स्वामी जी का ममत्व पाकर मैं उस पाठशाला में ज्ञानार्जन प्राप्त करने पहुंच गया, निश्चय ही मेरे प्रति एक अच्छे इन्सान की पुनीत देन थी।

स्पष्ट था, उस पाठशाला की व्यवस्था स्वामी जी द्वारा निर्मित की गयी थी। विद्यार्थी रविवार की प्रातः नगर में जाते और घरों में रखी गयी आटे की हंडियां प्राप्त कर लेते। उन्हें घरों से दाल आदि भी प्राप्त हो जाती। सप्ताह भर का आटा मिल जाता था। सस्ता समय था, कहीं से घी भी प्राप्त हो जाता। विद्यार्थी स्वयं भोजन बनाते। छोटे बालक ऊपर का काम करते। आचार्य सहित सभी यह भोजन पाते थे। दिन बीतते-न-बीतते मेरे मन में स्वतः ही यह जिज्ञासा उभर आई कि स्वामी जी का अद्यतन अध्ययन किया जाए। मुझे बताया गया, वे शिक्षा-प्रेमी तो थे ही, हिन्दी साहित्य के एक कुशल शिल्पकार भी थे। कदाचित जीवन के प्रथम पक्ष में ही स्वामी जी ने खयाल, लावनी के माध्यम से रचनाएं लिखनी शुरू कर दी थीं। कृष्ण-सुदामा, शिव-पार्वती और भगवान राम का गुणगान करने लगे थे। यद्यपि स्वामी जी पौराणिक युग के व्याख्याता थे। परन्तु अपनी रचनाओं में धर्म, समाज का दार्शनिक स्वरूप तो प्रकट करते ही, जीवन का चरित्र और नैतिक पक्ष प्रतिपादित करने से भी नहीं चूकते थे। व्यक्ति का विवेक उनकी दृष्टि में सर्वोपरि था। पाठशाला के आचार्य ने बताया था, स्वामी जी ने अपने यौवनकाल में ही घर त्याग दिया था, संचय की प्रवृत्ति को भी अपने मन से निकाल दिया था। वे आज की चिन्ता करते थे, कल की नहीं। दो धोती, दो कोपीन, बस—यही उनका सामान था, किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहे। अलमस्त की तरह जब चले, तो चल दिए। देवबन्द की पाठशाला के आचार्य प्रायः कहते थे, स्वामी जी का अथक परिश्रम, लगन उस पाठशाला को स्थायित्व दे पायी थी। मानो उस परिवार में ही उन्होंने अपने-आपको समो दिया था। कोई कल्पना नहीं कर सकता था कि स्वामी जी एकाएक वहां से अब उठेंगे और चल देंगे। देवबन्द में जिस प्रकार उनके भक्त थे, उसी तरह अयोध्या, काशी, कलकत्ता और नागपुर में भी उनके प्रेमियों की एक लम्बी सूची बन गयी थी।

सन् 1922 के उत्तरार्द्ध में जब मैं कानपुर गया तो बलात् मुझे अपने समक्ष खड़ा देख, सहज भाव से स्वामी जी मुस्कराए—'आ गये तुम? देवबन्द की पाठशाला छोड़ आए! क्या पढ़ना छोड़ दिया?'

मैंने अपना मुंह ऊपर उठाकर कहा, 'हां, जीविका के हेतु की तलाश है। देवबन्द से ही आपका पता ले लिया था।'

वह स्थान एक धर्मशाला थी। आंगन में एक तख्त पड़ा था, उसी पर बैठने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आदेश देकर स्वामी जी बोले, 'अब मैं यहां ठहर गया हूं। एक मासिक पत्र का प्रकाशन कर रहा हूं, नाम है, 'कवीन्द्र' ! उसके माध्यम से काव्य का प्रचार होता है। चाहो तो उसमें काम कर लो। इस नगर में 'प्रताप' नाम का पत्र निकलता है। गणेश शंकर विद्यार्थी उसके सम्पादक हैं। उनसे तुम्हारे लिए कह दूंगा। उन्होंने कहा, अभी तुम्हें पढ़ना था, मुझे आज भी याद है, हरिद्वार में तुमने मेरे प्रश्नों के सही उत्तर दिए थे। तुममें प्रतिभा के अंकुर तो हैं, उन्हें पल्लवित करने की आवश्यकता है। आज भोजन किया ? लगता है पेट खाली है। मुंह पर उदासी है।' उन्होंने जेब से एक रुपया निकाला और मेरी तरफ बढ़ाकर कहा, 'पहले भोजन करो। पास में हलवाई की दुकान है।'

मैं भूखा तो था ही। रुपया ले लिया। मेरे मन का उद्वेग आंखों में छलछला आया। स्वामी ने देख लिया। तभी कहा—'पुरुषोचित भाव को त्याग बैठना कायरता है। अपने मन की दीनता प्रकट मत करो। पौरुष से काम लो। जाओ भोजन करो। तुम भटके हुए राही हो, विवेक से काम लो।'

एक लम्बे अन्तराल के बाद मैं स्वामीजी के पास पहुंच गया था। स्पष्टतः मैं भटका हुआ राही था। एक व्यक्ति अपने जीवन में क्या कुछ संजोता है, क्या कुछ पाता है, यह मैंने स्पष्टतः समझ लिया था। वस्तुतः मैं देवबन्द की पाठशाला से एक अन्य विद्यार्थी के साथ बनारस पहुंच गया था। वहां अस्सी घाट पर एक अन्य संन्यासी की प्रेरणा से संस्कृत पाठशाला में पढ़ने लगा था। गंगा पार काशी नरेश के यहां सप्ताह में दो बार पांच विद्यार्थी रानी के आमन्त्रण पर भोजन करने जाते थे। संयोग से मुझे भी वहां जाना पड़ा। एक बार रानी की सेविका ने मुझे इंगित कर रानी से कहा, 'किसी अच्छे घर का लगता है यह लड़का। देखने में सुंदर और चंचल दीखता है।'

तब रानी ने सांस भरकर कहा—'इस जीवन की धारा में जाने कितने बह जाते हैं ऐसे बच्चे। इन पाठशालाओं में सम्पन्न घरों के लड़के नहीं आते।'

वह बात मुझे चुभ गयी थी। मन के किसी अज्ञात कोने में छुपकर बैठ गयी थी। फलस्वरूप मैं वहां भी नहीं रुका। एक वर्ष पूरा होते-न-होते कानपुर पहुंच गया। यह संयोग था अथवा भगवान का आशीष था, मैं अज्ञात भाव में उस धर्मशाला में जा पहुंचा, जहां स्वामीजी का निवास था। स्थान सुन्दर था। नाम था 'लक्ष्मणदास बाबूराम धर्मशाला।' जब मैं स्वामीजी से रुपया पाकर हलवाई की दुकान पर जा बैठा, तभी मन में आया, यह भी नियति का कैसा वरदान है। स्वामीजी बहुधा याद आते थे। जब मिले तो एकाएक मिल गये। स्वामीजी न योगी हैं, न त्यागी हैं फिर भी वीतरागी बने हैं। अनुराग और ममत्व की भावना से परे हैं। अपना घर छोड़ आये हैं। देवबन्द के आचार्य ने एक बार कहा था कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी की पत्नी है, पुत्र है, पुत्री है, परिवार में अन्य लोग भी हैं। पीलीभीत में पैतृक निवास है। साधु बने हैं, तो गंगा की धारा के सामान इनमें मन का प्रवाह कहीं रुकता नहीं। स्वामीजी के प्राणों में त्याग और अनुराग की भावना मानो अविराम भाव से हिमालय से चली कन्याकुमारी की ओर बरबस बढ़े जा रही है। यह जीवन की धारा एक से अनेक में बंटकर जनमानस को पखारती हुई बही जा रही है, किसी अज्ञात पथ की ओर ! मैं यहां इतना बता दूं, धर्मशाला के स्वामी भैया फूलचन्द जैन काव्य-प्रेमी थे। उन्होंने सनेहीजी को जूनियर हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक के कार्य से मुक्त करा कर कानपुर बुला लिया था। वे अन्य अनेक कवियों तथा साहित्यकारों का व्यय भार स्वयं उठाते थे। सनेहीजी का, स्वामीजी का व्यय भी वहन करते थे। सुपरिचित कवि श्री अनूप शर्मा भैया फूलचन्द की सहायता पाकर एल० टी० की परीक्षा दे सके थे। स्वामीजी का पत्र 'कवीन्द्र' उन्हीं की प्रेरणा से प्रकाशित हुआ था।

सहज ही मुझे लगा, स्वामीजी का वह अन्तिम पड़ाव था। उनका कार्यक्षेत्र बढ़ गया था। 'कवीन्द्र' के माध्यम से अनेक उदीयमान कवि प्रकाश में आ गए थे। संध्या समय उस स्थान श्री सनेहीजी, श्री कौशिकजी, श्री हितैषीजी और श्री नवीन जी तो नित्य आते ही, अन्य कवि भी आ जाते थे। स्वामीजी उन सभी के मध्य पीठासीन होते थे। कुछ कवि अपनी नवीन रचनाएं सुनाते थे। कई घण्टे वह बैठक होती। धर्मशाला का सेवक 'विजिया' घोटता और सबको पिलाता था। बाद में पान-तमाखू चलता। सप्ताह में दो-चार दिन भैया फूलचन्द भी इस बैठक में सम्मिलिति हो जाते थे। यों दस-बीस आदमियों का मजमा नित्य लगता था। संध्या के पांच बजे से जमी वह बैठक रात के आठ-नौ बजे तक चलती थी। चूंकि इस बैठक के सूत्रधार स्वामीजी थे और मैं उनका 'चेला' समझ लिया गया था, इसलिए उन सभी व्यक्तियों का मुझे स्नेह प्राप्त था। कौशिकजी की प्रेरणा पाकर मैं कहानी लिखने लगा था। उनके संशोधन करने से वे रचनाएं 'सरस्वती', 'माधुरी' और 'मनोरमा' में छपने लगी थीं। उन सभी व्यक्तियों का औदार्य पक्ष मेरे प्रति बड़ा ही निर्मल और पुनीत था। यदा-कदा वहां श्री मैथिलीशरण गुप्त, जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध और हिन्दी साहित्य के मन्त्री श्री रामजी लाल शर्मा आकर ठहरते थे। उन सभी के उपदेश मुझे सहज में प्राप्त होते थे। वे सब स्वामीजी के प्रति एक विशिष्ट सम्मान प्रकट करते थे। उस समय मैं अनुभव करता था कि वे सब गंगा की धारा के समान उस ओर अपना बहाव करके मुझ सरीखे एक अकिंचन को भी पखार जाते थे। इस सन्दर्भ में यह कहना मेरे लिए अत्यधिक प्रसन्नता का द्योतक है कि जिस पावन धारा में मैं नित्य गोता मारता था, उसके प्रवर्त्तक और व्याख्याता स्वामी नारायणानन्द सरस्वती थे कि जिन्होंने मुझसे प्राप्त की सेवा के बदले में ऐसी-ऐसी भावना मेरे मन और मस्तिष्क में भर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी थी कि जिसे मैं जीवनेतर सहेजता आ रहा हूं। उन्होंने मेरे मन का अकिंचन भाव धो दिया था। स्वाभिमानी बनने का उपदेश दिया था। स्वामीजी की मेधावी प्रतिभा बहुत ऊंची थी। पक्के स्वाभिमानी थे। पैसे के लिए किसी के समक्ष झुकते नहीं थे। यद्यपि पैसे का अभाव भस्मासुर की तरह उनके पीछे लगा रहता था। 'कवीन्द्र' व्यय साध्य था। फिर भी उनकी चेतना सजग थी। उनकी उदारता अमिट थी। उनके प्राणों की कोमलता मेरी देखी-सुनी थी। धर्मशाला का मेहतर बूढ़ा था, सर्दी से कांप रहा था। स्वामीजी ने अपना गरम नया स्वेटर उसे दे दिया। दो दिन पूर्व ही भैया फूलचन्द बाजार से खरीद लाये थे। स्वामीजी को केवल एक मिरजई में देख, स्वतः ही आकुल हो उठे थे, मैंने कहा, 'यह आपने क्या किया, स्वामीजी ! अब आप सर्दी में रहेंगे।' वे मुस्कराये, उस भंगी की आवश्यकता बड़ी थी। ऐसे ही एक सज्जन स्वामीजी का फटा कम्बल देखकर नया कम्बल ले आये थे। वह भी उन्होंने एक भिखारी को दे दिया। धर्मशाला के स्वामी के घर पर विवाह का उत्सव था। भैया फूलचन्द ने चांदी के थाल तैयार कराये थे। अपने विशिष्ट सम्बन्धियों और मित्रों को भेंट किए। एक थाल स्वामीजी को भी दिया गया। धर्मशाला का सेवक चतुर था। वह स्वामीजी की सदाशयता का पूरा लाभ उठाता था। फलस्वरूप वह चांदी का थाल भी झपट बैठा। मैंने कहा, 'आप तो औघड़दानी के समान सब कुछ दे देते हैं।' स्वामीजी बोले, 'मैं संन्यासी हूं। सब कुछ त्याग चुका हूं। मुझे चांदी का थाल नहीं चाहिए। तुम्हारा थाल रखा है। ले लेना।' मैं देखता था, स्वामीजी नगर के जिस बाजार में निकलते, लोगों के सिर झुक जाते थे। विनम्र और सहृदय स्वामीजी यदि जनता से कुछ लेते थे, तो मुक्त भाव से अपना आशीष प्रदान करना नैतिक कर्त्तव्य मानते थे।

तभी आ गया 1925 का वह वर्ष जबकि कानपुर में अ० भा० कांग्रेस का महा अधिवेशन श्रीमती सरोजनी नायडू की अध्यक्षता में होने जा रहा था। इसी समय स्वामीजी ने मित्रों से सलाह की और चाहा, ऐसे शुभ अवसर पर विराट कवि-सम्मेलन का आयोजन हो। प्रस्ताव सामयिक था, अनुकरणीय था, परन्तु म्याऊ का ठौर कौन पकड़े। पैसा कहां से आये। भैया फूलचन्द जैन पक्के कांग्रेसी थे। उन्हीं की प्रेरणा पर कानपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। वे कोषाध्यक्ष थे। उन्हीं के माध्यम से नगर के व्यवसायी वर्ग से पैसा आता था। वह मोटा खर्च था, कई लाख का था, और कवियों के सम्बल भैया फूलचन्द ही थे। लेकिन स्वामीजी को धुन सवार हो गयी थी। स्वागत समिति बन गयी, हिन्दी कविता का सम्मान हो, वह अपने ऊंचे पद पर आसीन हो, यही उनकी महत्त्वाकांक्षा थी। 'कवीन्द्र' के प्रकाशन से वे स्वयं काव्यमय बन गए थे। वस्तुतः जो बात उन्हें सूझ जाती, उसे करके मानते थे। ऐसी अवस्था में वे न भोजन का ध्यान रखते, न आराम का। उनके पहनने के वस्त्र भी फटे हैं या मैले हैं, इस ओर भी उनका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान नहीं जाता था। धर्मशाला का नौकर कपड़ा धो देता, तो पहन लेते थे। जब वे खयालबाजों के अखाड़े में उतरे तो तब भी लिखना, और गाना उनका लक्ष्य बना था। शिष्यों की प्रचुरता थी, अतएव, वे एकाकी हैं ऐसा भाव कभी उनके मन में नहीं आता था, सब ओर दिखायी देते थे, उनके आत्मीयजन।

यदा-कदा जब एकान्त मिलता, तो मुझे भी उपदेश देते थे। एक बार बोले, 'अब तुम अपने रास्ते से भटक चले हो। सिर पर जुल्फ रखते हो। पहनते खद्दर हो, परन्तु कालरदार कमीज सिलवाते हो। जीवन का सफर लम्बा है, उसकी तैयारी तुम्हें करनी चाहिए। आने वाले कल के जीवन में अनेक मोड़ पड़ेंगे, संघर्ष करना होगा। लोग तुम्हें स्वामीजी का शिष्य कहते हैं, यह शुभ नहीं। तुम योगी या त्यागी नहीं। अपना मार्ग प्रशस्त करो। दुनियादार बनो। व्यावहारिक बनो। चार पैसे उपार्जित करने योग्य बनो। यही उपादेय है।'

स्वामीजी का वह छोटा-सा प्रवचन आज भी मेरे प्राणों में अपना स्थान लिये बैठा है, मन में प्रायः यह बात उठती है, स्वामीजी कितने उदात्त थे, कितने निश्छल और कितने विवेक से परिपूरित। अद्यतन वे नैतिकता के सजग दूत थे। उनके विचार ऊंचे थे दृष्टि ऊंची थी। वे जिस मानवीय धरातल पर खड़े थे, वह दुर्बल नहीं था। उनका ज्ञान और संस्कार अग्रदूत के समान मार्गदर्शक बना था। मैंने उन्हें प्रायः किसी पीड़ित की पीड़ा में द्रवीभूत होते पाया था। मानो वही उनके जीवन का परमोत्कृष्ट सुख था। वही साधु का लक्ष्य था।

अभी-अभी मैंने कवि-सम्मेलन की बात कही। धर्मशाला में स्वामीजी के कमरे के बराबर ही एक अन्य बड़ा कमरा था। वहां कांग्रेस कमेटी का दफ्तर था। श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी वहां नित्य आते थे, कमरे के सामने से निकलते थे। एक बार स्वामीजी अपने कमरे के द्वार पर खड़े थे, उसी समय नेहरूजी उधर से निकले। बरबस स्वामीजी का अभिवादन करने के लिए उनके हाथ उठ गए। साथ आये विद्यार्थीजी बोले, 'स्वामीजी इस नगर की शोभा हैं। बड़े विद्वान हैं। कवि हैं। वृहत् कवि-सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं।' नेहरूजी बोले, 'हां, मैं नित्य दर्शन करता हूं' तब वे युवक थे। बात कहकर आगे बढ़ गये।

स्पष्ट था, कई सौ कवि आमन्त्रित किये गये थे। उनके भोजन की व्यवस्था करनी थी। स्वामीजी ने कोई दुकानदार या व्यवसायी नहीं छोड़ा। सभी से कुछ न कुछ लिया, प्रातः निकलते और रात को लौटते। भोजन कहां होता या न होता, मैं इससे अनभिज्ञ बना था। स्पष्ट था, वे प्रायः निराहार रहते। यह कैसी विडम्बना थी उनके जीवन की अपने परिवार के प्रति निर्लेप रहे परन्तु दूसरे को दुनियादार और सफल राही देखना पसन्द करते थे, मैंने कभी स्वामीजी को हाथ में माला लेकर प्रभु को नमन करते नहीं पाया। किसी देवालय में भी जाते नहीं देखा, परन्तु भगवान और उसकी पुनीत भावना के प्रति उनका चिन्तन गहरा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Gurukula Kangri University Haridwar
185472
R.P.S
097
ARY-S

वे मानवीयता के सच्चे उपासक थे। जब-तब उनके पास हिन्दी के विद्वान आते, कोई विरक्त संन्यासी आता, तो लगता उनके मानस में बहती हुई वह गंगा अविरल भाव से सभी को अपना आशीष प्रदान करती थी। जीवन का साहित्य और दर्शन और मानव की समूची मान्यताएं एवं धारणाएं युग-युगों से चली आई आस्था की प्रतीक थीं। वे किसी भी जागरूक प्रहरी के समान सदा आन्दोलित बनकर चाहते थे कि व्यक्ति निश्छल हो, निर्मम न हो। यद्यपि जीवन की विषमता उन्हें भी घूरती थी, दबोचती थी, परन्तु वे एक खिलाड़ी के समान खेलना और चलना पसन्द करते थे। परिणाम की बात भगवान पर छोड़ते थे। इसीलिए वे कोमल थे, निर्मल थे। राम की जन्मभूमि अयोध्या में बैठकर, वहां के साधु-संन्यासियों का सम्पर्क पाकर स्वामीजी मानो शिव स्वयम्भू बन चुके थे। उनमें प्रदर्शन का भाव नहीं था। कदाचित् इसीलिए वे किसी संन्यस्त आश्रम में रहने की बात नहीं सोचते थे। वे कर्मठ थे, काम करना पसन्द करते थे। संन्यासी क्यों है, किसलिए है, इतना समझकर ही, वे उस समाज से दूर रहते थे। उनके पास जो भी आता, बड़े सारल्य भाव से अपना ज्ञान और अनुभव बताने में किंचित मात्र भी नहीं हिचकते थे। काव्य के प्रेमी और विद्यार्थी अपनी रचना दिखाते, तो स्वामीजी स्वतः ही इसका संशोधन कर देते। लावनी और खयालों के गायक चाहते थे कि स्वामीजी अपना 'अखाड़ा' स्थापित करें। परन्तु वे इस पक्ष में नहीं थे। वे प्रायः कहते. 'कवीन्द्र' को सहेजना मेरा धर्म है। बाद में सनेहीजी ने भी 'सुकवि' का प्रकाशन आरम्भ किया। वे भी कवित्त और घनाक्षरी के मास्टर थे। जहां-तहां उनके शिष्य फैले हुए थे। हितैषीजी सनेही जी के शिष्य थे। वे प्रायः भड़ैवा लिखते थे। स्वामीजी का 'अख्तर' तखल्लुस था। उन्होंने खयालबाजी इसी नाम से की थी।

यह स्पष्ट था, कवि सम्मेलन के आयोजन में स्वामीजी ने अपूर्व सफलता प्राप्त की थी। स्वयं पुरुषोत्तम दास टण्डन और श्री मैथिलीशरण गुप्त ने स्वामीजी की प्रशंसा की थी और कहा था, स्वामीजी के प्रयत्न से ही वह आयोजन सफल हुआ। जाहिर था कि स्वामीजी अपनी धारणा के पुजारी थे, उनका कोई 'दल' नहीं था। सम्बल नहीं। वह केवल उस ज्योतिर्मयी आभा से आलोकित थे जिसे जन-जन के मानस में दीपशिखा के समान उन्होंने जलता पाया था। उसी अनिर्वचनीय कल्पना के सहारे उनके जीवन का डोंगा चला जा रहा था, बहा जा रहा था। जब 'मूड' में होते तो अपने संघर्ष की कहानी बता देते थे। उन्होंने जीवनेतर अपने मनोभावों की, विचारों की पूजा की थी। उसी को वह जीवन का रखवाला मानते थे। 'लावण्यलता' उनकी पुस्तक इसलिए पठनीय थी कि स्वामीजी ने खयालों के विविध रूप इसमें वर्णित किये थे। उसमें विविध विषयों पर आधारित खयालों की रचना थी। उसमें ज्ञानपरक रचनाएं भी हैं, और देश-भक्तिपूर्ण भी। स्वामीजी प्रतिभाशाली व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने देश और समाज से अलग रखकर अपने को नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

2.9.9
१०७
2-४९H
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा। समाज के व्यक्ति की पीड़ा मानो उन्हीं की थी। 'लावण्यलता' की रचनाएं उनके मन की आकांक्षाएं थीं, उद्दाम भावनाएं थीं। उनकी वर्णन शैली मनोमुग्धकारी और चित्ताकर्षक थी, खेद है स्वामीजी की अन्य रचनाएं आज उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने कभी संग्रह की कामना नहीं की। पैसे के समान उन्होंने कृतित्व का भी मोह नहीं किया। वे सच्चे अर्थों में साधु थे। किसी ने पान की गिलौरी या चूना-तमाखू बनाकर सुरती आगे कर दी, तो निहाल हो गये। उसी को अपनी रचना दे दी। वे भस्मीभूत नहीं थे, गेरुवे वस्त्र भी नहीं पहनते थे, परन्तु साधु की यौगिक साधना से अछूते नहीं थे। त्याग और समर्पण की भावना ही मानो उनके प्राणों का सम्बल थी। उनका दर्शन प्राणों के परकोटे में समाहत था। भारतीय संस्कृति की भावना उनकी सभी रचनाओं में थी। वे न आर्यसमाजी थे, न सनातनधर्मी, वरन् उन दोनों को कंघी के दो फलक समझते थे। जो व्यक्ति और समाज के दुर्विचारों को काट देने की क्षमता रखते थे। नगर आलोकित, वैभवपूर्ण परन्तु स्वामीजी एकान्त में पड़े अपने मन के परमेश्वर को ही जीवन का आलोक मानते थे। प्रभु के नाम पर अलख जगाना पसन्द करते थे। वे सहृदय थे, भावुक थे, कवि थे। उन्होंने कभी वैभव की कल्पना नहीं की। उससे ईर्ष्या भी नहीं की। जब मौज-मस्ती में होते, तो कहते, 'मैं पीछे परिवार छोड़ आया हूं, परन्तु अब यह 'कवीन्द्र' नाम का बालक मैंने गोद में उठा लिया है।' जीवन भर उन्होंने अपने मानस की जिस अन्तर्प्रेरणा को उजागर किया, वह सदा उनका सम्बल बनी रही। उन्होंने अपने-आपको सिकोड़ कर नहीं रखा। प्रभु के चरणों में अपने को विसर्जित कर दिया था, वे प्रायः कहते थे, व्यक्ति का संचालक तो कोई और है। वह अदृश्य है। इंसान इतना समझ ले, तो वह मार्ग की बाधाओं से मुक्त हो जायेगा। अतएव उन्होंने देना सीखा था, लेना नहीं। एक बार सुना कि स्वामीजी कानपुर से भी पलायन कर गए। 'कवीन्द्र' बन्द हो गया। सब साथी एक-एक कर तिरोहित हो गये, अन्तस्थ हो गए। व्यक्ति आता है और चला जाता है परन्तु उसका व्यक्तित्व और कृतित्व मुस्कराता दिखायी पड़ जाता है। विराम लगता है और व्यक्ति छुप जाता है। फिर भी व्यक्ति गतिमान है। चेतन स्वरूप है। अपने ही मनःलोक में वह सदा के लिए सो जाता है। दिवास्वप्न के समान व्यक्ति आता है और चला जाता है।

लम्बे अन्तराल के बाद एक मित्र को पत्र लिखा था— स्वामीजी के विषय में, जवाब मिला, वे महायात्रा पर चले गए···अन्तर्ध्यान हो गए···आज भी मेरे मन में यह बात उठती है, वे निस्पृह थे, स्वार्थरहित थे, उन्होंने भले ही एक परिवार छोड़ा, परन्तु स्वभाव और कर्म के माध्यम से वे अपने अन्तिम चरण में आकर अनेक परिवारों के स्नेह भाजन बन चुके थे।

श्याम नगर
लिमाडी गेट, मेरठ

श्रीराम शर्मा 'राम'
२७-८-८७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती के पावन संस्मरण

☐ गुलाब खंडेलवाल

स्वामीजी गया नगर में सन् 1935-36 के आसपास पधारे थे। वे नगर के दक्षिण में स्थित ब्रह्मयोनि पहाड़ के कपिलधारा नामक स्थान पर एक सिद्धासन में ठहरे हुए थे। बरसात के दिनों में शहर के अधिकांश लोग उस पहाड़ी पर छुट्टी के दिन पिकनिक मनाने चले जाया करते हैं। हम लोग भी वहां इसी उश्द्देय से पहुंचे थे। यह ज्ञात होने पर कि एक बहुत बड़े संत और कवि यहां आये हुए हैं, हम लोग कविता सुनने के उद्देश्य से उनके पास एकत्र हो गए। स्वामीजी ने कविताएं सुनाकर सबका मन ही नहीं मोह लिया, पौराणिक कथाओं का प्रसंग चलने पर इंद्र-अहल्या प्रसंग की जो प्रतीकात्मक व्याख्या की, उसने सभी श्रोताओं के मन में उनकी अगाध विद्वता की भी धाक बैठा दी। गया के एक काव्य-प्रेमी पंडा श्रीनारायणलाल पाठक ने स्वामीजी को अपने आवास पर ठहरने को राजी कर लिया। स्वामीजी को भी गया का परिवेश कुछ ऐसा भा गया कि उन्होंने वहां बसने की और वहां से 'संत-संदेश' नामक एक मासिक पत्रिका निकालने की योजना बना डाली। स्वामीजी के गया में आने से वहां के साहित्यिक वातावरण में एक उबाल-सा आ गया। वहां के नागरिकों में मेरे चाचा राय साहब देवीलाल, बाबू बनविहारी प्रसाद 'भूप' तथा पं० श्यामदत्त मिश्र तो उनके अनन्य भक्त ही हो गये। किन्तु पत्रों की मरुभूमि गया से स्वामीजी के 'संत-संदेश' के दो अंक ही निकल पाये। पत्र का मोटो स्वामीजी ने जो कविता में दिया था, इस प्रकार था—

'सोचो, हो किस देश में, जाना है किस देश।
श्रुति का यही निदेश है, यही संत-संदेश ॥'[1]

पहले अंक में प्रथम पृष्ठ पर सनेहीजी की भेजी हुई, 'आंसू' शीर्षक कविता

1. मोटो की पंक्तियां सनेही जी ने लिखी थीं—सं० 'सन्त-संदेश'—वर्ष 9, संख्या 1, माघ सम्वत् 1992-जनवरी 1936, पृ० 1

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपी थी जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियां मुझे अब भी याद हैं—

'दीन दुःख पर निकल पड़े आंसू
आंसू देखा तो चल पड़े आंसू,
जाएं दिल डूब जिनमें सदयों के,
पल में ऐसे उबल पड़े आंसू।'[1]

स्वामीजी के अपने लिखे दो सवैये पहले अंक में छपे थे जिनमें एक इस प्रकार था—

'कुच-कंचन में नित मस्त रहे, अरु काम कला के सुने-लटके हैं।
नहीं सोचा कभी मन में अपने, जग-जीव ये वृक्ष नदी-तटके है।
जब आया बुढ़ापा, जवानी गयी, सिरकाल ने आनि दिए झटके हैं।
तब तो उनको यह ज्ञात हुआ[2], पथ और ही है हम तो भटके हैं।'[3]

गया में दो वर्षों के प्रवास में स्वामीजी की दिनचर्या यह थी कि वे भोजन करके अंदर गया स्थित अपने निवास से हमारी कोठी में आ जाते थे जो उनके यहां से प्रायः एक मील पर थी और सारा दिन वहां जुड़ी हुई भक्त-मंडली के बीच काव्य और साहित्य की चर्चा में बिताते थे। मैं उन दिनों 11-12 वर्ष की आयु का नवम कक्षा का विद्यार्थी था। एक दिन मैंने अपनी व्याकरण की पुस्तक के अंत में दी हुई संक्षिप्त छंदों की जानकारी के विषय में उनसे पूछा। उन्होंने मुझे छंद का ज्ञान कराया और मात्रा आदि के संबंध में बतलाया। उदाहरण के लिए रोला और उल्लाला छंद उन्होंने समझाये। दूसरे दिन मैंने एक रोला छंद बनाकर उन्हें दिखाया। वे देखते ही खिल गये और उसमें उल्लाला जोड़कर मुझे छप्पय बनाने को कहा। मैंने उल्लाला की 1 पंक्ति में अटक तो जोड़ दी परन्तु दूसरी पंक्ति में अटक गया जो स्वामीजी ने तुरन्त पूरी कर दी और मेरी कवि-प्रतिभा की घोषणा चारों तरफ कर दी। मैंने जो रोला बनाया था वह अपने बाग पर था जहां मैं घूमने जाता था। वह इस प्रकार था—

---

1. 'संत संदेश' के दूसरे फरवरी अंक में यह कविता 'सहृदय' शीर्षक से पृ० 49, अथवा 1 पर छपी है। जिसकी चार पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'दीन दुःख पर निकल पड़ें, आंसू,
आंसू देखें तो चल पड़े आंसू।
जाएं जी डूब वज्र हृदयों के,
पल में ऐसे उबल पड़े आंसू।'

—सं०

2. स्वामीजी ने 'जान पड़ा' लिखा है।—सं० (सन्त-सन्देश, पृ० 6)
3. ये सवैये 'भटके हैं' शीर्षक से 'सन्त सन्देश' के पृष्ठ 6 पर छपे हैं।—सं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाते हैं चहुं ओर विहगगण मधुर राग को
मधुकर होकर मत्त पान करते पराग को
फैली है अति रुचिर, सुखद शीतल हरियाली
खिले हुए हैं सुमन, छहरती छटा निराली
पथिक ! मनोरम विपिन यह, नंदन की क्षमता लिये
कवि गुलाब सुषमा निरख, क्यों न होयं हर्षित हिये।

इस कविता में तीसरी पंक्ति में मैंने पुनः 'चहुंओर' शब्द का प्रयोग किया था। जिसके स्थान पर स्वामीजी ने 'अति रुचिर' बना दिया था। क्योंकि 'चहुंओर' पहले आ चुका था और उन्होंने बताया कि यह पुनरुक्ति दोष होता है। उन दिनों ब्रजभाषा का यह शब्द खड़ी बोली में बहुत व्यवहृत होता था। अंतिम पंक्ति तो पूरी स्वामीजी की जोड़ी हुई है। इसके बाद स्वामीजी मुझे 'प्रिय-प्रवास' नियमित रूप से पढ़ाने लगे। उनके लिए मैं प्रतिदिन एक रोला छंद तो रचकर तैयार ही रखता था।

स्वामीजी ने 'प्रिय-प्रवास' के साथ ही अपने द्वारा संपादित मुल्तजी, कृत 'संतोषी सुदामा' की भी एक प्रति मुझे पढ़ने को दी ताकि मेरी भाषा परिष्कृत हो सके। स्वामीजी की फारसी और संस्कृत में समान गति थी। वे हिंदी और उर्दू दोनों में समान रूप से सफल रचना करते थे। उर्दू में वे 'अख्तर' उपनाम से लिखते थे। उनके साथ बिताये हुए दो वर्षों के समय में जितना साहित्य और भाषा का संस्कार मुझे प्राप्त हुआ, वह किसी विश्वविद्यालय में नहीं मिल सकता था। शायद ऐसे ही संस्कारों के कारण एक ओर मैं जहां बिना संस्कृत का गंभीर अध्ययन किये, 'अहल्या' जैसे संस्कृत-निष्ठ प्रबन्धकाव्य का प्रणयन कर सका हूं, वहीं दूसरी ओर बिना उर्दू-फारसी की जानकारी के और बिना किसी पूर्व निर्धारित मापदंड के हिन्दी को 365 गजलें दे सका हूं।

स्वामीजी के गया में रहते समय, कई बड़े साहित्यिक आयोजन भी हुए जिनमें तुलसी जयन्ती का आयोजन प्रमुख था। इनमें उनके प्रोत्साहन के कारण मैं भी अपनी समस्या-पूर्तियां पढ़ता था। एक तुलसी जयंती के अवसर पर स्वामीजी ने तुलसीदास पर 8-10 घनाक्षरियां बनाकर सुनायी थीं। मैंने आज तक उससे अच्छी तुलसीदास से संबंधित कविता नहीं देखी।[1] वे घनाक्षरियां उनके शिष्य रामावतारजी को याद हैं जो उस समय उनके साथ रहते थे और अब

1. मैंने श्री रामअवतार ब्रह्मचारी से सम्पर्क कर तुलसी सम्बन्धी पांच घनाक्षरियां लिखीं। 'सन्त सन्देश' के दूसरे अंक के पृ० 63 पर 'तुलसी स्तवन' शीर्षक से ब्रह्मचारी जीद्वारा लिखायी गयी पांच घनाक्षरियां छपी हैं। इन्हें हमने 'तुलसी स्तवन' शीर्षक से ही परिशिष्ट में दिया है।—सं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कभी घूमते-फिरते मेरे पास आ जाते हैं।

स्वामीजी के साहित्यिक मनमौजी स्वभाव और फक्कड़पने का तो कहना ही क्या था। उनसे साहित्यिक चुटकुले और कवियों की नोंक-झोंक के एक से एक रोचक किस्से सुनने को मिलते थे।

संध्या समय वे कभी-कभी थोड़ी भांग भी ले लेते थे। वे कहा करते थे कि यदि मूड ठीक हो और भांग का हलका गुलाबी सरूर चढ़ा रहे तो मैं धारावाहिक रूप से कविता बना सकता हूं। मैंने कई बार इस प्रकार उन्हें एक से एक सुन्दर छंद बनाते देखा भी था। स्वामीजी हिन्दू धर्म और संस्कृति के चोटी के विद्वान थे परंतु उन्हें कट्टरता छू भी नहीं गयी थी। आर्य समाज के समाज सुधार के अधिकांश प्रगतिशील कार्यक्रमों को वे ठीक मानते थे परन्तु आर्यसमाजियों की कोरी शुष्क तार्किकता उन्हें पसंद नहीं थी।

पुराणों को वे धर्मग्रंथ से अधिक काव्यग्रन्थ मानते थे और कहा करते थे कि पौराणिक गाथाओं के द्वारा ऋषियों ने भारत की संस्कृति, इतिहास और धर्म की लोकहित में काव्यमय व्याख्या की है।

मेरी कच्ची उम्र में स्वामीजी ने मेरे अंदर हिन्दी, संस्कृत और उर्दू की कविता के जो संस्कार डाले थे वे ही पुष्पित और पल्लवित होकर बाद में मेरे विविध काव्य-प्रयोगों में उभरे हैं।

स्वामीजी में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूटकर भरी थी और वे हिन्दी और उर्दू दोनों में उग्र राष्ट्र-प्रेम से भरी रचनाएं करते थे। एक शेर याद आ रहा है। जिसमें भारत के गरीब किसान का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

जिये तो ऐसे कि दो गज नहीं है तन के लिए।
मरे तो लास पड़ी रह गयी कफन के लिए।

स्वामीजी के साथ एक बार अपने चचेरे भाई के विवाह में मैं बरेली गया था। वहां विवाह पर उन्होंने कुछ छंद लिखे थे जिन्हें रूमाल पर छपाने को वे राधेश्याम कथावाचक के प्रेस में मुझे भी साथ ले गये थे। वहां उनकी लावनी और ख्याल गानेवाले कितने ही गायक उनकी पांडुलिपियां ले-लेकर आये थे, जिनसे उन्होंने मुझे मिलवाया था। लौटते समय लखनऊ स्टेशन पर सनेही जी भी आ गये थे और स्वामीजी ने मुझे उनसे भी मिलवाया था उसके बाद वे सनेहीजी के साथ कानपुर लौट गये थे।

स्वामीजी 1943 में कुछ दिनों के लिए गया दुबारा आये थे और उनका उस समय भी पूरा साहचर्य मुझे प्राप्त हुआ था परन्तु इस दूसरी यात्रा में गया से उनका जी शीघ्र ही उचाट हो गया था और वे अधिक दिनों तक वहां नहीं रह सके थे।

स्वामीजी से मेरी तीसरी और अंतिम भेंट जयपुर कांग्रेस से लौटते समय कानपुर में हुई थी जहां मैं इसी निमित्त से उतर गया था। उस समय सनेहीजी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां एक बहुत अच्छी गोष्ठी भी हुई थी। हितैषीजी भी उन दिनों कानपुर में ही थे, और उनसे भी तीन चार दिनों बहुत अच्छा सत्संग रहा था। उस समय मैंने अपनी नव प्रकाशित पुस्तक 'गांधी भारती' की प्रति भी स्वामीजी को दी थी, जो उन्हीं को समर्पित की गयी थी। सोनेट का हिन्दी नामकरण मैं 'सान्विति' करना चाहता था। स्वामीजी ने 'स्वानुभूति' नाम सुझाया था। वे मेरे सोनेट के प्रयोग में प्रारम्भ से ही दिलचस्पी लेते थे।

1951-52 में मै स्वामीजी के निवास पर जाकर उनके दर्शनों की योजना ही बना रहा था कि उनके भाई का पत्र मिला कि स्वामी जी अंतर्धान हो गये।[1]

कमल प्रकाशन
105 मकन्द्रू गंज चौक
प्रतापगढ़ (उ०प्र०)

1. स्वामीजी का स्वर्गवास नवम्बर 1954 में हुआ—सं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्याकाश के नक्षत्र : स्वामी नारायणानन्द

□ डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'

दर्प-स्फीत रेखाओं से विमण्डित सौम्य मुख-मण्डल, सामान्य कद न लम्बा न नाटा, स्वर्ण सदृश उज्ज्वल गौर वर्ण, खादी के श्वेत परिधान से अलंकृत स्थूल परन्तु सशक्त देह-यष्टि, सिर के रजताभ लघु-लघु श्वेत बाल, दाढ़ी-मूंछ घोटमघोट, कमल-नेत्र, पारदर्शक दृष्टि एवं वैचारिकतारुण्य से तरंगायित ओजस्वी स्वरूप मम मानस-पटल पर सहसा अंकित हो जाता है, मैं जब भी याद करता हूं पूज्य गुरुवर स्वामी नारायणानन्द सरस्वती की।

उनकी यह भव्य आकृति उन्हें स्वामी दयानन्द की कोटि में अधिष्ठित कर देती है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी, स्वाभिमानी एवं सहृदय महापुरुष थे। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अद्भुत और आकर्षक था। वस्तुतः वे एक ऐसे नक्षत्र (अख्तर) थे कि जहां भी उदित होते वहीं उजाला करते थे। वह चाहे धर्म की धरती हो या काव्य का आकाश। चाहे कर्म का क्षेत्र हो या समाज-सुधार का परिवेश। वे ऐसे आलोक-पिंड थे, जो अनेक भूले-भटकों को पथ दिखाकर स्वयं शून्य में लीन हो गये, परन्तु उनकी काव्य-कला सदैव निःशेष है।

एक शताब्दी पूर्व उन्होंने पराधीन भारत में जन्म लिया था, परन्तु वे स्वाधीन थे, उनके विचार स्वाधीन थे और उनकी वैखरी स्वाधीन थी। अतएव उन्हें सर्वतन्त्र स्वतन्त्र कहना सर्वथा समीचीन है। मस्ती उनकी नस-नस में समाई हुई थी। उनके हाथ में पर्वतीय काष्ठ विशेष का डंडा सदैव रहता था, जो मानो संन्यासी वेश में उनके दण्डधारण का ही संक्षिप्त रूपान्तर था। योग की क्रिया विशेष 'नाटक' से उत्पन्न उनकी नेत्र-ज्योति के समक्ष दर्शक सहसा विनयावनत हो जाता था। अर्थात् उनकी आंखों में करुणा-परायणता की किरण और आत्म-विश्वास का अलौकिक तेज एक साथ झलकता था।

रूप उन्हें प्रकृति से, नाम माता-पिता से और उपनाम व्यक्तिगत गुण-विशेषों से मिले थे। 'माया विलक्षण स्वामी' अख्तर, अक्षर, विनोदाचार्य, चाप चरन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौबे और 'नारायण' उनके उपनाम थे जो काव्य की विभिन्न धाराओं में आवश्यकतानुसार यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं।

उन्होंने रागात्मक अभिव्यक्ति के लिए पद्य और विचार-गाम्भीर्य के मुखरण के लिए गद्य को चुना। उनकी रचना-धर्मिता में जीविका का कोई स्थान नहीं था, अतः उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह अपनी मस्ती में 'स्वान्तःसुखाय' लिखा। सिद्धान्तों में सन्निहित सत्य का अन्वेषण उनका साध्य और समूचा जीवन साधन था।

वे साहित्यकार ही नहीं अपितु समाज-सेवी, राष्ट्रभक्त एवं सच्चे सन्त भी थे। उनके साहित्य में मानवीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने अपनी साधना से लावनी साहित्य को नित्य नये आयाम दिये हैं। जहां उन्होंने एक ओर अध्यात्म पक्ष का वरण अपने काव्य में किया है, वहीं दूसरी ओर आकांक्षा और यथार्थ के विभिन्न पक्ष ग्रहण कर मानव जीवन के प्रति भावात्मक संवेदना का मुखरण भी किया है। उन्होंने अपनी ओजस्विनी भाव-प्रवण एवं यथार्थपरक रम्य रचनाओं से सामन्तवादी मूल्यों का खंडन कर जनवादी चेतना का संचार किया है। उनका अपना जीवन-दर्शन था, राष्ट्र-सेवा ही उनकी दृष्टि में सच्ची भगवद् भक्ति थी। वे सुख-दुःख को समान मानकर प्रत्येकपरिस्थिति में प्रसन्न रहते थे, वे भविष्य की कभी चिन्ता नहीं करते थे, जो मिल जाता था उसी में सन्तुष्ट रहते थे—कभी घी घना, कभी मुट्ठी भर चना और कभी वह भी मना। वे मन में दैन्य को कभी फटकने नही देते थे, संग्रह के विरुद्ध थे। उपनिषद् और गीता पर उनकी विशेष आस्था थी। कई उपनिषद् उन्हें कण्ठस्थ थे, जिनका पाठ वे प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्त में किया करते थे। वे परोपकारी वृत्ति के थे, इसीलिए वे मूल्यवान् साहित्य की रचना करने में सर्वथा समर्थ हो सके हैं। वस्तुतः उनकी रचनाओं में क्षण का यथार्थ और अचिन्तन ब्रह्माण्ड का अनुभव एक साथ समाविष्ट हुआ है। उनकी भाषा हिन्दी-उर्दू मिश्रित 'हिन्दुस्तानी' और शैली प्रसादयुक्त है जो उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की बोधक है।

मैंने स्वामी जी के श्री चरणों में बैठकर सन् 49 से 54 ई० तक साहित्य-साधना की है। यदि उनके द्वारा प्रेरणा, प्रोत्साहन और पथ-प्रदर्शन मुझे प्राप्त न होता तो मैं चाहे और जो भी कुछ हो गया होता पर कवि न होता।

'नारायण' का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर सके, ऐसी शक्ति तो मेरी लेखनी में नहीं है, फिर भी उनके सान्निध्य में रहकर जैसा मैंने उन्हें जाना है, तदनुसार स्मृति की रेखाओं से उनके व्यक्तित्व को यहां अंकित कर रहा हूं—

प्रथम दर्शन

सन् 1949 ई० में मैंने पूज्य स्वामी नारायणानन्द जी के दर्शन किये थे, उस समय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे भी देवीकुण्ड संस्कृत विद्यालय, देवबन्द के मुख्याधिष्ठाता थे। उनकी प्रेरणा से मेरी आत्मा में सुषुप्त काव्य-तत्त्व का प्रस्फुरण हुआ। मैंने कविता लिखने की विधि उनसे जाननी चाही तो उन्होंने मुझे छन्दों के दोनों भेद -मात्रिक और वर्णिक भली-भांति समझा दिये। संस्कृत का विद्यार्थी होने के कारण मुझे मात्रिक छन्द में रचना करना कठिन और संस्कृत वृत्तों में सरल लगा। अतः मैंने सर्वप्रथम 'द्रुतविलम्बित' का अभ्यास किया और इस वृत्त में 'रघु-कौत्स-संवाद' इतिवृत्तात्मक रचना हिन्दी भाषा में कर स्वामी जी को दिखलाई। उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे प्रोत्साहन दिया। फिर मैंने 'प्रिय-प्रवास' के अनुकरण पर विभिन्न वृत्तों में 'अंजनी कुमार' नामक महाकाव्य 18 सर्गों में लिखा, यह सब अभ्यास के लिए था, इसीलिए लिखा और फाड़ दिया। मेरे पास अब उसकी पाण्डुलिपि भी नहीं है। फिर सन् 50 के आस-पास मैं मात्रिक छन्दों की ओर आकर्षित हुआ। तब तक कर्ण-तुला पर लय तोलने का अभ्यास हो गया था। उस समय 'पंचवटी' के अनुकरण पर मैंने 'नारद-मद-मर्दन' खंडकाव्य लिखा, इसमें 4 सर्ग हैं—तप, गर्व मोह और ज्ञान। सर्गों का नामकरण 'कामायनी' की सर्ग-परम्परा से प्रेरित है। इसका प्रथम सर्ग वर्तमान भूषण अनूपशर्मा ने मनोयोग से सुना और सराहा था। यह काव्य प्रकाशित हो चुका है, इसका समर्पण मैंने स्वामी जी को ही किया है। स्वामी जी ने मेरी काव्य-प्रतिमा को पहचान लिया था। उन्होंने मेरी रचनाओं में काट-छांट या संशोधन कभी नहीं किया। बस वे सदैव यही कहते थे—'बहुत अच्छा' उनकी मान्यता थी कि अभ्यास ही गुरु हैं अतः शिष्य को प्रोत्साहन देना चाहिए, संशोधन नहीं, इससे वह परमुखापेक्षी न होकर स्वावलम्बी होगा। मैंने अपने विद्यार्थी-काल में 'परिश्रम' और 'प्रयास' नामक मासिक पत्र भी निकाले थे। 'परिश्रम' पर स्वामी जी ने आशीर्वादात्मक ये पक्तियां लिखी थीं—

"यह है आशीर्वाद हमारा।
होय 'परिश्रम' सफल तुम्हारा।।"

जब अनूप जी ने गुरु-दक्षिणा दी

सन् 50 में मैं स्वामी जी के साथ अनूप जी के यहां धामपुर गया था, उस समय वे वहां इन्टर कॉलेज के प्रिंसिपल थे। अनूप जी स्वामी जी के साथ 'कवीन्द्र' के सहायक सम्पादक रहे थे और स्वामी जी ने ही अपने प्रयास से अनूप जी को एल० टी० की ट्रेनिंग के लिए बनारस भिजवाया था। अतएव अनूप जी स्वामी जी को गुरु मानते थे, साथ ही सनेही जी के प्रति भी उनकी यही निष्ठा थी। अनूप जी के यहां हम लोग लगभग एक सप्ताह तक रहे। अनूप जी ने खूब खातिरदारी की। प्रतिदिन काव्य-चर्चा होती थी। चलते समय उन्होंने गुरुवर स्वामी जी के चरण स्पर्श किये और विदाई में गुरुदक्षिणा स्वरूप एक रुपया ससम्मान भेंट किया। उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय चांदी का रुपया भी चलता था, सिलवर का भी। चांदी का भाव एक रुपये तोला ही था अर्थात् मुद्रा का अवमूल्यन नहीं हुआ था। विवाह-शादी जैसे शुभ और महान् कार्य भी एक रुपये से ही सम्पन्न हो जाते थे। रुपया लेते समय स्वामी जी भांप गये कि गुरु-दक्षिणा में दिया गया रुपया खोटा है, परन्तु बिना कुछ कहे जेब में रख लिया। बाद में मैंने उनसे पूछा कि जब आप जान गये थे कि यह रुपया खोटा है, तो वापस क्यों नहीं कर दिया। इस पर स्वामी जी ने हंस कर कहा कि दान-दक्षिणा में जो भी श्रद्धा-पूर्वक मिल जाए वह ले लेना चाहिए। फिर खोटा सिक्का और खोटा बेटा दोनों ही आड़े वक्त पर काम आते हैं।

जब दिगम्बर साधुओं की खबर ली

स्वामी जी मानवतावादी थे, उनकी दृष्टि में सभी धर्म और सम्प्रदाय पवित्र थे, परन्तु वे राष्ट्रधर्म को सबसे बड़ा धर्म मानते थे। एक बार जब स्वामी जी लक्ष्मणदास धर्मशाला, लाठी मोहाल, कानपुर में रहा करते थे तो उनकी अनुपस्थिति में प्रबन्धकों ने चातुर्मास के लिए पधारे हुए दिगम्बर मुनियों को स्वामी जी के रहने के कमरे का ताला तोड़कर उसी में ठहरा दिया। कमरे में भारत माता की तस्वीर टंगी थी, जिसे देखकर मुनियों ने उसे वहां से हटाने का निर्देश दिया, परन्तु प्रबन्धकों ने तस्वीर को पर्दे से ढांप दिया। प्रवास से लौटकर जब स्वामी जी वहां पर आये तो सब सुन-समझकर और भारत माता के चित्र की यह अवहेलना देख कर बहुत क्षुब्ध हुए और सम्बन्धित व्यक्तियों की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा कि जिन साधुओं का मन स्त्री-जाति के और वह भी भारत माता के चित्र के अवलोकन मात्र से ही डगमगा सकता है, उन्हें दिगम्बर (नग्न) होकर स्त्री-पुरुषों के सभ्य समाज में स्वच्छन्द विचरण करने का कोई अधिकार नहीं।

इस पर जैनियों में बड़ी हलचल मची, परन्तु स्वामी जी का कथ्य तथ्यपूर्ण था, अतः सब मौन रहे।

हास-परिहास निराला जी के साथ

जब स्वामी जी कानपुर से 'कवीन्द्र' और निरालाजी कलकत्ता से 'मतवाला' पत्र निकालते थे तो दोनों दिग्गजों में खूब नोक-झोंक होती रहती थी। एक बार सन् 1953 ई० में स्वामी जी निराला जी से मिलने दारागंज, इलाहाबाद पहुंचे, मैं भी साथ था, स्वागत के उपरान्त निराला जी ने स्वामी जी से पूछा कि इस समय आप कहां रहते हैं? स्वामी जी ने सहज भाव से कहा कि—कानपुर रहता हूं, लक्ष्मणदास धर्मशाला में। इस पर चुटकी लेते हुए निराला जी ने कहा कि उसे तो आप अपना 'स्मारक' कहिए। जीवित व्यक्ति का 'स्मारक' (मकबरा) नहीं होता, अतः इस व्यंग्योक्ति को समझकर स्वामी जी ने भी तत्काल उत्तर दिया—'चलो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मारक ही सही, पर 'दारा गंज' तो नहीं।' (दारागंज अर्थात् स्त्रियों का मुहल्ला) और दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

अन्तिम इच्छा

स्वामी जी मातृभूमि के भक्त थे, वे मानते थे कि—'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' मातृभूमि की महत्ता ही उनके जीवन का वरदान था, उसकी गुणगाथा का गायन ही उनका काव्य था एवं उसे समर्पित होना ही उनकी मुक्ति थी। उनकी अन्तिम इच्छा थी कि मैं अपनी मातृभूमि के आंचल में अन्तिम सांस लेना चाहता हूं, उसी का पयपान करना चाहता हूं, उसी के तेज में, उसी के शून्य अंक में, उसी की मिट्टी में इस देह की मिट्टी को मिलाकर आवागमन से मुक्त होना चाहता हूं। अतः तुम मुझे मेरी जन्मभूमि पीलीभीत ले चलो। उनकी इस प्रबल आकांक्षा को मैं अनेक युक्तियों से भी बदल न सका, वे अपनी इस अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिए संन्यास तक को भी छोड़ने को तैयार थे। अतः मैं उनके आदेशानुसार उनकी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उन्हें पीलीभीत उसी घर में ले आया जहां उनका जन्म हुआ था, उनके सुपुत्र श्री रामस्वरूप ने अन्तिम समय में स्वामी जी की सेवा-सुश्रूषा की। उनकी इच्छा के अनुसार उनके शव को जल में प्रवाहित न कर अग्नि को समर्पित किया गया। इस प्रकार साहित्य का एक जगमगाता नक्षत्र सदैव को अस्त हो गया।

आज साहित्यिक कठमुल्लों की अपेक्षा के वीच भी उनका सौजन्य-जन्य यश वन्य पुष्प की भांति सतत विकसित है। उसकी सुगन्ध को पहचानने वाला कभी न कभी, कहीं न कहीं, कोई न कोई तो पैदा होगा ही, जो उनकी कृतियों का मूल्यांकन कर साहित्य-जगत के समक्ष प्रस्तुत कर सकेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

उपाचार्य
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर, हरिद्वार—(उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती अख्तर की अन्तिम इच्छा

□ रमेशचन्द्र त्रिवेदी 'पुष्प'

हिमालय की तलहटी में देवहा नदी के तट पर बसे छोटे से जनपद पीलीभीत ने समय-समय पर साहित्य, समाज तथा राष्ट्र को अनेक महान विभूतियां दी हैं जिनमें स्वामीजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनमें हम एक महात्मा, समाज सेवक, लेखक, कवि एवं शायर के दर्शन एक साथ कर सकते हैं।

सन् 1954 की बात है—मैं प्रातःकालीन वेला में अपने आवास मु० गोपाल सिंह पीलीभीत की छत पर सूर्योदय दर्शन एवं सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से ऊर्जा प्राप्त करने हेतु खड़ा था। मैंने मुड़कर पीछे अपने फुफेरे बड़े भाई पं० रामस्वरूप जी तिवारी के घर की ओर देखा, जो मेरे घर से पश्चिम दिशा की ओर निकट ही था। इस समय मेरी भाभी और भाई साहब कुछ दौड़-धूप करते नजर आ रहे थे। मेरे मन में वहां जाने की इच्छा प्रबल हुई। मैं तुरन्त अपनी छत से उतरकर उनके घर जा पहुंचा, और जाकर भाभी के चरण स्पर्श कर इधर-उधर देखने लगा। साथ ही भाभीजी से पूछा, आज क्या कोई मेहमान आया है, जिसके स्वागत-सत्कार में आप इतनी व्यस्त लग रही हैं। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने संकेत करते हुए कहा कि तुम्हारे भाई साहब के पिताजी बहुत दिनों बाद आये हैं और बीमार हैं। मैंने भाई साहब के पिताजी को पहले कभी नहीं देखा था और न ही उनके बारे में कुछ सुना था। इसलिए उनसे मिलने एवं दर्शन करने की इच्छा मैंने व्यक्त की, तो उन्होंने कहा कि सामने कमरे में हैं। वहीं तुम्हारे भाई साहब भी हैं जाकर मिल लो। मैंने धीरे से किवाड़ खोले, तो भाई साहब ने तुरन्त मेरा नाम रमेश लेते हुए कहा—आओ, तुम्हारे फूफा जी से तुम्हारा परिचय करायें। मैंने तुरन्त भाई साहब तथा उनके पिताजी के चरण स्पर्श किये। मैं उनकी मुखाकृति देखता ही रह गया। विचित्र आकर्षण था, भव्यता थी। गोरा रंग, हृष्ट-पुष्ट सुदृढ़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षक शरीर, मुखमंडल की तेजस्विता ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। भाई साहब ने मेरा परिचय कराते हुए कहा—ये 'पुष्प' जी हैं। मेरे छोटे भाई हैं और कवि हैं, तो उन्होंने मुस्कराकर मुझे अपने पास ही बैठा लिया और मुझसे मेरे परिवार तथा नगर के साहित्यिक वातावरण और अपने जीवन के विषय में वार्ता करते हुए उन्होंने कहा—भैया 'पुष्प'! तुम रोजाना यहां आ जाया करो और मेरा परिचय यहां के साहित्यकारों से भी कराओ। मेरी अन्तिम इच्छा है कि इस नगर में कोई साहित्यिक संस्था हो।

इसके पश्चात् मैं अक्सर वहां जाता रहा। मैंने नगर के साहित्यिक प्रतिभा के धनी पूज्य बन्धु जी (गणेश शंकर शुक्ल), शम्भु शरण अवस्थी 'शम्भु' आदि से परिचय कराया। उनसे भी उन्होंने अपनी आकांक्षा प्रकट की तो बन्धुजी तथा शम्भुजी ने आश्वासन दिया कि यहां एक साहित्यिक संस्था स्थापित करेंगे। फिर एक गोष्ठी आर्य समाज मंदिर, पीलीभीत में उनकी (स्वामीजी की) अध्यक्षता में उन्हीं के सम्मान में आयोजित हुई और उसी में हिन्दी साहित्य परिषद पीलीभीत की स्थापना की घोषणा की गयी जो आज नगर में अच्छी, पुरानी साहित्यिक संस्था के नाम से जानी जाती है। जिसकी साहित्यिक गतिविधियों पर नगर को गर्व है।

श्री स्वामीजी ने मुझे अपनी अन्य दिनों की भेंट में बताया था कि पीलीभीत छोड़ने के बाद उन्होंने कानपुर में अपना मुख्य स्थान या आवास लाठी मुहाल मुहल्ले की लक्ष्मणदास धर्मशाला में बनाया था। कानपुर के सभी प्रमुख साहित्यकार वहां आते-जाते थे। नित्य शाम को वहां खूब दूध, मेवा युक्त ढंडाई (भंग) बनती और वे उसका सेवन करते थे। उन्हें रबड़ी, बहुत प्रिय थी। उन्होंने यह भी बताया था कि उनका दबदबा कानपुर नगर में ऐसा था कि उन्होंने जिस सेठ को पर्चा लिखकर भेज दिया उसने उनकी आकांक्षा पूर्ति अवश्य की। जिसके यहां वे पहुंच जाते और जो भी इच्छा करते सेठ लोग उसे पूरी करते थे। उनके विनोदी स्वभाव और सुरीले कंठ से मुखरित कविताओं से भी प्रभावित होते थे। उन्हें छन्दोबद्ध रचनाएं लिखने का अच्छा अभ्यास था। उन्होंने मुझे अपनी कई पुस्तकें और हस्तलिखित पाण्डुलिपियां भी दीं— जिन्हें समयानुसार प्रकाश में लाने का आग्रह किया। मेरा दुर्भाग्य है कि मैंने वे पाण्डुलिपियां यह सोचकर कि ज्ञान के मार्ग में सहायक होना चाहिए, एक शोध छात्र विजयकुमार उर्फ कुमार विजयी सक्सेना को दे दीं। जो कई बार कहने के बावजूद उन्होंने वापस नहीं कीं।

मां वाणी की उन पर अपार कृपा थी। हम भी ऐसी प्रतिभा से प्रेरणा ग्रहण कर साहित्यिक क्षेत्र में सेवा करते हुए उस दिवंगत आत्मा की शान्ति-प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

350 सुनगढी
पीलीभीत—(उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अनुपम विभूति स्वामी नारायणानन्द

□ विपिन मिश्र 'नागेन्द्र'

यह पीलीभीत का सौभाग्य ही है कि मां भारती के इस तेजोमय पुत्र को जन्म देने व पुनः मृत्यु के समय गोद में धारण करने का सौभाग्य पीलीभीत की ही पावन माटी मां को मिला।

मेरा भी उनसे पारिवारिक सम्बन्ध है, यह सोचकर मैं फूला नहीं समाता, वे मेरी मां श्रीमती जयदेवी मिश्रा के सगे फूफा जी थे। उनकी ही हल्की-सी धुंधली स्मृतियों के आधार पर मैं उन पर लिखने का साहस कर पा रहा हूं।

आपका आदि नाम श्री लक्ष्मी नारायण तिवारी था। आपका मूल निवास स्थान पीलीभीत जिले की वीसलपुर तहसील में ग्राम अखौला था। 16 वर्ष की अल्पायु में ही आपका विवाह ग्राम खाकसराय (निकट भिटौरा पीलीभीत) के निवासी श्री दीन दयाल मिश्रा की पुत्री उमावती मिश्रा से हुआ। विवाह संस्कार पीलीभीत के मो० भैंसावाड़ से सम्पन्न हुआ।

आपका भावुक मन का क्रोध 26 वर्ष की अल्पायु में ही जाग गया और आप संन्यास ग्रहण कर कनखल (हरिद्वार) चले गये।

उन्नत ललाट, गौर वर्ण, आकर्षक व्यक्तित्व व उत्तम स्वास्थ्य के धनी स्वामी नारायणानन्द का पारिवारिक व दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं रहा। संन्यास ग्रहण व वैराग्योत्पत्ति के लगभग 3 वर्ष पहले पत्नी से कहा-सुनी हो जाने पर, पत्नी के भाई श्री रामप्रसाद मिश्रा, जो मो० चौक में सर्राफे का व्यापार करते थे, अपनी बहिन श्रीमती उमावती को अपने साथ घर ले आये और फिर कभी वापस ससुराल न भेजा। उस समय आपके पुत्र श्री राम स्वरूप तिवारी की आयु 4 वर्ष थी और पुत्री, रामकली गर्भावस्था में थी।

महान विभूतियां शायद पीड़ा में ही जन्म लेती हैं। सम्बन्ध-सुधार न होने की विवशता के कारण आपने संन्यास ग्रहण का निश्चय किया और प्रभु-भक्ति में लीन हो गये। आपकी पुत्री का जन्म आपके संन्यास ग्रहण के पश्चात अपने भाई के यहां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। आपके अंश से इस समय उनकी पुत्री श्रीमती रामकली की पुत्री श्रीमती रामरती पाण्डेय निवासी मो० तखान, पीलीभीत ही जीवित हैं। और शायद आपके वंश का अन्तिम चिराग। क्योंकि आपका पुत्र व पुत्रवधू निःसन्तान ही काल-कवलित हो गये।

संन्यासाश्रम में प्रवेश के पश्चात आप कनखल से कानपुर में लाठी मुहाल, मोहल्ले में स्थित सेठ लक्ष्मनदास मूलचन्द धर्मशाला के मालिक सेठ लक्ष्मनदास के यहां रहे, जो उनके परम शिष्य थे। देशाटन करते रहने के पश्चात भी आपका मुख्य आवास कानपुर में ही रहा। आपने अनेक लावनियां, भजन व गद्य साहित्य भी लिखा। अन्तिम समय में कानपुर में बीमार होने पर उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उन्हें आर्यसमाज भवन पीलीभीत लाया गया। वहां से उनके पुत्र उन्हें अपने साथ घर लिवा लाये और इनकी सेवा-सुश्रूषा की। आपकी परम-पिता परमात्मा तक की चिरयात्रा का प्रारम्भ, आपके इहलोक त्यागने पर, आपके पुत्र के घर से ही हुआ। जिस मकान में आपकी मृत्यु हुई वह आर्यसमाज मन्दिर की गली में ही स्थित है।

द्वारा बैंक ऑफ बड़ौदा
पूरनपूर (पीलीभीत)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्याल-साहित्य की अमिट प्रतिभा स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

□ वैद्य शरद कुमार मिश्र 'शरद'

चमकदार आंखें, छोटा सिर, बड़े पेट और लम्बी बांहों वाले स्वामीजी लम्बे कुर्ते के ऊपर एक चादर ओढ़े रहते थे। उनकी प्यार भरी ओजस्विनी वाणी और मधु कवि कण्ठ अनजाने व्यक्ति को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। जब पहली बार वे हमारे औषधालय पर देवबन्द आये तो मैं एक विशालकाय शरीर को देखकर सहम-सा गया। यह देखकर स्वामी जी ने मुझे झट गोद में उठा लिया। और प्यार कर अपने लम्बे कुर्ते की जेब में से कुछ मेवे निकालकर मुझे खिला दिये। वह प्यार भरी आकृति मुझे आज तक याद है।

स्वामी जी मूल निवासी तो पीलीभीत के थे पर वह अधिकतर कानपुर में लाला फूलचन्द जी की धर्मशाला में रहते थे। स्वामी जी को 'ख्याल' गाने का विशेष शौक था। जब वे चंग पर ख्याल गाते तो रंग जमा देते थे। उन दिनों देश में ख्यालों के दंगल लगा करते थे। यानी लोग इकट्ठा होकर चंग पर ख्याल (गीत) गाते और एक बड़ा जन-समूह उन्हें सुनने आता और जिसके ख्याल अधिक जमते वह जीत जाता। देवबन्द में भी उन दिनों ख्यालों का वातावरण जोरों पर था। ख्यालों के उस्ताद श्री भैरव आदि उन दिनों बहुत प्रसिद्ध थे और वे ख्यालों के दंगल लगाते थे। यह बात सन् 1928 की है। जब देवबन्द में एक विशाल ख्याल-दंगल का आयोजन हुआ। इसी दंगल में कानपुर से स्वामी जी भी पधारे। इस दंगल में ही देवबन्द के प्रसिद्ध समाजसेवी और दुर्गा कुण्ड संस्कृत विद्यालय देवबन्द के कर्मठ सदस्य श्री दयाराम साहब जी से स्वामी नारायणानन्द सरस्वती का साक्षात्कार हुआ। साहब जी स्वामीजी को लेकर मेरे पिता विद्यालय के मन्त्री और प्रसिद्ध लघुकथाकार आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र के औषधालय पर आये। इस प्रकार हम लोगों का प्रथम साक्षात्कार स्वामीजी से हुआ और आचार्यजी ने उनके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने आदि की व्यवस्था विद्यालय में कर दी।

अब प्रतिदिन कहीं न कहीं ख्यालों का दंगल जमने लगा। सायंकाल को स्वामीजी आचार्यजी के यहां आते और वहां ठण्डाई छनती। इस प्रकार दो-तीन दिन गये और एक दिन विद्यालय के उत्थान के कुछ सुझाव देकर स्वामीजी कानपुर लौट गये।

स्वामीजी साहित्य-प्रेमी तो थे ही उन्होंने ख्यालों को एक साहित्यक रूप दिया और हिन्दी साहित्य को ख्याल (गीत) साहित्य की एक अनूठी देन साहित्यिक ख्याल लिख कर दी। जो हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक अंग बन गई। उनके ख्यालों का एक संग्रह भी छपा और उनके साहित्य को उन दिनों कानपुर से निकलने वाले स्नेहीजी के 'सुकवि' नामक पत्र ने खूब छापा। ख्यालों के अतिरिक्त उन्होंने घनाक्षरी आदि छन्द और कविताएं भी खूब लिखी हैं।

साहित्य और विद्या-प्रेम होने के नाते स्वामीजी अधिक दिन कानपुर न रुक सके और पांच-छः माह बाद वे फिर देवबन्द लौट आये। यहां आकर वे विद्यालय के उत्थान में जी-जान से लग गये। उन दिनों विद्यालय के प्रधानाचार्य थे आचार्य महादेव शर्मा। वे बड़े ही कर्मठ, सौम्य और सरल स्वभाव के मानव थे। स्वामीजी ने उनकी आज्ञा लेकर आचार्यजी और साहब जी से मिलकर विद्यालय के लिए 'अन्न दान' लेने की योजना बनाई जो इतनी सफल रही जिससे विद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या में भी वृद्धि हुई और विद्यालय आत्म-निर्भर भी हो गया। क्योंकि उस समय विद्यालय में मुफ्त शिक्षा, मुफ्त आवास, और मुफ्त भोजन आदि की पूर्ण व्यवस्था थी। स्वामीजी ने जो अन्नदान लेने की योजना बनाई वह इस प्रकार थी—

'देवबन्द में उन दिनों अनाज की खातियां भरी जाती थीं। इसलिए उन्होंने आढ़तियां व खातियां भरवाने वालों से एक धड़ी अन्न प्रति खाती दान मांगा जो सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। इसी प्रकार उन्होंने ग्रामों में जा-जा कर ग्रामीणों से विद्यालय के लिए धन न मांग कर 'अन्नदान' में मांगा। गांव वालों ने इसे स्वीकारा। एक प्रथा की भांति इसे फसलाना निश्चित कर दिया। जो गांव के प्रधान के यहां इकट्ठा हो जाता और विद्यालय के विद्यार्थी समय पर जाकर वहां से ले आते। यही नहीं मुझे याद है उन्होंने कस्बे में घर-घर जाकर गृहणियों को एक हण्डी देकर प्रेरणा दी कि वे एक मुठ्ठी आटा प्रति दिन विद्यालय के लिए दान कर इसमें डाल दिया करें। विद्यार्थी पन्द्रहवें दिन जाकर इकट्ठा कर लाते। इस प्रकार स्वामीजी ने यह कहावत साकार कर दिखाई—'बूंद-बूंद से सागर भर जाता है।' और विद्यालय पर सैकड़ों मन, अनाज इकट्ठा होने लगा।

स्वामीजी को मेरे पिता आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र से बड़ा स्नेह था, इसलिए वे अक्सर हमारे औषधालय और घर पर आते तो मुझे अपनी गोद में उठाकर स्नेह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से थपथपाते। उन्हीं से मुझे कविता लिखने की प्रेरणा मिली। उनके संकेत पर ही उस समय विद्यालय में पढ़ रहे श्री सत्य देव हंस ने मुझे कविता-कहानी लिखने पर अग्रसर किया। स्वामीजी साहित्य-प्रेमी तो थे ही, इसी से उन्होंने विद्यालय में पन्द्रहवें दिन साहित्यिक गोष्ठी और वर्ष में एक हस्तलिखित पत्र की योजना को भी जन्म दिया। जिससे विद्यालय में कवि, लेखक, कहानीकार लघुकथाकार व पत्रकार प्रतिभाएं उभरने लगीं, जिनमें से कुछ तो आज भी स्थान-स्थान पर छाई हुई हैं। मैं भी उनके ही आशीर्वाद से, 'ब्राह्मण-समाचार,' 'वैद्य-वाणी' 'त्रिवेणी' आदि पत्रों का सम्पादन कर अब 27 वर्षों से सहारनपुर में 'जागरण साप्ताहिक' प्रकाशित एवं सम्पादित कर रहा हूं।

जब स्वामीजी का मन देवबन्द से उचटता तो वे कानपुर चले जाते पर वहां अधिक समय टिक न पाते फिर विद्यालय का मोह उन्हें देवबन्द खींच लाता। यह क्रम अनेक वर्षों तक चलता रहा। सन् 1940 में आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र देवबन्द से सहारनपुर चले आये फिर भी वे 1945 तक विद्यालय के मन्त्री रहे। स्वामीजी भी समय-समय पर सहारपुर आचार्यजी के पास आते रहते थे। जब वे आते तो ख्यालों का रंग घर पर ही जमता। कुछ वर्षों बाद वे कानपुर चले गये और वहीं उनका निधन हो गया।[1]

आज स्वामी नारायणानन्द सरस्वती हमारे बीच नहीं हैं पर उनकी वह रस भरी वाणी हमारे कानों में गूंजती है और उनका वह स्नेह भुलाये नहीं भूलता।

सं० 'जागरण साप्ताहिक'
पंसारी बाजार, सहारनपुर

1. स्वामीजी का स्वर्गवास अपनी जन्मभूमि पीलीभीत में ही हुआ।—(सं०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय सन्त स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

□ डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'

हिन्दी, जिसने अनेक झंझावातों के बीच पाषाण-पिंडों को फोड़कर निकलने वाले अंकुर की भांति अपने आपको प्रतिष्ठित किया, उसकी ज्ञान-विज्ञान नयी शाखाओं को समुन्नत करने के लिए, विलुप्त हिन्दी साहित्य का उद्धार करने के लिए और हिन्दी में सर्जनात्मक साहित्य की रक्षा के लिए स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने 'कवीन्द्र' और 'सन्त-सन्देश' जैसे पत्रों का सम्पादन एवं प्रकाशन किया। स्वामीजी ने उच्च आध्यात्मिक काव्य-शक्ति को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और हिन्दी काव्य की एक विशेष विधा, जिसे लावनी या ख्याल कहा जाता है, जो केवल चंगबाजों की मंडली के बीच ही विद्यमान थी, उसे साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का काम स्वामीजी ने किया। लावनीकारों का क्रमबद्ध इतिहास शोध के उच्चतर आयाम को ध्यान में रखते हुए यदि किसी व्यक्ति ने किया तो वह केवल स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने। किस तरह के हिमालय की कन्दरा में बैठे हुए एकान्त साधना से विमुक्त होकर लोक-सेवा में प्रवृत्त हुए।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने अज्ञेयजी को संस्मरण सुनाते हुए कहा था कि—गंगा के घाट पर दण्ड और कमण्डलु लिये हुए विचारमग्न स्वामीजी के मन में आया कि गंगा की यह धारा गोमुख से निकलती है और लोक-कल्याण के लिए भूतल पर विचरती है, यह केवल लोक-कल्याण के लिए ऊंचाई को छोड़कर निचाई पर बह रही है।

हम भूमि के आंचल को छोड़कर केवल कल्पनाओं में खोते हुए हिमालय के दर्पोन्नत ललाट के किरीट पर बैठकर उस एकान्त साधना को करना चाहते हैं जो सामान्य जीवन के साथ विच्छिन्न हो गई है, जिसका जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। वहां हम केवल व्यक्तिगत आत्मिक उन्नयन तो कर सकते हैं। लेकिन दरिद्र नारायण की सेवा करते हुए सारे राष्ट्र को एकता के सूत्र में गूंथने के लिए तो हमें गंगा की इस धारा से ही प्रेरणा लेनी होगी। यह निश्चय कर उन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना दण्ड और कमण्डलु गंगा की बहती हुई धारा में प्रवाहित कर दिया और राष्ट्रीय कार्यों में जुट गये।

(स्वामी नारायणानन्द सरस्वती जन्म शताब्दी पर प्रदत्त भाषण से)

आचार्य एवं अध्यक्ष—हिन्दी
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनी के आचार्य—स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर'

☐ डॉ० शम्भुशरण शुक्ल 'अभीत'

स्वामीजी लावनी के आचार्य हैं, उनको इस विषय का पर्याप्त ज्ञान है।[1] स्वामीजी अद्वितीय लावनी गायक, रचयिता तथा लावनी विद्या के व्याख्याता थे। लावनी शौक और लावनी गायन के सन्दर्भ में स्वामीजी ने लिखा है—'प्रथम लावनी के शौक में ही कानपुर के दर्शन हुए।···उस समय गाने का शौक था और मुझे अपने गाने पर नाज भी था।'[2]

रचयिता के रूप में स्वामीजी ने विशाल लावनी साहित्य की रचना की। डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' के अनुसार[3] स्वामीजी ने तीन हजार लावनियों की रचना की थी। श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर[4] ने स्वामीजी कृत लावनियों की संख्या चार हजार बतायी है। डॉ० 'अजेय'[5] ने एक पत्र द्वारा सूचित किया है कि स्वामीजी की लावनियों के दो रजिस्टर बरेली के तुर्रा पवन के समर्थक बाबूराम ख्यालगो के पास हैं। पीलीभीत के सुप्रसिद्ध कवि श्री रमेशचन्द्र त्रिवेदी 'पुष्प' से भी एक सज्जन 'सरस्वती पदावली' नाम का लावनियों का एक वृहत संकलन ले गये जो उन्होंने वापस नहीं किया। स्वामीजी कृत 'लावण्यलता' लावनियों का एक मात्र ऐसा संकलन है जिसका प्रकाशन प्रथम बार जुलाई 1922 में हुआ था। इसकी पाण्डुलिपि मेरे पास सुरक्षित है। इसकी एक प्रति पाण्डुलिपि रूप में

---

1. नारायण प्रसाद अरोड़ा—लावनी का इतिहास, दो शब्द, पृ० 4।
2. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती—लावनी का इतिहास, पृ० 12।
3. दैनिक विश्वमित्र, 2 जून 1952।
4. डॉ० अजेय को लिखे गए एक पत्र के अनुसार।
5. बाबूराम, बरेली (उ० प्र०) चाहबाई मोहल्ले में रहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सत्यव्रत शर्मा अजेय उपाचार्य गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के पास भी सुरक्षित है। जिसे उन्होंने अपने सुपुत्र श्री सुधीर कुमार शर्मा से तैयार कराया।

लावनी के शास्त्रीय व्याख्याता के रूप में स्वामीजी कृत 'लावनी का इतिहास'[1] लावनी विधा का कीर्ति-स्तम्भ है। मेरे विचार से 'लावनी' पर यह पहली पुस्तक है जिसमें लावनी के इतिहास तथा उसके स्वरूप पर गहराई तथा गम्भीरता से विचार किया गया है। स्वामीजी ने लावनी के एक-एक पक्ष को सोदाहरण समझाने की चेष्टा की है। इससे पता चलता है कि लावनी विधा पर उनकी कितनी गहरी पैठ थी। उन्होंने बिना उस्ताद बने और बिना कोई अखाड़ा कायम किए खयालबाजों के लिए बहुत काम किया।'लावनी का इतिहास' लिखकर लुप्त होती हुई लावनी गायन-विधा और उसके स्वरूप को सुरक्षित कर उसकी रक्षा की। स्व० बनारसीदास चतुर्वेदी के अनुसार 'ख्यालगो लोगों के लिए उन्होंने बहुत काम किया था।'[2]

स्व० चतुर्वेदी जी स्वामीजी के गायन से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने इन्हीं की आवाज में रिकार्ड बनाये जाने की बात कही थी।[3]

'लावनी का इतिहास' की शैली **व्याख्यात्मक विवेचनात्मक** है। उसकी शैली पर आचार्यत्व की छाप है। इसमें खयाल का इतिहास, उसकी परिभाषा, खयाल-बाजों के अखाड़े, अखाड़ों में अनुशासन, दण्ड-व्यवस्था शागिर्द, वाद्य यन्त्र चंग की पूजा, दङ्गल, निमन्त्रण, अखाड़ों का परस्पर व्यवहार, निशान चढ़ाना, खयालों के सम्प्रदाय, दङ्गलों की बैठक, गाने का प्रारम्भ, मंगलाचरण सखी दौड़, गर्वोक्तियां, छाप, शायर, फटकेबाजी, गाने के नियम, लड़ी लडाना, खयालो की रंगतें, सनअत, चित्रकाव्य नायिका भेद, ऋतु वर्णन, रूपक, खायतें, इश्क मार्फत, वेदान्त रिन्द, आदि का सोदाहरण सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया है। स्वामीजी ने लावनी कला के विवेचन में अपने तथा अन्य लावनीकारों के उदाहरण दिए हैं।

हम यहां पर स्वामीजी द्वारा लिखित लावनियों से उदाहरण देकर यह बतायेंगे कि स्वामीजी ने लावनी का साधिकार विवेचन करने के साथ-साथ लावनी पर साधिकार कलम भी चलाई है।

लावनी में चार चौक अवश्य रहते हैं। एक चौक चार कड़ी का भी हो सकता

---

1. प्रकाशन वर्ष—15 अगस्त 1953। प्रकाशक—श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा, ज्ञान मंदिर, पटकापुर, कानपुर। मुद्रक—सतयुग प्रेस बहादुरगंज, इलाहाबाद।
2. श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी को लिखा गया 26-9-46 का पत्र।
3. डॉ० सत्यव्रत शर्मा अजेय के अनुसार ब्रज साहित्य मण्डल के अष्टम अधिवेशन हाथरस (1952) में स्व० बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन के समक्ष यह प्रस्ताव रखा गया। स्वामीजी स्वयं भी वहां उपस्थित थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—कम ज्यादा का भी। खयाल की पहली और दूसरी कड़ी को टेक कहते हैं। फिर चौक होता है। फिर चौक के बाद का पांचवां मिसरा उड़ान (मिलान) कहलाता है। उड़ान के साथ टेक का दूसरा मिसरा मिला दिया जाता है। स्वामी नारायणानन्द रचित एक खयाल द्रष्टव्य है—

टेक— मम मन वांछित फलदाता शमन क्लेशम्
मम मंगल कुरु कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम्,
चौक— मम मति पावन कुरु पावन परम परेशम्
मम मलिन चित्त कुरु शुद्ध अमल अद्वेषम्।
मम मिथ्या मद निर्वारण कुरु विश्वेशम्,
मम मोहरूप तम हरु शिव अज अखिलेशम्।
उड़ान— मम महादेव पदवन्दत राम रमेशम्।
मम मंगल कुरु कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम्।
चौक— मम मात तात सुत भ्रात मित्र सर्वेशम्।
मम मुदित हृदय तव ध्यान कृतं शुभवेशम्।
मम माया तरिणम् त्रिभुवन पति अवधेशम्,
मम मूकं वाचालं कुरु प्रभु अवशेषम्।
उड़ान— मम मूल तत्त्व निर्वाण अगम अग्रेशम्,
मम मंगल कुरु-कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम्।
चौक— मम मन्द बुद्धि कुरु श्रेष्ठ अजर अमरेशम्,
मम महाकष्ट दूरी करणं भूतेशम्।
मम मंजुलकृत उरभाव विभु भुवनेशम्,
मम बन्द मुचित कुरु मदनान्तमक अनिवेशम्,
उड़ान— मम मधुर मृदुल रसना कुरु कुरु गिरिजेशम्,
मम मंगल कुरु-कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम्।
चौक— मम मोद महत पद पंकज बद अवधेशम्,
मम मानस पूजा स्वीकृत हर मुख्येशम्,
मम मर्यादा पति लम्बोदर विघ्नेशम्
मम मगन चित्त गुरुवर अनन्त मुनिवेशम्।
उड़ान— मम मुक्त कृतं 'नारायण' सत उपदेशम्
मम मंगल कुरु-कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम्॥[1]

22 मात्रा के लावनी छन्द को खयाल वाले **छोटी रंगत** कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण छोटी रंगत का है।

---

1. लावनी का इतिहास, पृ० 22-23।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खयाल गायन में विरोधियों पर छींटाकसी, फबती अथवा व्यंग्य किया जाता है—इसको खयाल गायक फटकेबाजी कहते हैं। स्वामीजी कृत 'अख्तर' उपनाम से रचित एक फटका द्रष्टव्य है—

'चख चख करने से क्या हासिल सखुन कहो कोई सखुन को जांच।
चीख चीख कर भागो न साहब अभी खयाल गाओ दस पांच।[1]

स्वामीजी द्वारा प्रयुक्त विभिन्न रंगतें (बहरें) देखिए—

रंगत खड़ी

तीस मात्रा की होती है। 31 मात्रा का आल्हा छन्द भी खड़ी रंगत के अन्तर्गत आता है—

'गण नायक वर बुद्धि विधायक सदा सहायक चाप धृते,
सब जग वन्दन दुष्ट निकन्दन विघ्न राशि आनन्द कृते।[2]

रंगत तिकड़िया

जय जयति राम जँ अवध धाम जय ठाम वाम दिश उत्तर जू।
जय ब्रह्म ईश जय-जय महीश जय-जय नदीश उत्तम सरजू।[3]

रंगतखड़ी संगीत-चौताला

नीके सभी साज सभी अजूबा अन्दाज सज रंग की समाज सब वृजबाला।
बरसाने में घूम लिए संग में हुजूम, होली खेलें झूम-झूम सखि नंदलाला।[4]

शिकस्ता और तवील दोनों ही उर्दू से आई हैं। रंगत शिकस्ता देखिए।

रुदन करें बार-बार विलखें पुकारती कृष्ण-कृष्ण गैया।
भये हैं जग मैं प्रबल कसैया बचा लो आकर हमें कहैन्या।।[5]

---

1. लावनी का इतिहास, पृ० 38।
2. लावण्यतता, खयाल 1।
3. वही, खयाल 28।
4. लावनी का इतिहास, पृ० 50।
5. लावण्यलता, खयाल 25।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगत तवील

राम-राम है मुझमें राम मैं हूं सब राम ही राम दिगर ही नहीं,
रची राम दृष्टि से सृष्टि सकल मेरे राम सा कोई वतर ही नहीं ।।[1]

रंगत तवील मुखफ्फा

यह हिन्दी के सवैया के वज्न की तरह है।

'जब तक वह गुल नजरों में है चेहरे पे शवाहत दूनी है।
एक जरा जो आंखों ओट हुआ बिन यार नगरिया सूनी है।[2]

रंगत सोहनी

शुक्र हक का अदा अरे दिल वद मस्ती से होश में आकर।
शराबे गफलत भूल न पीना तू वज्में मय नोश में आकर ।।[3]

× × ×

पथम मृत्यु से होके मृतक जो यती सप्त अम्बर के तले हो।
प्रकाश उसकी समाधि का बस सदा ज्योति दिनकर के तले हो।[4]

सनअतें

सनअत का शाब्दिक अर्थ कारीगरी है। स्वामीजी की राय है कि यदि इसका अर्थ अलंकार मान लिया जाए तो अनुचित न होगा।[5]

लावनी में हिन्दी उर्दू दोनों की सनअतें अथवा अलंकार प्रयोग किए जाते हैं। स्वामीजी ने भी अपने ख्यालों में सनअतों को महत्त्व दिया है।

तिसहर्फी

'अलिफ' से 'ये' तक को बन्दिश को तिसहर्फी कहते हैं। हिन्दी में 'क' से 'ह' तक की बन्दिश 'ककहरा' कही जाती है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

'किसी का भी मन रहा नहीं स्थिर ध्यानिन के ध्यान छूटे,
खुली अचानक समाधि शिव की, वो तीक्ष्ण मन्मथ के बान छूटे।'[6]

स्वामीजी कृत उल्टी अर्थात 'अलिफ' की बजाय 'ये' से प्रारम्भ होने वाली तिसहर्फी द्रष्टव्य है—

'यह मन मेरा अब अली री, जब से अलक में मोहन की फंस गया है।
ला हासिल जग के हैं काज सारे कहूं क्या विषधर-सा डस गया है।।'

---

1. लावण्यलता, ख्याल 8।
2. वही, खयाल 9।
3. वही, 35।
4. वही, 36।
5. लावनी का इतिहास, पृ० 54।
6. वही, पृ० 56।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलटा ककहरा

इसे स्वामीजी ने 'प्र' के साथ बांधा है।

'प्रहार क्या कोई करे उन पे जो कृपा दृष्टि हरि हर के तले हो।
प्रसन्न मन उस पुरुष का हर क्षण निशा तथा वासर के तले हो।।[1]

दुअंग

जिसके दोनों तरफ एक ही अक्षर हो उसे दुअंग कहते हैं—

थकान अब तक विषय भोग से तृष्णावश बहु किये अनर्थ,
थिर मन कर जप ओम मन्द दिवस रत्न क्यों खोता व्यर्थ।'[2]

यह 'थ' से प्रारम्भ हुआ और अन्त भी 'थ' से ही हुआ।

स्वामीजी का '**अठंग**' का उदाहरण द्रष्टव्य है—

'निकट निकेतन के आनि छाये निकाय नागरि निशंक नीके।
निखरे निखिलांग नेहसाने निखिल नदी देसे निर्खनीके।'[3]

अमात्र

अमात्र उसे कहते हैं जिसमें एक भी मात्रा का प्रयोग न हो—

'तज कर असत ग्रहण कर सतपथ मगन रहत मन पर धर रज।
रजधर चरण गहत मन हरषत कहत मसल सब तज हर भज।'[4]

बेनुकत

जिसमें नुकते वाले किसी शब्द का प्रयोग न हो उसे बेनुकत कहते हैं—

'मलाल हो दूर दिल का सारा अगर दमें वस्ल आइयेगा,
मुराद का गुल हरा हमारा अदा दिखाकर खिलाइयेगा।'[5]

पर

इसमें दोनों तरफ 'पर' होता है—

'परदा करके दिल छीन लिया ओ माहेलका रुखे अनवर पर,
परीजाद में जी पर खेल गया पड़ी जब से नजर तुझ, दिलवर पर।[6]

वेदान्त

दार्शनिक विचारधारा वाली टेकों को लावनी की भाषा में वेदान्त कहते

---

1. लावनी का इतिहास, पृ० 56।
2. लावण्यलता, ख्याल 42।
3. लावनी का इतिहास, पृ० 58।
4. वही, पृ० 58।
5. वही, पृ० 59।
6. वही, पृ० 60।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। स्वामीजी कृत वेदान्ती बन्दिश का उदाहरण देखिए—

'अनादि अविगत अभेद अहै, अचल सनातन की चाल का है।
अलख अगोचर, अखंड अच्युत अजीत अज काल काल का है।'[1]

इश्क मार्फत और लावनी—विषय वर्णन की दृष्टि से लावनी का क्षेत्र व्यापक है हर विषय पर लावनीबाजों ने लिखा है परन्तु इश्क लावनी का जात है। सूफी साधना का प्राण इश्क लावनी में प्रमुखता से गाया तथा लिखा गया है। स्वामी नारायणानन्द द्वारा लिखित कुछ टेकें देखिए—

आंख लगी फिर नींद कहां और सब जाने ये सोते हैं,
मुंह पर अपने डाल दुपट्टा चुपके-चुपके रोते हैं।'

× × ×

कभी इश्क में नींद न आवे कभी बेखबर सोते हैं,
मस्तानों का हाल यही कभी हंसते हैं कभी रोते हैं।'[2]

लावनी साहित्य में **नायक-नायिका भेद** का भी हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य की भांति काफी विस्तार हुआ। स्वामीजी ने भी इस विषय पर लिखा है। दो पंक्तियों का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

'रति के भ्रम सों अति थकित त्रिया याके स्वेद श्रवण गंडस्थल में।
विश्राम किये सुख पाय रही, लिपटी पति के वक्षस्थल में।'[3]

सरापे (नखशिख वर्णन)

लावनीबाजों ने नायिकाओं का सांगोपांग चित्रण किया है। स्वामीजी कृत एक 'सरापे' की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

'जीवन पुर जोश जवानी का
वह नूर का पुतला शान बड़ी।
तसवीर मुनव्वर उस गुल की
हर वक्त रहे नजरों में खड़ी॥
महताब खिजल पेशानी से
सरदार वह सर सरपर पगड़ी।
उस चरम से आहू नादिम है
वह तीरे निगाह खूं से लिपड़ी।

1. लावनी का इतिहास, पृ० 76।
2. लावनी का इतिहास, पृ० 75।
3. श्री रामनारायण अग्रवाल कृत 'हिन्दी की खयाल लावनी परम्परा', पृ० 46।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवरु को लिखूं गर तेगे दुदम
तो वह नोक मिजह नश्तर की कड़ी।
रुखसारों पर सदके दिल है
बस आप गुलाब की नी उखड़ी।[1]

ऋतुवर्णन—खयाल गायकों ने विशेष रूप से श्रृंगार रस के उद्दीपन के रूप में ऋतु वर्णन किया है। कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप से भी किया है जो बहुत कम है। ग्रीष्म ऋतु का सुन्दर वर्णन स्वामीजी की कलम से देखिए—

'तपत जेठ में भानु ज्वाल सम चलत बयार दुपहरी में,
वृक वरूथ वाराह सिंह दुःख सहत अपार दुपहरी में।।[2]

रिन्द—स्वामीजी के अनुसार रिन्द, 'उसे समझना चाहिए जो न तो बुत परस्ती करे और न नमाज पढ़े, शरीअत से बागी, न देवी को माने, न वेद को माने, न कुरान को माने, न मस्जिद में जाके सिजदा करे, न मन्दिर में घण्टा बजावे।[3] रिन्द अपने माशूक के अलावा किसी ओर आंख उठाके नहीं देखता और हर समय इश्क की शराब के नशे में खोया रहता है। रिंदों की परम्परा इश्क की परम्परा का विकास है। इस पर फारसी साहित्य का प्रभाव है। लावनी में रिन्दों के कलाम महत्त्वपूर्ण हैं। स्वामी नारायणानन्द 'अख्तर' का कलाम देखिए—

'मजा हो उसके इश्क की मय में पियूं वो मेरा खुशखिराम हो,
मै के जाम से क्या है काम जब के न बज्म में गुलन्दाम हो।'[4]

लावनी में रूपक—लावनी में रूपक का विशेष महत्त्व है। लावनीबाजों ने बड़े अच्छे रूपक लिखे हैं। स्वामीजी कृत निम्नलिखित रूपक ने विशेष प्रसिद्धि पायी—

'सुख सुगन्ध लोभी मन मधुकर काम कमल पर जा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फंसकर अपने को आप गंवा बैठा।।'[5]

---

1. लावण्यलता, खयाल सं० 53।
2. लावनी का इतिहास, पृ० 68।
3. वही, पृ० 88।
4. वही, पृ० 88।
5. वही, पृ० 69।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंग का रूपक द्रष्टव्य है—

'सत की सिल ले लगन का लोटा मतन रूप डालो जल गंग।
प्रेम प्रीत से पीसकर भक्ति भाव की छानो भंग।।'[1]

पहेलियां—लावनी गायक पहेलियां भी बुझाते हैं। स्वामीजी कृत एक पहेली देखिए—

'रोम रोम में रमा मुरारी, रमा मेरे में मैं में' राम
लाग लगा गल लाल लगाली लाली लीला लग लाल।'

ऐसी पहेलियों के सन्दर्भ में स्वामीजी ने लिखा है, 'इस तरह के मजमून एक प्रकार का कौतूहल उत्पन्न करते थे। यद्यपि जो आनन्द सादा ख्याल में आता है, वह इस प्रकार के ख्यालों में नहीं मिलता, फिर भी अपनी कारीगरी बड़प्पन दिखाने के लिए खासतौर पर ऐसी रचनाएं की गई थीं।'[2]

स्वामीजी ने चित्रकाव्य भी लिखा। इस प्रकार हम देखते हैं कि गायन, लेखन और विश्लेषण सभी दृष्टियों से स्वामीजी की लावनी पर गहरी पकड़ थी। स्वामीजी ने अपनी 'लावनियों' में विभिन्न रंगतों का प्रयोग किया। 'सनअत' अर्थात् कारीगरी की दृष्टि से भी उनका लावनी साहित्य बेजोड़ है। श्रृंगार, वेदान्त, शिक्षाप्रद तथा देशभक्ति पूर्ण ख्याल उन्होंने लिखे। स्वामीजी ने 5 चौक[3] 9 चौक[4] और 10 चौक[5] तक के ख्याल लिखे हैं। निस्सन्देह स्वामीजी लावनी कला के आचार्य थे।

4, प्राध्यापक निवास
उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय
पीलीभीत-262001

1. लावण्यलता, खयाल 18।
2. लावनी का इतिहास, पृ० 60।
3. लावण्यलता खयाल 25 (गो विजय)।
4. वही, खयाल 16 (नरसी की हुन्दी)।
5. वही, खयाल 44 (गीता विभूतियों का)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व और कृतित्व

□ डॉ० सत्यव्रत शर्मा, 'अजेय'

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती—

'अन्तस्तल में हैं गूंज रहे जिनके स्वर।
श्री स्वामी नारायणानन्द जी 'अख्तर'॥
संस्कृत, हिन्दी, उर्दू भाषा के माहिर।
कवि, सम्पादक, लावणीकार जग जाहिर॥
जिसने कि 'सन्त सन्देश' 'कवीन्द्र' निकाला।
रंगत ख्याल में जिनका ठाठ निराला॥
बोली स्वतन्त्रता जिनके जय-गानों में।
लघुता दिखलाई देती उपमानों में॥'[1]

इस पद्य में स्वामी जी का मूल परिचय समाया हुआ है। इनका जन्म वैशाख सुदी 12 बुधवार, सम्वत् 1940 विक्रमी (सन् 1883) में ब्राह्मण वंश में पीलीभीत में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० श्रीकृष्ण तिवारी था। इनका घराना सम्पन्न था, इनके छोटे भाई बाबू मदन गोपाल, मुख्तार, चाहे शुक्लान, मुरादाबाद में रहते थे। इनके एक भतीजे श्री रघुवीर शरण तिवारी, थाणें (महाराष्ट्र) में रहते हैं, वहां इनका अपना प्रेस और अपना मकान है। यह वहां म्युनिस्पिल कमिश्नर भी रह चुके हैं। स्वामी जी के सुपुत्र श्री राम स्वरूप तिवारी अध्यापक थे।

स्वामीजी का पूर्व नाम लक्ष्मी नारायण था, विधाता ने इनके जन्म-नक्षत्र में इन्हें काव्य-शक्ति प्रदान की थी। यह 15 वर्ष की अवस्था में ही कविता करने लगे

1. श्री श्रीनिधि द्विवेदी, साहित्याचार्य, प्रताप, कानपुर, 20 जून, 1955 ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। इनके आदि काव्य-गुरु पं० गोपीनाथ, बरेली वाले थे। इस सम्बन्ध में स्वामीजी ने स्वयं लिखा है—

'मैंने पं० गोपीनाथ जी बरेली वालों को अपना गुरु बनाया और उनकी कृपा से मैंने इस विषय का काफी ज्ञान प्राप्त किया।'[1]

स्वामीजी ने स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था, यह इन सभी भाषाओं में रचना करने में सक्षम थे।

लगभग 28 वर्ष की अवस्था में इन्होंने विषयों मे विरक्त होकर संन्यास ले लिया और 'लक्ष्मी नारायण' का पूर्व पद त्याग दिया। नारायण ही आनन्द है और आनन्द ही नारायण है, अतः इन्होंने नारायण के प्रतीक आनन्द की प्राप्ति का लक्ष्य स्थिर कर उसकी प्राप्ति का मार्ग काव्य को बनाया, क्योंकि इसमें विद्यमान रस ही 'रसो वै सः' है।

लावनी के शौक में भ्रमण करते समय इनकी भेंट खतौली, जिला मुजफ्फरनगर निवासी उस्ताद नत्था सिंह 'तालिब' से हुई। यह सिद्ध और प्रसिद्ध पुरुष थे। इनका संन्यास का नाम 'अनन्त गिरि' था। इनके व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर स्वामी नारायणानन्द ने इन्हें अपना गुरु बना लिया।

प्रमाणस्वरूप स्वामीजी का यह पद्य प्रस्तुत है—

'मम मोद महत् पद पंकज वद अवधेशम्।
मम मानस पूजा स्वीकृत कर मुख्येशम्।।
मम मर्यादा-पति लम्बोदर विघ्नेशम्।
मम मग्न चित्त गुरुवर 'अनन्त' मुनिवेशम्।
मम मुक्त कृतं 'नारायण' सत् उपदेशम्।
मम मंगल कुरु कुरु त्र्यम्बक त्रिगुण मखेशम्।।'[2]

स्वामीजी सन् 1911 में लावनी-गायन का शौक पूरा करने के लिए ही कानपुर आये थे। कानपुर वालों ने आपका बड़ा सम्मान किया। जैन समाज में अग्रगण्य भैया फूल चन्द जैन के अनुरोध से फिर आप वहीं उन्हीं की लाठी मोहाल स्थित लक्ष्मण दास धर्मशाला में रहने लगे।

उर्दू शायरी में इनका तखल्लुस 'अख्तर' था, शेरो-शायरी में ये इसे ही प्रयुक्त करते थे। कानपुर के लिए आपके दिल में बड़ा प्यार है, तभी आपने कहा है—

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृ० 344
2. वही, पृ० 23

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्यों न 'अख्तर' शेर कहने के लिए मजबूर हो,
कद्र दानी इस कदर जब कानपुर वालों में है।'[1]

स्वामीजी की वेश-भूषा सीधी-सादी थी, वह सदा खादी ही पहनते थे। वह वैदिक विचारधारा से अनुप्राणित, राष्ट्र-प्रेमी, अलमस्त, स्वाभिमानी, उदारचेता, परोपकार-परायण, भावुक और सहृदय थे। यद्यपि वह गौर वर्ण थे पर गोरों के विरुद्ध थे, विरागी थे पर देशानुरागी थे, संन्यासी थे पर मातृभूमि की मुक्ति के लिए कर्मरत थे, उनके काव्य की ऊर्जस्विता और वर्चस्विता से निर्जीव भी सजीव हो उठते थे।

'उनकी वाणी में वीणा-पाणि की वीणा की झंकृति और भवानी की हुंकृति थी। कल्प-विकल्प-रहित संकल्प, अदम्य उत्साह, दृढ़ विश्वास एवं जीवन्तता तथा प्रगति के दर्शन हमें उनके काव्य में सर्वत्र मिलते हैं। उनका काव्य भारतीय अस्मिता और तेजो भावना का अग्रगामी वैनतेय है। उसमें कहीं भी कुण्ठा या संत्रास का आभास नहीं है। उनकी जागरूक चेतना अभिप्राप्त पतझड़ के आयामों को बेंधकर वरदायी बसन्त के विपुल वैभव में बिहार करती रही है। सान्ध्य समय की विभीषिका शून्य हृदय में अपना साम्राज्य स्थापित न कर सकी। वह सदैव स्वर्णिम उषा काल के उदय के प्रति आशान्वित रहे और उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से पराधीनता के पाश में जकड़े पड़े भारतीय जन-मानस में नव जागरण, नवोन्मेष, नवोत्साह एवं नवीन नैतिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक भावोर्मियों का सुख संचार किया।'[2]

इनकी लावनियों का संग्रह 'लावण्य लता' नाम से सन् 1922 ई० में प्रकाशित हुआ था। यह इनकी प्रतिनिधि कृति है। आचार्य सनेहीजी के शब्दों में—'स्वामी जी उन प्रतिभाशाली व्यक्तियों में से हैं जो देश व समाज का उपकार कर सकते हैं।···आपने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करके ऐसे ख्यालों की रचना की जो नीति, धर्म और ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सम्बन्धी विविध विषयों से पूर्ण हैं। वर्णन-शैली बड़ी ही मनोहारिणी और चित्ताकर्षक है।'[3]

स्वामीजी तुर्रा पक्ष के समर्थक होते हुए भी बिना किसी भेद-भाव के कलगी पक्ष को भी समान मानते थे। इनका स्वर सुन्दर और सधा हुआ था, परन्तु सन् 1920 ई० में इन्होंने चंग बजाकर लावनी गाना छोड़ दिया था। कानपुर के लावनीकारों में मियां मौलाई, पं० गौरी शंकर, आनन्दी शायर, चुन्नी गुरु, पं०

---

1. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', स्वामी नारायणानन्द, दैनिक विश्वमित्र, कानपुर, 2 जून 1952 ई०।
2. सुधीर कुमार शर्मा, स्वामी नारायणानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (अप्रकाशित), पृ० 2
3. गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, (भूमिका) लावण्य-लता, पृ० 2

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिलाल, भगाने बाबू, शंकर स्वामी, बैजनाथ बाबू और चिरंजी लाल पटवा आदि से आपका प्रगाढ़ सान्निध्य रहा है। एक बार सन् 1916 में सवाई सिंह के अहाते में हाफिज लखनवी से आपका गाना लड़ा था, जिसमें आपको सफलता मिली थी। कानपुर के अतिरिक्त पीलीभीत, अयोध्या, देवबन्द, आगरा और हरिद्वार में भी आपके लावनी-गायन की धूम थी।

'आचार्य सनेही का सत्संग होने से आपका ध्यान गजल, घनाक्षरी आदि की ओर भी गया।'[1]

सन् 1921 में सनेही जी ने कतिपय कवियों की पुरस्कृत राष्ट्रीय रचनाओं का संकलन 'संजीवनी' नाम से स्वयं प्रकाशित कराया था। इसमें स्वामीजी का 'स्वदेशी गान' तथा 'अहिंसा-संग्राम' नामक दो रचनाएं संकलित हैं। 'स्वदेशी गान' बहुत प्रसिद्ध हुआ, इसकी टेक है—

'जियें तो बदन पर स्वदेशी वसन हो।
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो॥'

जिस प्रकार 'रसलीन' के 'अमिय हलाहल मद भरे' दोहे को भूल से 'बिहारी' का मान लिया जाता है, उसी प्रकार यह पंक्तियां भी भ्रान्ति की शिकार हो गईं। डॉ० अरविन्द जोशी ने अपने शोध प्रबन्ध में इनका रचयिता कवि भवानी प्रसाद गुप्त, विप्लवगान, क्रान्ति गीत संग्रह, प्रथम संस्करण, 1940 ई० बताया है।'[2] वास्तव में इन पंक्तियों के रचियता स्वामीजी ही हैं, क्योंकि उनकी यह रचना सन् 1921 में प्रकाशित हो चुकी थी।

'कानपुर में सनेहीजी और स्वामीजी ने हिन्दुस्तानी धारा का प्रसार किया।'[3] स्वामीजी हिन्दी-उर्दू मिश्रित खड़ी बोली के पक्षपाती थे।

सन् 1923 में इन्होंने अपने प्रयास से कानपुर में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अन्तर्गत अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का लक्ष्मण दास धर्मशाला में आयोजन कराया था। इसकी अध्यक्षता महाकवि जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने की थी। बस तभी से भारतवर्ष में कवि-सम्मेलनों की नींव पड़ी।

सम्वत् 1981 विक्रमी में इन्होंने कानपुर से कविता का मासिक पत्र 'कवीन्द्र' निकाला था, जिसके सहायक सम्पादक महाकवि अनूप शर्मा थे। एवं सम्वत् 1992 वि० में गया से धर्म एवं साहित्य समन्वित मासिक 'सन्त सन्देश' निकाला,

---

1. 'अजेय', स्वामी नारायणानन्द (लेख) दैनिक विश्वमित्र, कानपुर, 5 जून 1952 ई०
2. द्रष्टव्य—गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ० 238
3. अजेय, कविवर स्वामी नारायणानन्द जी, प्रताप, कानपुर, 6 अक्टूबर 1952 ई०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस पर गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति स्व० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने अपनी सम्मति व्यक्त करते हुए कहा था कि—'सन्त नारायणानन्द सरस्वती द्वारा संचालित 'सन्त सन्देश' के उद्देश्य नितान्त जन-हितकारी हैं।'[1] दोनों ही पत्रों में उच्च कोटि के साहित्यकारों की रचनाएं प्रकाशित होती थीं। अनूप जी की भांति हितैषीजी भी 'श्रद्धेय स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती 'अख्तर' को गुरुजनों की भांति मानते थे।'[2]

श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी स्वामीजी पर हार्दिक श्रद्धा रखते हैं, सन् 1951 में उन्होंने मुझे एक पत्र इस आशय से लिखा था कि मैं स्वामी जी से 'लावनी का इतिहास' लिखने का अनुरोध करूं, वह लिखते हैं—

प्रियवर, टीकमगढ़

वन्दे। 4-7-51

स्वामी नारायणानन्द जी को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं। उनकी उस कविता की ध्वनि 'अपने को आप गंवा बैठा।' अब भी मेरे कानों में गूंज रही है, जो उन्होंने ना० प्र० सभा, आगरे में पढ़ी थी। 'विशाल भारत' में उनका एक विस्तृत लेख भी छपा था।

संभवतः अगस्त या सितम्बर में मुझे कानपुर पहुंचना होगा, गणेश-स्मृति-ग्रंथ के कार्य के लिए, तभी मैं स्वामी जी की सेवा में अवश्य उपस्थित होऊंगा। आप उनके बारे में जो भी सेवा ले सकें, लें। वयोवृद्धों के चरणस्पर्श करके उनका आशीर्वाद लेने में मेरा दृढ़ विश्वास है।

खयालगो सम्प्रदाय के इतिहास लिखाने की जरूरत है। कृपया स्वामी जी को मेरा प्रणाम कहिए। उनके दर्शन मुझे अवश्य करने हैं।

विनीत—
बनारसीदास

मैं उस समय स्वामी जी के पास कानपुर में ही रहता था, इस पत्र के पश्चात् ही स्वामी जी ने 'लावनी का इतिहास' लिखना आरम्भ किया था।

स्वामी जी लावनी-साहित्य के विद्वान् एवं काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। हिन्दी साहित्य को आपने अनेक सुयोग्य एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार दिए हैं।

'आलोक वृत्त', 'चांदनी' तथा 'सौ गुलाब खिले' आदि के रचयिता श्री गुलाब खंडेलवाल काव्य के क्षेत्र में आपके पटु शिष्य हैं—ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उनकी विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने उन्हें

1. सन्त सन्देश, गया, जनवरी, 1936 ई०
2. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', महा मनीषी जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व', पृ० 14

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रोला' छन्द सिखाया और 'प्रिय प्रवास' पढ़ाया, तब से वे काव्य-रचना करने लगे।'[1] आजकल आप चौक, प्रतापगढ़ में रहते हैं।

गद्य के क्षेत्र में 'बहती रहे नदिया' तथा 'अदृश्य रेखाएं' आदि अनेक उपन्यास तथा कहानी-संकलनों के रचयिता श्री श्रीराम शर्मा 'राम' आपके सुयोग्य शिष्य हैं, आजकल आप मेरठ में रहते हैं। उनका कथन है कि—

'मेरा समूचा जीवन श्रद्धेय स्वामी नारायणानन्द जी का ऋणी है।'[2]

तीसरा शिष्य मैं स्वयं को मानता हूं। 'नारद मद मर्दन', 'मीरा' और 'कुणाल' आदि लगभग 16 पुस्तकें मेरी अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। मैंने सन् 1949 से स्व० श्री नारायणानन्द जी सरस्वती को गुरु मानकर काव्य-रचना प्रारम्भ की। उस समय स्वामी जी देवीकुंड संस्कृत महाविद्यालय, देवबन्द के मुख्याधिष्ठाता थे और मैं वहां मध्यमा कक्षा में पढ़ता था। स्वामी जी के सम्पर्क में जाने पर मैंने भी बहुत-सी लावनियां लिखी हैं—'लावनी का इतिहास' में अपने आशीर्वाद से अभिषिक्त करते हुए मेरे सम्बन्ध में इन्होंने लिखा है—'मेरे निकट आने पर इन्हें भी लावनी साहित्य से स्नेह हो गया है। इधर इन्होंने पचासों लावनियां लिखीं। लावनी-साहित्य पर कुछ लेख भी लिखे, जैसे—'हिन्दी कवियों में लावनी-प्रेम', 'हिन्दी साहित्य और लावनी', 'लावनी का विस्तृत क्षेत्र' आदि —

सत्यमस्य प्रियं यस्मात्, नाम्ना सत्यव्रतस्ततः।
ध्रुवो भवतु बालोऽयमथ चास्तु प्रियव्रतः॥[3]

स्वामी जी के सम्बन्ध में उपलब्ध शोध-सामग्री का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1. स्वामी नारायणानन्द, ले० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', दैनिक विश्वमित्र, कानपुर, सोमवार, 2 जून 1952 ई०

इस लेख में स्वामी जी की प्रकाशित 7 पुस्तकों का उल्लेख है।

2. कविवर स्वामी नारायणानन्द, ले० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', साप्ताहिक प्रताप, कानपुर, 6 अक्टूबर, 1952 ई०

इस लेख में स्वामी जी की काव्य-शैलियों का विवेचन किया गया है।

3. ब्रह्मलीन स्वामी नारायणानन्द जी, लेखक सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', साप्ताहिक प्रताप, कानपुर, 27 जून, 1955 ई०

---

1. डॉ० ब्रजमोहन पांडेय 'नलिन' आदि, नवकल्प, गया, 21 अक्टूबर 1976 का विशेषांक, पृ० 7
2. शान्ति स्वरूप 'कुसुम', रजत-रेणु, नवम्बर 1957 का संस्करण, पृ० 51
3. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृ० 340

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख में दिनांक 11 नवम्बर, सन् 1954 ई० को पीलीभीत में 'नारायण' के नारायण में लीन हो जाने पर श्री सनेही जी, श्री श्रीनिधि द्विवेदी और श्री प्रणयेश शुक्ल आदि की काव्य-मय शोक-श्रद्धांजलियां स्वामी जी के जीवन परिचय के साथ प्रस्तुत की हैं।

4. जब मैं उनके सम्पर्क में आया, ले० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' साप्ताहिक प्रताप, कानपुर, 12 नवम्बर 1956 ई०

इस लेख में यह प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार मैंने स्वामी जी से साहित्यिक दीक्षा प्राप्त की।

5. अलमस्त कवि स्वामी नारायणानन्द 'अख्तर', ले० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' राष्ट्रभाषा सन्देश, प्रयाग, 31 जनवरी सन् 1979 ई०।

इस लेख में स्वामी जी की मस्ती और चिन्तन-पक्ष को उजागर करते हुए उनकी साहित्य, समाज और स्वदेश की सेवा पर प्रकाश डाला है।

इसी प्रकार पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' सन् 1951 में डॉ० सोमप्रकाश 'सुधेश' ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' सन् 1955 में तथा डॉ० उपेन्द्र ने दैनिक 'जागरण' कानपुर के रजत जयन्ती विशेषांक सन् 1972 में स्वामी जी के साहित्यिक जीवन पर सार-गर्भित लेख लिखे हैं, जिनमे उनकी भाषा-शैली पर सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

श्री गणेश शंकर शुक्ल 'वन्धु' ने 'पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास' में पृष्ठ 18, 19, 20 पर स्वामी जी का सचित्र परिचय छापा है। उनकी दृष्टि में 'स्वामी जी ने लावनियों में हिन्दी भाषा का प्रयोग करके हिन्दी के साथ बड़ा उपकार किया है।'[1]

हिन्दी साहित्य में संस्मरण शैली के अद्भुत शिल्पी एवं 'रिपोर्ताज' शैली के जनक सुप्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार डॉ० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने अपने दिनांक 30-12-82 के एक पत्र द्वारा मुझे सूचित किया है कि, 'स्वामी नारायणानन्द जी का अपार स्नेह मुझे मिला है। उनके द्वारा रचित कविताओं की संख्या 4000 से भी अधिक है, उनकी जन्म-शताब्दी पर उनका प्रकाशन ही उनका सच्चा श्राद्ध है।'

विद्या भास्कर श्री सुधीर कुमार शर्मा ने स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध-प्रबन्ध लिखा है, जिसमें 6 अध्याय हैं। लेखक ने इस कृति में कवि के काव्य के अन्तरंग पक्ष को उजागर करते हुए कविता की अन्तरात्मा में तिरोहित ध्वनि के व्यंग्यार्थ लावण्य को अभिव्यक्ति प्रदान की है एवं स्वामी जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सफलतापूर्वक उजागर किया है। इसी प्रकार लावनी-साहित्य पर

---

1. पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास, पृ० 19

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोधकर्त्ता डॉ० पुण्यमचन्द 'मानव' तथा श्री कल्याण प्रसाद वर्मा ने अपने शोध-प्रबन्धों में स्वामी जी का उल्लेख कर उनके 'लावनी का इतिहास' को प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रंथ माना है और प्रेरणा ग्रहण की है।'

'लावण्य लता' के अतिरिक्त असहयोग का अणु बम, तराने हिन्द, सरयू-रहस्य, रंगीली होली, गायत्री उपासना प्रकाश, लावनी का इतिहास तथा सन्तोषी सुदामा आपकी प्रकाशित कृतियां हैं, जिसमें से अब 3 ही उपलब्ध हैं। आपकी अप्रकाशित लावनियों का विशाल संग्रह श्री बाबू राम, तुर्रा पक्ष के लावनी कार के पास बरेली में सुरक्षित है।

राजस्थान के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने ता० 25-11-52 के आदेश संख्या 3 डी० बी० जी० सी० एम-15:1:-10434 के द्वारा इनसे सम्पादित 'सन्तोषी सुदामा' हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में तथा 'लावनी का इतिहास' पब्लिक लायब्रेरियों के लिए स्वीकृत किया है।

परतन्त्रता-काल में उन्होंने कांग्रेस-आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया था, परिणामस्वरूप कई बार वह 'श्री कृष्ण जी के जन्म-गृह' में भी रहे थे। इस समय अंग्रेजों को उन्होंने फटकारते हुए कहा था—

'हमारी नस-नस का खून तूने, बड़ी सफाई के साथ चूसा,
है कौन-सी पालिसी तेरी वो, घुला कि जिसमें जहर नहीं है।'

उनकी दृष्टि में देश-धर्म से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं था—

'देश-धर्म पर जिसने निज तन, मन धन अर्पण किया नहीं।
जीवित नहीं, मृतक है वह नर, जिया भी तो कुछ जिया नहीं॥'[1]

ज्ञान के समान पवित्र कोई अन्य वस्तु इस सृष्टि में नहीं है एवं सच्चा ज्ञान अकर्म से नहीं, अपितु निष्काम कर्म से ही सम्भव है—

'कर्मों से ज्ञान हो यही वेद कहते हैं।
जब ज्ञान हुआ फिर कर्म नहीं रहते हैं॥
जैसे वृक्षों पर प्रथम पुष्प आते हैं।
फल प्रकट होंय तब पुष्प सूख जाते हैं॥
ऐसे ही मनुज कर्मों से ज्ञान पाते हैं।
जब ज्ञान हुआ कर्मों को बिसराते हैं॥
कर्मों का संग अज्ञानी जन सहते हैं।
जब ज्ञान हुआ फिर कर्म नहीं रहते हैं॥'

---

1. लावनी का इतिहास, पृ० 352

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी की कुछ लावनियां श्री बैजनाथ जिल्द साज, ज्वालापुर के पास भी एक रजिस्टर में सुरक्षित हैं, उनमें से एक लावनी का प्रथम चौक यहां प्रस्तुत है, इस रचना में श्री कृष्ण जी किसी व्रजांगना से बलपूर्वक 'दान' मांग रहे हैं, वह कृष्ण जी के इस कृत्य का निषेध करती है—

'मग रोके हो खड़े कान्ह काहे, मो से टकराते।
बरजोरी कर झकझोरी, बहियां मोरी क्यों मरोरी, यौवन मद-माते ।।
गैल हमारी छोड़ सांवरे, जाना हमको दूर,
करो मत गागर मोरी चूर।
शील स्वभाव नन्द का होना, सो हमको मंजूर ।।
बार-बार बलि जाऊं लला काहे, मो से इतराते।
बरजोरी कर झकझोरी, बहियां मोरी क्यों मरोरी, यौवन मद-माते ।।'

स्वामी जी ने अनेक कला कलित, ललित लावनियां लिखी हैं, यहां बानगी के रूप में कतिपय टेकें प्रस्तुत हैं।

गंगा-यमुना के समान ही सरजू नदी भी भारतीय जन-मानस में महनीय है। स्वामी जी जब अयोध्या जी में रहते थे तब इन्होंने 'माया-विलक्षण' नाम से अयोध्या सम्बन्धी बहुत-सी रचनाएं लिखीं—

'जय जयति राम, जै अवध धाम, जय ठाम, वाम विधि उत्तर जू।
जय ब्रह्म ईश, जय जय मुनीश, जय जय महीश, जय जय सरजू ।।'

बरसाने की होली आज भी प्रसिद्ध है, व्रज-बालाएं व्रज-विहारी के साथ और व्रज-विहारी व्रज-बालाओं के साथ मस्ती से होली खेल रहे हैं—

'नीके सभी साज, सभी अजूबा अन्दाज,
सज रंग की समाज, सब व्रज बाला।
बरसाने में धूम, लिये संग में हुजूम,
होली खेलें झूम-झूम, सखि नंद लाला ।।'

मनमथ सभी के मन को मथ देता है—

'किसी का भी मन रहा नहीं स्थिर, समस्त ध्यानिन के ध्यान छूटे।
खुली अचानक समाधि शिव की, वो तीक्ष्ण मन्मथ के बान छूटे ।।'

श्याम-अलकों में फंसकर मन निकल नहीं पाता—

'यह मन मेरा अय अली री, जब से अलक में मोहन की फंस गया है।
ला हासिल जग के हैं काज सारे, कहूं क्या विषधर-सा डंस गया है ।।'

यदि ईश्वर की कृपा हो तो उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता—

'प्रहार क्या कोई करे उस पै जो, कृपा दृष्टि हरि हर के तले हो।
प्रसन्न मन उस पुरुष का हर क्षण, निशा तथा आसर के तले हो ।।'

प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर चलने में ही जीवन की सफलता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'थका न अब तक विषय भोग से, तृष्णा वश बहु किये अनर्थ।
थिर मन कर जप ओइम् मन्द अब, दिवस-रत्न क्यों खोवे अनर्थ ॥'

नायक नायिका के घर के सामने अपना घर बनाना चाहता है—

निकट निकेतन के आनि छाये, निकाय नागरि निसंक मीके।
निखारे निखिलांग नेह साने, निखिल नदीदे[1] से निर्खनी के ॥'

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' ही मानव का लक्ष्य होना चाहिए—

'तज कर असत ग्रहण कर सत पथ, मगन रहत मन सर धर रज।
रज धर चरण गहत मन हरपत, कहत मसल सब तज हर भज ॥'

संयोग से वियोग के सब दुःख दूर हो जाते हैं—

'मलाल हो दूर दिल का सारा, अगर दमे वस्ल[2] आइयेगा।
मुराद[3] का गुल हरा हमारा, अदा दिखा कर खिलाइयेगा ॥'

घूंघट-पट की ओट से की गई चोट असह्य होती है—

'परदा करके दिल छीन लिया, ओ माहेलका[4] रुखे अनवर[5] पर।
परीजाद[6] में जी पर खेल गया, परी जब से नजर तुझ दिलवर[7] पर ॥'

नायिका-भेद पर भी आपने अनेक लावनियां लिखी हैं—

'श्रवण भाल पर स्वेद श्वेत मुख, नयनन में अरुणाई है।
अहो कुटिल पापिनी चेरि तें का घर निशा गंवाई है ॥'

'रति के श्रम सों अति थकित त्रिया, याके श्वेद स्रवत गंडस्थल में।
विश्राम लिये मुख पाय रही, लिपटी पति के वक्षस्थल में ॥'

'अरी सहेली धरे हैं सूजे पिरात मम उर के ठाम दो हैं।
कहा सखी ने विहंस के आली, ये काम-कन्दुक ललाम दो हैं ॥'

ऋतु-वर्णन भी आपका बड़ा मनोहारी है—

'तपत जेठ में भानु ज्वाल सम, बहत बयार दुपहरी में।
वृक, वरूथ, वाराह, सिंह दुख सहत अपार दुपहरी में ॥'

अहम् ब्रह्म और ब्रह्म ही अहम् है—

'रोम रोम में रमा मुरारी, रमा मेरे में मैं में राम।

---

1. नदीदे, नदीदः- जिसे देखा न हो, अत्यन्त लोभी।
2. दमे वस्ल=मिलन का समय।
3. मुराद=इच्छा
4. माहेलका, माहलिका=जो देखने में बिलकुल चांद जान पड़े, चन्द्रमुखी।
5. रुखे अनवर=उज्ज्वलतम चेहरा।
6. परीजाद=परी का बच्चा
7. दिलवर=प्रेम-पात्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाग लगा गल लाल, लगा ली लाली,
लीला लग लाल।'

प्रेम में अजीब मस्ती है—

'कभी इश्क में नींद न आवे, कभी बेखबर सोते हैं।
मस्तानों का हाल यही, कभी हंसते हैं कभी रोते हैं।।'

'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति मन, बुद्धि, अहंकार से ऊपर उठकर ही होती है, इन्द्रियों को जीत लेने पर साधक कह उठता है—

'अनादि, अविगत, अभेद, अद्वय, अचल, सनातन की चाल का हूं।
अलख, अगोचर, अखंड, अच्युत, अजीत, अज, काल काल का हूं।।'

संस्कृत भाषा में भी आपने लावनियां लिखी हैं, शिव-स्तुति देखिए—

'नमामि पंचाननं त्रिनेत्रं, भजामि विश्वेश्वरं महेशम्।
शिवं सदा साम्ब शान्त-चित्तं, धृतांग भस्मं परं परेशम्।।'

स्वामी जी की रचनाओं में मानव, प्रेम, अध्यात्म, वैराग्य, उपदेश, उद्बोधन, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रीयता, नीति और भक्ति आदि विषय प्रमुख रूप से पाये जाते हैं, उनमें जन-रंजन की प्रवृत्तियों के साथ सामाजिक संवेदना, क्षण का यथार्थ और अचिन्त्य ब्रह्माण्ड का अनुभव एक साथ समाविष्ट हुआ है।

इन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी और संस्कृत में भी पर्याप्त पद्य-रचना की है। इनकी भाषा में हिन्दी उर्दू तथा ब्रजभाषा की शब्दावली का समन्वय है। आपके पद्यों में ककहरा, उल्टी तितहर्फी, दुष्टा ककहरा, दुजंग, असंग, अमात्रबेनुकल, घर रूपक, मालोपमा, विरोधाभास, अनुप्रास, सिंहावलोकन, अधर, और दृष्टान्त आदि समअत तथा अलंकारों का समावेश हुआ है। पद्य के अतिरिक्त गद्य पर भी आपका अच्छा अधिकार था। इनकी शैली में रसात्मकता, पदावली की कोमलता, मधुरता तथा सरसता है। इन्होंने काव्य-रचना में लावनी के अतिरिक्त सवैया, घनाक्षारी, गीत, गजल, मुसद्दस आदि विविध छन्दों को भी अपनाया है।

अहंकार पाप का मूल है, नाशवान् विश्व-विभूतियों पर गर्व करना व्यर्थ है, अत—

'पाके हुस्नो दौलत मत अकड़ो ये रंगत काफूरी है।
लाख गुनाहों से बढ़ कर दुनिया में यक मगरूरी है।।'
खाक सार जन रखो चन्द दिन, चलना तुम्हें जरूरी है।
कदम कदम पर उस छालिक की, कुदरत पर मशकूरी[1] है।।

1. मशकूरी = कृतज्ञता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूर न हरे जो वन के मजे में, कायम कब महरूरी[1] है।
मसरूरी[2] है चन्द रोज और आखिर को मखभूरी[3] है ।।
गाफिल[4] है जब तलक असल में, तभी तलक महजूरी[5] है।
लाख गुनाहों से बढ़ कर, दुनिया में यक मगरूरी है ।।'

इन्होंने अपनी रचनाओं में संस्कृत की सूक्तियों को भी अपना प्रेरणा-स्रोत बनाया है। एक प्रसिद्ध संस्कृत पद्य है—

'रात्रिर्गमिष्यति, भविष्यति सुप्रभातम् ।
भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकजश्री ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे ।
हा हन्त, हन्त, नलिनी गज उज्जहार ।।'

अर्थात्—रात बीतेगी, प्रभात होगा, सूर्य निकलेगा और कमल खिलेंगे। कमल कोश में निबद्ध भौंरे के इस प्रकार सोचते-सोचते हा हन्त ! उसी कमल को हाथी ने तोड़ डाला। इसी भाव-भित्ति पर आधारित इनकी प्रसिद्ध रचना है—

सुख-सुगन्ध लोभी मन-मधुकर, काम-कमल पर जा बैठा।
प्रेम-पांखुरी में फंसकर अपने को आप गवां बैठा ।।'
यह संसार-सरोवर जिसमें, नारि रूप है नीर अगम।
पुत्र-पौत्र-परिवार रूप खिल रहे विमल पंकज उत्तम ।।
कोई अरुण कोई नील श्वेत छवि, भांति-भांति छहरात पदम।
तिन पर मोहित फिरे मधुप-मन, प्रिय-पराग की चाह अधम ।।
यौवन रूपी जलज निरख धूं-धूं करता तहं आ बैठा।
प्रेम-पांखुरी में फंस कर अपने को आप गवां बैठा ।।

कुटुम्ब रूप इस कमल-कोष में, मन-मिलिन्द पैवस्त[1] हुआ।
तन की सुधि ना रही रमण-रज, चाखत-चाखत मस्त हुआ ।।
बुद्धि-दिवस गया बीत, ज्ञान-रवि, अस्ताचल में अस्त हुआ।
विषय-बन्ध में अंधा ब्रह्म विद्या-बल सारा पस्त हुआ ।।

---

1. महरूरी = चन्द्रमुखीपन
2. मसरूरी = रुचि की मस्ती
3. मखभूरी = बदमस्तगी, मदोन्मत्तता
4. गाफिल = बेखबर
5. महजूरी = विरह
6. पैवस्त = किसी वस्तु में पूरी तरह व्याप्त होना, जज्ब।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोग रूप भ्रम में भूला, पुनि आगम-आग लगा बैठा।
प्रेम-पांखुरी में फंस कर अपने को आप गवां बैठा॥

नेह-निशा के बीच मगन तृष्णा की हिम में उठी तरंग।
स्वादु रूप सुख लहूं प्रात ही, उदय होय जब पुण्य-पतंग॥
जीवन का जल पीते तब तक, मौत रूप आ गया मतंग।
आयु रूप अरविन्द तोड़ ले गया, जमाया अपना रंग॥
मुद मधुहित इस केलि-कंज में, घुस कर जान खपा बैठा।
प्रेम-पांखुरी में फंस कर, अपने को आप गवां बैठा॥

काया रूपी कमल काल रूपी कुंजर जब लेवे तोड़।
मूल मनोरथ नष्ट होंय सब, भाव-भृंग जावें संग छोड़॥
अन्त समय कोई साथ न जावे, खिले रहें चहें कंज करोड़।
प्रभु-पद प्रीत पराक्रम कर, इस राग रूप रस से मुंह मोड़॥
नाता नीरज तज 'नारायण', राम नाम-गुण गा बैठा।
प्रेम-पांखुरी में फंस कर, अपने को आप गवां बैठा॥

समाज में गिरते हुए मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा वैदिक ज्ञान के बिना असम्भव है। काश, भारतीयों को आत्म-गौरव का ज्ञान हुआ होता तो निश्चित ही सम्पूर्ण विश्व में उनका सम्मान होता—

'जो आज भारत निवासियों को, यथार्थ वेदों का ज्ञान होता।
जो अपने गौरव का ध्यान होता, तो सर्व देशों में मान होता॥
कृपा से ईश्वर की ब्राह्मणों को, वो ब्रह्म-विद्या का भान होता।
सदा ही यजु, साम-गान होता, ये देश अपना सुजान होता॥
जगत में सत्योपदेश द्वारा, जो यज्ञ विधि का विधान होता।
नियम के अनुकूल दान होता, प्रसिद्ध तप बल महान होता॥
कहीं जो देश ये विद्वान होता,
तो सर्वोपरि बड़ा बलवान होता।
सदाचारी द्विजाती मात्र होते,
तो भारत आज देवस्थान होता॥
कहीं पे यज्ञों के धूम उड़ते, कहीं पे वह सोम-पान होता।
जो अपने गौरव का ध्यान होता, तो सर्व देशों में मान होता॥'

आधुनिक काल राष्ट्रीय चेतना का काल है, लावनी-साहित्य में इसकी अवधि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् 1871 ई० से अब तक मानी जा सकती है और इसका तृतीय उत्थान 1919 से 1947 तक 'नारायणानन्द-युग' से पुकारा जा सकता है। इस अवधि में यह लावनी-जगत् पर छाए रहे। वस्तुतः स्वामीजी के देहावसान के साथ-साथ लावनी-युग का भी पर्यवसान हो गया। चतुर्थ उत्थान अर्थात् स्वातन्त्र्योत्तर युग में लावनी का लेखन तो शेष रह गया, पर गायन अशेष हो गया है। अब दूर-दूर तक दृष्टि डालने पर भी ऐसा कोई नजर नहीं आता जो इस मुरझाई हुई लावण्य-लता को सिंचित कर पुनः हरी-भरी कर सके।

उपाचार्य
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाविद, संगीतज्ञ, कवि, लेखक एवं सम्पादक स्व. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

□ डॉ० सुधेश

72 वर्ष पूर्व पीलीभीत में एक महान साहित्यकार का जन्म हुआ था, जो लगभग आधी शताब्दी तक लिखता रहा, जिसने भूखा-प्यासा रहकर भी अपने रक्त से हिन्दी-साहित्य की फुलवारी को सिंचित किया और जो अनजाने ही 19 नवम्बर, 1954 को इस संसार से चल बसा। उसका नाम था—स्वामी नारायणानन्द सरस्वती।

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती हिन्दी साहित्य की उन विभूतियों में से थे, जिन्होंने तन-मन-धन सब कुछ न्योछावर कर साहित्य-सेवा का व्रत लिया। उन्होंने भरी जवानी में हिन्दी के लिए संसार से मुंह मोड़ा और घर-बार छोड़ संन्यास लिया। आधुनिक काल में कई ऐसे ख्याति-प्राप्त कवि और लेखक हैं, जो उनसे प्रेरणा और सम्बल पाकर आगे बढ़े हैं। प्रसिद्ध कहानीकार श्री श्रीराम शर्मा 'राम' उनके शिष्यों में से हैं।

साहित्य के इस महान साधक का जन्म संवत् 1940, वैशाख सुदी 12, बुधवार को पीलीभीत के ब्राह्मण कुल में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा भी वहीं हुई। उन्होंने कोई लम्बी-चौड़ी उपाधियां नहीं लीं, लेकिन अपने स्वतंत्र अध्ययन से उन्होंने कई भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया। स्कूल-कॉलेज की चारदीवारी उनको न बांध सकी, दुनिया के बन्धन भी उन्हें अपने मार्ग पर बढ़ने से न रोक सके। 15 वर्ष की अवस्था से ही उनका कविता-प्रेम लावनी के रूप में प्रस्फुटित हुआ और अपनी भरी जवानी में उन्होंने चंग सम्भाल लिया, जिसकी ताल के सामने बड़े-बड़े उस्तादों ने मात मान ली। बरेली, कानपुर आदि कई स्थानों में उन्होंने अपना सिक्का जमाया। उनके एक खयाल की नाजुक-खयाली देखिए—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हो प्रसन्न मन चले भक्त जन पुण्य-पर्व की वेला है।
रेल-पेल हो रही जेल में मानो कुम्भ का मेला है।'

लावनी-साहित्य में शायद ही कोई साहित्यकार उनकी बराबरी कर सके। वस्तुत: वह लावनी साहित्य के आचार्य थे।

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती संस्कृत, ब्रजभाषा, अवधी, बंगला के ही विद्वान न थे, उर्दू-फारसी पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। उन्होंने अख्तर नाम से उर्दू में बहुत-सी गजलें लिखीं। उन्होंने देश की जनता में रूह फूंक देने वाली देश-प्रेम से भरपूर नज्में लिखीं। कुछ नमूने देखिए—

जेल के दीवारोदर से आ रही है ये सदा,
कौम के मजनूं तेरी लैला इसी महफिल में है।
बेड़ियों की पैरों में झनकार रहने दीजिए,
तौक कुछ दिन तो गले का हार रहने दीजिए।
गुलामी में जीना न मरने से कम है,
यों ही जिन्दगी का गुमा है भरम है।।

इन पंक्तियों में कितनी कसक है, तड़पन हैं, साथ ही फसाहत भी। देखिए, कवि कितना फूंक-फूंककर कदम रख रहा है—

चाल धीमी है तो क्या आएगी मंजिल जरूर,
खौफ गिर जाने का भी तो तेज-रफ्तारी में है।

नेताजी सुभाष के बारे में उन्होंने लिखा था—

नेता सुभाष कौम का अफसाना बन गया।
ओ, वीर धन्य-धन्य तेरा स्वाभिमान है,
जिससे हुई बुलन्द बुजुर्गों की शान है।
तेरा महान त्याग तपस्या महान है,
ओ पूज्य, तेरा पूज्य तिरंगा निशान है,
हमसर न तेरा और फिदाएवतन हुआ,
शाहे-वतन हुआ न गदाए-वतन हुआ।
....
आजाद हिन्द करने को दीवाना बन गया।
नेता सुभाष कौम का अफसाना बन गया।

देखिए कवि के दिल में देश-प्रेम की आग जल रही है—

'जिएं तो बदन पर स्वदेशी बसन हो,
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो।'

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने ब्रज भाषा में भी सुन्दर रचनाएं की हैं। उन्हें सवैया और घनाक्षरी छन्द बहुत प्रिय थे। जितना बढ़िया वह लिखते थे,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतना वह गाते भी थे। संगीत से उन्हें प्रेम था। शास्त्रीय संगीन में भी उनकी अच्छी गति थी। कलकत्ता के एक कवि-सम्मेलन में, जहां देश के प्रसिद्ध कवि उपस्थित थे, उन्होंने अपनी मधुर वाणी का चमत्कार दिखाया था और मण्डप से कुछ दूर खुले मैदान में जाड़ों की रात में 2 बजे तक जनता उनसे बार-बार गाने का अनुरोध करती रही थी और वह बिना लाउडस्पीकर के ही श्रोताओं को आनन्द-मग्न करते रहे थे। एक बार सहारनपुर के एक मुशायरे में, जिसके सदर वही थे, उन्होंने शायरी से लोगों को प्रभावित किया था, और उर्दू के शायरों ने भी उनके 'कलाम' को सराहा था।

कवि-प्रतिभा

हिन्दी में उन्होंने लगभग 3,000 कविताएं लिखीं, जिनमें से कुछ चोरी चली गईं, नष्ट हो गईं और कुछ उनके सुपुत्र श्री रामस्वरूप तिवारी[1] (पीलीभीत) के पास सुरक्षित हैं। तिवारी जी उनकी अप्रकाशित रचनाओं को यथासमय प्रकाशित करेंगे। यहां बानगी के लिए एक सवैया दे रहे हैं, जो उनकी काव्य-प्रतिभा का परिचायक है—

सुख मानत ये जगजीव सबैं
पिये महामयी मद के मटके हैं।
मतवारे मतंग की भांति भ्रमै,
मन माया-मतंगिनी सौ अटके हैं।
फल चाहत बादु-सुधा से सन्यो,
विष-वृक्ष को डार गहे लटके हैं।
भगवान ही पार लगावैं, इन्हें,
भाव में यह भूले भ्रमै भटके हैं॥

कुशल सम्पादक

श्री अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' से उनका काफी सम्पर्क था। कविवर श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', श्री जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी', श्री अनूप शर्मा आदि उनके अन्तरंग तथा घनिष्ठ मित्रों में से थे।

1. रामस्वरूप तिवारी का स्वर्गवास हो गया। स्वामी जी अपनी कुछ रचनाएं पीलीभीत के प्रसिद्ध कवि 'पुष्प' जी को दे गए थे, उनसे कुमार विजयी नाम के सज्जन ले गए—सं०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी नारायणानन्द सुन्दर कवि एवं मधुर गायक ही नहीं, कुशल सम्पादक भी थे। संवत् 1881 में उन्होंने कानपुर से एक मासिक पत्र 'कवीन्द्र' निकाला, जो उस समय के सिरमौर मासिक पत्रों में से एक था। 'शर्वाणी', 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान' के रचयिता सुकवि अनूप शर्मा उस समय 'कवीन्द्र' के सहायक सम्पादक थे। 'कवीन्द्र' में स्नेहीजी तथा 'हरिऔध' जी की रचनाएं बराबर निकला करती थीं।

उन्होंने एक अन्य मासिक पत्र सन्त सन्देश का भी सम्पादन किया, जो गया से प्रकाशित होता था, लेकिन वह आर्थिक कठिनाइयों के कारण कुछ समय के बाद बन्द हो गया था।

पुस्तक लेखक

स्वामी जी की प्रकाशित पुस्तकों में से 'लावण्य लता', 'तराने हिन्द', 'सन्तोषी-सुदामा' 'असहयोग का अगड़बम', 'सरजू रहस्य', 'गायत्री उपासना प्रकाश', (गद्य) 'रंगीली होली' आदि प्रसिद्ध हैं। 'तराने हिन्द' साहित्य-प्रेमियों द्वारा बहुत पसन्द की गई और जनता में उसका खूब प्रचार हुआ। यह रचना राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत है तथा नवजीवन का संचार करने वाली है।

अप्रैल 1954 में उनकी एक अन्य पुस्तक 'लावनी साहित्य का इतिहास'[1] कानपुर में प्रकाशित हुई, जिसमें हिन्दी साहित्य के उपेक्षित अंग (लावनी-साहित्य) की विशद विवेचना की गई है। अन्धकार के गर्त में पड़े हुए पुराने कवियों (खयाल-बाजों) को प्रकाश में लाकर उन्होंने एक स्तुत्य कार्य किया है। वास्तव में हिन्दी संसार को इस पुस्तक की आवश्यकता थी। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में इस पुस्तक की सुन्दर आलोचना प्रकाशित हुई है।

स्वामी नारायणानन्द अभी लावनी साहित्य का एक वृहत इतिहास जिसमें भारतवर्ष के प्रमुख लावनीकारों का जीवन चरित्र तथा कृतियां हों, लिखने का विचार कर रहे थे, लेकिन काल ने उन्हें हमसे छीन लिया, जिससे हिन्दी संसार की बड़ी क्षति हुई है।

एसोशिएट प्रोफेसर
फ्लैट नं० 1317, पूर्वांचल
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

1. 'लावनी साहित्य का इतिहास' पुस्तक सितम्बर 1953 में प्रकाशित हुई—सं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनी-संगीत तथा संगीत शास्त्र की कसौटी पर स्वामीजी की लावनियां

□ डॉ० कौशल नन्दन गोस्वामी

लावनी लोकगीतों का एक प्रकार है। लावनी का उद्‌गम स्थान महाराष्ट्र प्रदेश माना जाता है। वहां इसके लिए 'लावणी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ब्रजमण्डल में 'लामनी' शब्द भी मिलता है किन्तु 'लावनी' ही प्रचलित है। छन्दशास्त्र के अनुसार 'लावनी' 22 मात्राओं का एक छन्द है जिसमें 2, 10, 10 मात्राओं पर यति होती है, किन्तु डॉ० द्वारका प्रसाद सक्सेना के अनुसार 'लावनी किसी छन्द विशेष में गायी जाने वाली रचना का नाम ही नहीं है अपितु यह गायन की शैली-विशेष है, जिसमें विविध प्रकार के राग एवं रागनियों का समावेश रहता है, इसे 'खयाल गोई' भी कहते हैं।' यह कथन सत्य प्रतीत होता है क्योंकि वहरों, गजलों, शिकिस्ता आदि उर्दू-फारसी के छन्दों से लावनी का निकट सम्बन्ध होने से इसमें विविध छन्दों का समावेश हुआ है। इसके साथ ही इममें झूलना, चौबोला, दोहा, सोरठा आदि छन्दों का भी प्रयोग मिलता है। अतः छन्दगत विविधता के कारण 'लावनी' को एक छन्द विशेष न मानकर, एक गायन शैली मानना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

संगीत लावनी का प्राण ही है। ये परस्पर अनुस्यूत हैं। वस्तुतः संगीत लावनी का सहजात गुण और अपरिहार्य अंग है। इसमें अन्त और बाह्य संगीत का अद्‌भुत संगम है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाव, भाषा, आशुकवित्व, सरसता आदि के साथ-साथ संगीत की लावण्यता का प्राधान्य होने से इसे 'लावणी' या 'लावनी' कहा गया। लावनी में लोकधुन व लोक-लय की प्रचुरता भी रहती है, जो लावण्य पूर्ण है।

लावनी में जनमानस की अनुभूतियों, संस्कृति, रहन-सहन, रीतिरिवाज, परम्पराओं तथा रूढ़िगत विचारधाओं की अभिव्यंजना तो होती है, प्रत्युत क्षेत्रीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं और शैलियों का समावेश भी होता है। इसी कारण लावनी में विविध प्रान्तों और क्षेत्रों की संगीत-धुनों व लय-तालों का भी समावेश होता है। लावनी संगीत की धुन-विशेष और ताल-विशेष से बंधी नहीं है। कहीं राग मांड की धुन का प्रयोग होता है, तो कहीं पीलू राग के स्वरों का प्रयोग। भाव और प्रकृत्यानुरूप लावनी गायक धुनों तथा तालों का विधान करता है। अस्तु संगीत शैली पर लावनी की सफलता या असफलता निर्भर करती है।

महाराष्ट्र और उत्तर भारत लावनी गायन के प्रमुख केन्द्र रहे। महाराष्ट्र में दर्शकों के मनोरंजन के लिए, तमाशों व मंचों पर नर्तकियों द्वारा नृत्यमुद्राओं के साथ लावनियों का गायन होता था। उत्तर भारत में चुनौतीपूर्ण प्रश्नोत्तरी-प्रथा अधिक प्रचलित रही, जिसमें लोक-संगीत का बाहुल्य रहता था। दोखला, तुर्रा, सेहरा, लशकरी, टकसाली आदि लावनी के भेद भी संगीत प्रधान हैं।

प्रारम्भ में लावनी का प्रचलन सन्तों और फकीरों में अधिक था। उन्होंने स्वानुभूति को संगीत के माध्यम से भक्ति और उपदेशपरक लावनियों में साकार किया। ऐसे लावनी गायकों में सन्त तुकनगिरि तथा फकीर शाहअली उल्लेखनीय हैं। इनकी वाणी जनरंजक ही नहीं, अपितु मार्गदर्शक एवं प्रेरक भी रही। यद्यपि कबीर आदि सन्तों ने भी लावनियों का गायन किया, तथापि 'लावनी' का निखरा रूप भारतेन्दु युगीन कवियों में अधिक देखा जाता है। भारतेन्दु उच्चकोटि के साहित्यकार-कवि ही नहीं, प्रत्युत शास्त्रीय और लोक-संगीत से भी परिचित थे। अतः भारतेन्दु की लावनियों में स्वर और लय का अद्भुत तालमेल है। उदाहरणार्थ—

करि निठुर श्याम सो नेह सखी पछताई।
उस निरमोही की प्रीति काम नहि आई।।टेक।।
उन पहिले आकर हमसे आंख लगाई।
करि हावभाव बहुभांति प्रीति दिखलाई।।
ले नाम हमारा बंसी मधुर बजाई।
अब हमें छोड़ के दूर बसे जदुराई।।
कुबरी ने मोहा रहे वहीं बिलमाई।
उस निरमोही की प्रीति काम नहिं आई।।

इस लावनी में टेक-विधान व अन्त्यानुप्रास संगीत के अनुरूप है। इसमें लोक प्रचलित राग काफी के स्वर और विलम्बित कहरवा ताल का प्रयोग उपयुक्त है। यहां काफी की धुन भावाभिव्यक्ति में अधिक सहायक सिद्ध होगी।

भारतेन्दु युग के बद्रीनारायण प्रेमघन, प्रताप तथा किशोरीलाल गोस्वामी की लावनियां भी संगीत की कसौटी पर खरी उतरती हैं। इनकी लावनियों को भी भाव, रस तथा प्रकृति के अनुरूप लोक प्रचलित रागों व तालों में निबद्ध किया जा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। 'प्रेमघन' की शृंगार रस प्रधान एक लावनी द्रष्टव्य है, जो रसानुरूप राग 'पीलू' की लोकधुन व द्रुत कहरवाताल में गेय है—

क्या सोहे सीस पर तेरे दुपट्टा धानी,
मन मेरा मस्त हो गया दिलजानी ।।टेक।।
मुख पर क्या सौहें छुट्टी लटैं लटकानी,
आशिकों के दिल डसने को नागिन पाली।
चमकीली चौंकाली आली घुंघराली,
हैं कहीं डंक बिच्छू से जहरीली,
देती है पेंच ये आपस में उल्झानी,
मन मेरा मस्त हो गया दिलजानी ।।इत्यादि।

कवि प्रताप की लावनियों में भी गेयता तथा लयात्मकता विद्यमान है। राग खमाज के स्वरों व हल्की-फुल्की, दादराताल में सुगेय एक लावनी देखिये—

नामवरी पर लानत है, उस नाम पै जो बदनाम न हो,
किसी काम का, नहीं है इश्क से गर नाकाम न हो ।।इत्यादि।

गजल की शैली पर रचित यह लावनी विलम्बित लय यानी ठाह में गाने पर अधिक प्रभावशाली व भावाभिव्यक्ति में सहायक होगी।

किशोरीलाल गोस्वामी की लावनियों में होली का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। उन्होंने संगीत की गायन शैली—'होली' के अनुरूप लावनी का सृजन किया है। होली पर गेय राग काफी तथा द्रुत कहरवाताल में गाने योग्य एक लावनी द्रष्टव्य है—

सब ठाढ़ी किए सिंगार नार दिलजानी।
खेलें मोहन संग होली राधा रानी ।।टेक।।
कोई डारत लै लै रंग कोई सखि पानी।
कोई हो-हो होरी बोले मधुरी बानी।
कोई झूम-झूम के झेलें झेल दिवानी ।।
कोई गारी गावै गोरी चढ़ी जवानी।
खेलें मोहन संग होली राधा रानी ।।इत्यादि।।

लावनियों में जहां इन कवियों ने शृंगार रस का मुख्यरूप से आश्रय लिया, वही अन्त्यानुप्रास, सरल शब्दावली तथा 'हो हो', 'झूम-झूम', 'लै-लै' जैसे शब्दों को अपनाकर लावनी गायक के लिए स्वर-विस्तार का अवसर प्रदान किया है।

भारतेन्दुयुग के कवियों ने सांगीतिक वातावरण निर्माण-हेतु वाद्ययंत्रों का भी नामोल्लेख किया है। यथा—

ले नाम हमारा बंसी मधुर बजाई। (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

× ×

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोइ लैं सितार करतार बजावैं जानी।
कोई नाचैं गावैं सुघर लली सुरसानी।।
(किशोरीलाल गोस्वामी)

भारतेन्दुयुग के बाद प्रसाद, निराला, हरिवंशराय बच्चन, नीरज, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरजाकुमार माथुर आदि की कतिपय रचनाओं से भी लावनी-शैली के दर्शन होते हैं। ये लावनियां भी संगीत की दृष्टि से विविध लयों व धुनों में गाने योग्य हैं। लावनियों का सृजन निरन्तर हो रहा है। इनमें शृंगारादि रसों की ही अभिव्यंजना नहीं होती, प्रत्युत समाज, राजनीति, पुराण आदि का भी वर्णन किया जाता है। यही नहीं, राष्ट्र-प्रेम की भावना भी लावनियों में दिखाई देती है। राग मालकोश की धुन और ताल कहरवा में गेय एक लावनी देखिए—

खद्दर की चुन्दरी कर ऐसी तैयार रे रंगरेजवा।
जिससे इस भारत का होवे उपकार रे रंगरेजवा।।टेक।।
एक ओर कोने पर बाबा गांधी चरखाधारी हों।
विजय लक्ष्मी एक ओर भारत की राजदुलारी हों।।इत्यादि।

लावनियों में लोक-प्रचलित राग-पीलू, देश, काफी, मांड, विलावल, यमन आदि के स्वरों का प्रयोग होता है। लावनी गायक शास्त्रीय संगीत के रागों का ज्ञाता व अभ्यासकर्ता नहीं होता। वह तो रेडियो, दूरदर्शन तथा संगीत सभाओं में गायकों के संगीत को सुनकर कतिपय स्वरों को अपना लेता है, भले वे स्वर किसी राग के क्यों न हो। इस प्रकार लावनियों में रागों के स्वरों का समावेश हो जाता है। वस्तुतः लावनी गायक 4-5 स्वरों को लेकर अपनी लावनी का गायन करता है और मुख्यतया इनमें कहरवा ताल की विलम्बित, मध्य और द्रुतलय देखी जाती है।

ग्रामीण अंचल में तो भक्तगण खंजड़ी, चंग आदि वाद्ययंत्रों के सहयोग से पौराणिक कथाओं पर आधारित लावनियों को भाव-विभोर होकर लोक-धुनों में गाते हैं। वे राग के निर्धारित स्वरों के बंधन से मुक्त रहते हैं। साधु-संत और महात्माओं की लावनियों को लोक-धुन में अधिक सुना जाता है। स्वामी नारायणानन्द सरस्वती भी ऐसे ही महात्मा हुए, जिनकी सुगेय लावनियां संगीत की कसौटी पर खरी उतरती हैं। इनकी लावनियां 'खयाल बहर खड़ी-नाग नाथन लीला', 'ख्याल बहर (लंगड़ी-रूपक गांसेका, ख्याल बहर अकिस्ता- हार्दिक भाव, ख्याल बहर) शकिस्ता-वेदान्त', 'ख्याल बहर तवील मुखफिफ—आसुरी सम्पति' आदि शीर्षकों में प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ 'नाग नाथन लीला सम्बन्धित एक लावनी देखिए—

टेक— काला नाग नाथन हित कूदे काली दह में नट नागर।
काला तन हो गया कृष्ण जब नाचे काली के फन पर।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौ० — काला टीका मस्तक सोहै काली कमली तन सुन्दर।
काला काजल नयन बीच काली पुतली लेती चित हर ।।
काला रेशम का गंडा गल, काली लट छुटी मुख ऊपर।
काला बादल लज्जित हो गन, काली रात को निउछावर ।।
मि०— काला चोटा देख श्याम का काली घटा खावे चक्कर।
काला तन हो गया कृष्ण जब नाचे काली के फन पर ।।इत्यादि।

उपर्युक्त लावनी राग बिलावल के नि सा रे गम इन पांच स्वरों पर सहज गेय है। इसमें कहरवा ताल की द्रुतलय का प्रयोग सटीक है। इसके साथ ही अन्त्यानुप्रास, मधुर शब्दविधान तथा लयात्मकता भी इसमें संगीत के अनुरूप है।

इसी प्रकार स्वामीजी की अन्य लावनियों में भी संगीतात्मकता विद्यमान है। कहीं-कहीं तो उन्होंने रूपक जैसी तालों का स्वयं उल्लेख कर दिया है। उनकी 'खयाल बहर लंगड़ी' शीर्षक से उपलब्ध एक लावनी की कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं जो रूपक ताल में सहज गुम्फित की जा सकती हैं—

ताल रूपक मात्रा-7

ता	ती	ना	धी	ना	धी	ना
0			—		2	
रा	ऽ	म	ना	ऽ	म	का
न	शा	म	न	य	न	में
र	मा	ऽ	ज	ग	ज	ग
जी	ऽ	ते	हैं	ऽ	ऽ	ऽ
चि		त्त	चि	ल	म	ऽ
में	ऽ	ज	मा	ऽ	क	र
झा	ऽ	न	का	ऽ	गां	ऽ
जा	ऽ	पी	ऽ	ते	ऽ	हैं
0			—		2	

इसी प्रकार अन्य रचनाएं भीताललिपि में बांधी जा सकती हैं। अस्तु स्वामी नारायणानन्द सरस्वती महान लावनीकार ही नहीं, अपितु संगीत की धुनों व लयों से भी परिचित थे। उनकी लावनियां संगीत की दृष्टि से उपयुक्त हैं।

निष्कर्ष यह है कि लावनी का प्रचलन बहुत समय से है। संगीत लावनी का अभिन्न अंग है। लोक-जीवन की झांकी जैसी लावनियों में उपलब्ध है वैसी अन्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकगीतों के रूपों में सहज प्राप्त नहीं। इसका कारण संगीत का अपूर्व सहयोग है। संगीत की प्राणवत्ता से ही लावनियों का प्रचलन फिल्मों में भी दिखाई देने लगा। विविध भाषा, संस्कृति, भाव, रस, शैली तथा लोक संगीत से समन्वित होने के कारण 'लावनी' जनप्रिय ही नहीं, अपितु राष्ट्रीय-एकता में सहायक है। अतः लावनी-सृजन एवं प्रचार-प्रसार अपेक्षित है।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजेन्द्र प्रसाद डिग्री कॉलेज
मीरगंज (बरेली)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक–स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

□ डॉ० शम्भु शरण शुक्ल

'कवीन्द्र' मासिक

बैसाख सम्वत् 1981 से आश्विन् सम्वत् 1981 तक के कवीन्द्र के अंक मुझे देखने को मिले। कवीन्द्र के मुख-पृष्ठ पर सम्पादक स्वामी नारायणानन्द सरस्वती का नाम अंकित है। स्वामीजी 'सम्पादकीय टिप्पणियां' शीर्षक से विभिन्न साहित्यिक संदर्भों पर स्फुट विचार व्यक्त करते थे। पहले अंक में पत्रिका प्रकाशन के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। 'कवीन्द्र'—24-25 की प्रमुख हिन्दी पत्रिकाओं में से एक थी। इसमें हरिऔध, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, अनूप शर्मा, नाथूराम, शंकर शर्मा जैसे कवियों की कविताएं प्रकाशित होती थीं।

'कवीन्द्र' के लिए आर्थिक सहायता हेतु स्वामीजी ने स्थान-स्थान पर मार्मिक शब्दों में निवेदन किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि पत्रिका पर आर्थिक संकट बराबर बना रहता था।

लक्ष्मणदास धर्मशाला के स्वामी फूलचन्द जैन काव्य-प्रेमी थे। उनकी प्रेरणा से स्वामीजी ने 'कवीन्द्र' निकाला था। 'सनेही'जी के शिष्य कविवर, अनूप शर्मा 'कवीन्द्र' में सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य करते थे।

स्वामीजी हास्य-व्यंग्य पूर्ण रचनाएं 'विनोदाचार्य' उपनाम से लिखते थे।[1] और 'चाप चरन चौबे'[2] उपनाम से महाप्राण निराला से नोंक-झोंक चलती थी।

'सन्त सन्देश' मासिक

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने गया से सन्तः 'सन्देश' निकाला। इसका पहला

1. 'कवीन्द्र'—श्रावण, सं० 1981, पृ० 47
2. वही—भाद्रपद-1981, पृ० 33-34

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूसरा अंक मेरे पास है। सन्त सन्देश के नियमों के अनुसार यह प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य 3 रुपये और एक प्रति का मूल्य पांच आने है।

कवर पृष्ठ पर लिखा है—'साहित्य-सुधा-समन्वित-धार्मिक-मासिक पत्र' इसके पश्चात् संस्कृत का यह वाक्य लिखा है 'विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव।'

पहला अंक माघ माह 1982 का है। इसमें कुल 18 लेख व कविताएं हैं। सम्पादक की कलम से विविध विषय तथा अपनी गाथा है। समालोचना है। 'सन्त सन्देश' निकालने के लिए आर्थिक सहायता देने वालों के नाम छापे गये हैं और सम्पादक द्वारा उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई है। 'अपनी गाथा' में स्वामीजी ने 'सन्त सन्देश' निकालने की गाथा लिखी है। साथ ही कुछ ऐसी बातें हैं जो स्वामीजी के रचनात्मक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती हैं। स्वामीजी सन् 1934 में कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर हरिद्वार क्षेत्र के मेले में गंगास्नान करने गये तो उन्हें मुजफ्फरपुर के अपने भक्त सेठ गौरीदत्त जालान की याद आयी और मुजफ्फरपुर पहुंचकर सेठ के सहयोग से प्रेम सखा नवरत्न दरबार की स्थापना की। वसन्त पंचमी को एक कवि-सम्मेलन के साथ इसका अधिवेशन हुआ। स्वामीजी के शब्दों में—'इस दरबार का मुख्य उद्देश्य, 'सभी सम्प्रदायों में मैत्री भाव स्थापन पूर्वक सर्वदल साधु संघ स्थापन, करना था। ठीक इसी समय हमारे हृदय में संकल्प उठा कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'सन्त सन्देश' मासिक पत्र निकाला जाए।'[1] इस प्रकार 'प्रेम सखा नवरत्न दरबार' की स्थापना से 'सन्त सन्देश' का सम्बन्ध है। वहां वर्षा के दिनों में बाढ़ आ जाती है—यह विदित होने पर स्वामीजी ने उस स्थान को छोड़ दिया और घूमते-घामते गया आ गए। श्रावण सन् 1935 में स्वामीजी कपिलधारा आश्रम में ठहर गए। यहीं तुलसी जयन्ती के अवसर पर एक कवि-सम्मेलन में तुलसीदास के सम्बन्ध में कविताएं पढ़ीं। यहीं उनकी भेंट गया के प्रसिद्ध कवि वियोगी जी[2] से हुई। वियोगीजी की रचनाएं 'कवीन्द्र' में छपा करती थीं—इस नाते वे स्वामीजी से पूर्व परिचित थे। एक बार स्वामीजी बाबू वनविहारी प्रसाद 'भूप'[3] के यहां कवि-सम्मेलन में आमंत्रित हुए और यहीं स्वामीजी ने 'सन्त सन्देश' निकालने की बात चलाई। 'भूप' जी ने बड़ी श्रद्धा के साथ सहायता का वचन दिया। पर कपिलधारा आश्रम के अधिष्ठाता स्वामी आत्मानन्द ने 'सन्त सन्देश' निकालने की अनुमति नहीं दी और स्थान परिवर्तन की

---

1. सन्त सन्देश, माघ सं० 1992, वर्ष 1, संख्या 1, पृ० 45
2. वही, पृ० 46
3. गया के प्रसिद्ध साहित्य-सेवी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात कहला दी। स्वामीजी से नगर के अनेक गण्यमान्य लोगों ने अपने यहां स्थान देने की बात कही, पर स्वामीजी को श्री नारायणलाल पाठक राजगुरु बीकानेर का स्थान पसन्द आया और वहीं 'सन्त सन्देश' कार्यालय स्थापित करने की ठान ली।'

'सन्त सन्देश' मगध शुभङ्कर प्रेस गया से मुद्रित हुआ। प्रथम अंक में नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ का सन्देश 'हमारा सन्देश' शीर्षक से है। इसके अनुसार 'सन्त नारायणानन्द सरस्वती द्वारा संचालित 'सन्त सन्देश' के उद्देश्य नितान्त जनपदहितकारी है। इसके द्वारा जनता में ऐक्य का संचार होकर प्रेम की अभिवृद्धि हो, यही हमारी मंगल कामना है। यह मासिक पत्र सत्य सनातन धर्म के स्वरूप को जनता के सम्मुख रखकर ईश्वर सत्य और धर्म का प्रबल समर्थक रहेगा, यह प्रसन्नता की बात है, शुभं भूयात।'[1]

पहले अंक में 'भटके हैं' कविता तथा 'दशनामी-अखाड़े', लेख स्वामीजी की लेखनी से हैं। एक अन्य लेख 'लंग्टा बाबा' स्वामी ने अपने छद्म नाम[2] से प्रकाशित कराया है। इसके अतिरिक्त अनूप शर्मा, अभिराम शर्मा, मोहनलाल महतो 'वियोगी' जैसे प्रसिद्ध कवियों की कविताएं, वनविहारी प्रसाद 'भूप' का गद्य गीत, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर जैसे लेखकों के लेख तथा राधारमण शर्मा शास्त्री कृत 'सवा तीन सौ वर्ष पूर्व' ऐतिहासिक कहानी है। दूसरे अंक में स्वामीजी कृत 'तुलसी स्तवन', कविता तथा 'अमर सन्त सुन्दरदासजी' लेख प्रकाशित हुआ है। इसी अंक के पहले पृष्ठ पर सनेहीजी की 'सहृदय' कविता प्रकाशित हुई है।

दोनों अंकों का सम्पादन व्यवस्थित ढंग से हुआ है और उच्चकोटि की सामग्री जुटाई गयी है। 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी' 'लिपि परिवर्तन' 'सनातन धर्म' 'साधुओं के प्रति' आदि सम्पादक स्वामी नारायणानन्द ने सम्पादकीय टिप्पणियां लिखी हैं। स्वामीजी का मत है, 'हिन्दी' या 'हिन्दुस्तानी' में कुछ भेद नहीं क्योंकि अर्थ दोनों का एक ही है। शब्दों में फर्क अवश्य है। हिन्दी का अर्थ हिन्द की भाषा एवं हिन्दुस्तानी का अर्थ है हिन्दुस्तान की भाषा। वे लोग भ्रम में हैं जो हिन्दी का अर्थ केवल हिन्दुओं की भाषा समझ रहे हैं। अब प्रश्न है उसकी रूप-रेखा का—यह किसी को भी अभिमत नहीं कि हिन्दी लिखते समय हम उन शब्दों की उपेक्षा करें जो हमारे बोलचाल में शामिल हो चुके हैं। हां, हम उन शब्दों का प्रयोग

---

1. सन्त सन्देश, जनवरी 1936, पृ० 21
2. सन्त सन्देश—'लंगटा बाबा', ले० माया विलक्षण स्वामी, पृ० 29।
(अयोध्या में स्वामीजी 'माया विलक्षण स्वामी' नाम से ही जाने जाते थे। —सं०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य वांछनीय समझते हैं जो हमारे यहां बहुत दूर से आये हैं, और जिनको जानने के लिए हमें 'लुगत' का आश्रय लेना पड़े। अस्तु ! हिन्दी-सेवियों का कर्तव्य है कि वे हिन्दी के कलेवर को सर्वाङ्ग सुन्दर और उपयोगी बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहें और उसे ही राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित करें।'[1]

इस टिप्पणी से स्पष्ट है कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी के संदर्भ में स्वामीजी के विचार कितने स्पष्ट तथा उदार थे। दूसरी भाषाओं की बोलचाल के शब्द अपनाने की उन्होंने सलाह देकर राष्ट्रभाषा के भण्डार को विशाल तथा सर्वांग सुन्दर बनाने की बात कही है।

इसी प्रकार देवनागरी लिपि में जो लोग टंकण की समस्या को लेकर उलटफेर करना चाहते हैं। स्वामीजी ने 'लिपि परिवर्तन' सम्पादकीय टिप्पणी में उनसे असहमति प्रकट की है, वे लिखते हैं—'यदि हम टाइप की सुविधा रूपी स्वार्थ को त्याग कर निष्पक्ष भाव से इसकी आलोचना करें तो अवश्य कहेंगे कि यह परिवर्तन अवांछनीय ही नहीं, नितान्त हानिकारक और हिन्दी सौष्ठव और गौरव को नष्ट करने वाला है। मिसाल के लिए हम संयुक्त अक्षरों को लें, उनके स्वरूप भद्दे ही नहीं, भ्रमात्मक भी हैं। 'इ' 'उ' को उड़ाकर केवल 'अ' पर स्वर लगाकर काम चलाना एवं बराबर-बराबर दो अक्षर लिखकर बीच से हाइफन देकर संयुक्त करना आदि बहुत ही भद्दा और उपेक्षणीय ढंग है।

'र' को संयुक्त करने का जो तरीका इख्त्यार किया गया है, वह तो बहुत ही बेढंगा है। ऊपर की पाइयों को नुकते जैसे बनाना यह कहां की सुन्दरता है। इसके अतिरिक्त इसमें सबसे बड़ी कमी यह है कि संस्कृत के लिए हितकर नहीं है। अतएव हम ऐसे परिवर्तन को सर्वथा अवांछनीय समझते हैं।'[2]

1. सन्त सन्देश, फरवरी 1936 सम्पादकीय टिप्पणियां-2
2. वही, सम्पादकीय टिप्पणियां-21

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावण्यलता : काव्य-सौन्दर्य

□ डॉ० रामस्वरूप आर्य

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती (संन्यास से पूर्व का नाम लक्ष्मीनारायण तिवारी) अपने समय के प्रसिद्ध लावनीकार थे। उनका जन्म वैशाख सुदी 12 सम्वत् 1940 वि० में पीलीभीत (उ० प्र०) के मोहल्ला गोपालसिंह में हुआ था तथा निधन पीलीभीत में ही अगहन बदी 1, सम्वत 2011 वि० में हुआ। स्वामीजी ने हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है। हिन्दी में उनका नाम 'अक्षर' तथा उर्दू में तखल्लुस 'अख्तर' था। उनकी प्रकाशित कृतियों में 'लावण्यलता', 'असहयोग का अगड़बम', 'तराने हिन्द', 'संतोषी सुदामा' (सम्पादित), 'सरयू रहस्य', 'रंगीली', 'होली', 'गायत्री उपासना प्रकाश' तथा 'लावनी का इतिहास' प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत लेख में उनकी 'लावण्यलता' नामक काव्यकृति पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

'लावण्यलता' में कुल 69 लावनियां हैं। विषय की दृष्टि से इनमें विविधता है। पुस्तक की 'भूमिका' में इसकी ओर संकेत करते हुए श्री गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी ने लिखा है—'प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक के लेखक स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर' तुर्रा पक्ष के समर्थक हैं। आपने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करके ऐसे खयालों की रचना की, जो नीति, धर्म और ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सम्बन्धी विविध विषयों से पूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में शब्दालंकार और अन्य सनअतें जो खयालों में महत्त्वपूर्ण समझी जाती हैं, प्रस्तुत हैं।'

स्वामीजी की दृष्टि में ऐसे व्यक्ति का जीवन निरर्थक ही है, जिसने काव्य रूपी अमृत का पान नहीं किया, जिसने हरि का नाम स्मरण नहीं किया, जिसने दान नहीं दिया तथा जिसने देश केलिए तन, मन, दान, धन अर्पित नहीं किया। ऐसा व्यक्ति जीवित रहते हुए भी मृतक के सामान है। 'लावण्यलता' के आरंभ में वे कहते हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसने पाकर जन्म जगत में
काव्य-सुधा रस पिया नहीं।
लिया नहीं हरि नाम और
जिसने कर से कुछ दिया नहीं।
देश धर्म पर जिसने निज तन
मन-धन अर्पण किया नहीं।
जीवित नहीं मृतक है वह नर
जिया भी तो कुछ जिया नहीं ॥

स्वामीजी को मानव की सद्भावना पर अटूट विश्वास था। उनकी मान्यता थी कि भले तो भलाई करेंगे ही, किन्तु भलाई के सामने बुरे भी भलाई के लिए प्रेरित होंगे, कितना पावन भाव है—

जो कोई आकर मिलेगा हमसे हम उससे लग गले मिलेंगे।
भले भलाई करें तो वेशक बुरे भी होकर भले मिलेंगे।
सुबह कोई दोपहर कोई और कोई आ दिन ढले मिलेंगे।
किसी से होवेगा शव में मिलना वह कोई कर चोचले मिलेंगे ॥20॥

संसार के लोगों के दुहरे व्यवहार को स्वामीजी ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। सच्ची प्रीति दुर्लभ हो गई है। कठिन समय पड़ने पर मित्र भी मुंह फेर लेते हैं। 'मुंह में राम बगल में छुरी' की कहावत चरितार्थ हो रही है। स्वामीजी के शब्दों में इसकी अभिव्यक्ति देखिए—

मुंह पर कहते और बात पीछे कुछ और ही कहते हैं।
सबल के आगे गीदड़ सम निर्बल पे सिंह सम रहते हैं
पहले तो कहें मित्र हम तुमको हित कर चहते हैं।
समय पड़े पर आंख दिखाकर पथ दूसरा गहते हैं।
कहें उलटी अनरीत स्वार्थवश गहें प्रीत की रीत नहीं।
कहो प्रीत क्या करें किसी से पहले से अव मीत नहीं ॥64॥

पर यह रीति अच्छी नहीं है। अतः स्वामीजी 'नसीहत' शीर्षक खयाल में कहते हैं—

जाहिर बात एक रहे तो नहीं तुझे मजबूरी है।
बन ऐसा मत कभी जिस तरह सनी शहद की छूरी है।
कहो न कलमा सख्त किसी से यह एक बददस्तूरी है।
जुबाने शीरीं से कर हासिल उसको जोकि सदा मसूरी है ॥6॥

स्वामीजी के काव्य में भक्ति ज्ञान, वैराग्य तथा वेदान्त की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। 'लावण्यलता' में वे भगवान से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम हैं अघ पुंज न पुण्य बनें निशि बासर पाप कमाते हैं।
विषयी विष बेल नयी नित ही धन यौवन के मदमाते हैं।
जप, यज्ञ ज्ञान न ध्यान बने कामादिक के मढ़ जाते हैं।
पर एक भरोसा है मन को प्रभु आप पिता कहलाते हैं ॥4॥

यहां भक्त कवियों का दैन्य भाव तथा प्रभु की वत्सलता ध्यान देने योग्य है। 'वैराग्य' शीर्षक खयाल में स्वामीजी संसार की अनित्यता की ओर संकेत करते हुए उससे उबरने का उपदेश देते हैं—

भवन कोष परिवार मित्र गण संग न जावें यान ऋषभ।
भस्म होय तन जलकर सुन्दर साथ रहे पर एक वृषभ।
भूल रहा यौवन के मद में विषय सुख को जान सुलभ।
भरी पाप से नाव ज्ञान बिन जपे न क्षण राधा वल्लभ।
भंवर बीच जब पड़े कठिन दुख सहे दहे मन मान अचम्भ।
भव का बन्धन काट मंदमति त्याग कपट छल मत्सर दम्भ ॥29॥

वेदान्त की व्याख्या करते हुए स्वामीजी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का आश्रय लेते हैं। उन्होंने गीता के भावों को अत्यन्त सरल शब्दों में संजोया है। उदाहरणार्थ अखंड ब्रह्मानंद की स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

न जन्म धारे न काल खावे न तुझको व्यापे है कोई माया।
अचिन्त्य अव्यक्त अज निरंजन तू आप आपी में आ समाया।
कटे न काटे से शस्त्र के और न अग्नि का भी जले जलाया।
वहा सके है न जल कदाचित पवन से जावे नहीं सुखाया।
अखण्ड आनंद एक वह स्वरूप शुभ ब्रह्म का कहाया।
फंसा अविद्या के फन्द में तू वह ध्यान अपना सभी भुलाया ॥43॥

स्वामीजी आदर्श जीवन हेतु 'शिक्षा' शीर्षक ख्याल में कहते हैं—

क्षोभ किसी पर करे न निशिदिन मगन चित्त सहे सर्व समक्ष।
क्षान्तवान हो रहे सर्वदा तृष्णा का वह बने न लक्ष।
क्षण प्रति सुख से ओउम ओउम रट करें आत्मा का प्रत्यक्ष।
क्षीण न होने दे शरीर को रखे सदा साधन कर रक्ष।
क्षणिक स्वादु रसना के कारण कभी न भोजन करे अभक्ष।
क्षमाशील व्रत करे जो धारण वह जग में कहलावे दक्ष ॥30॥

स्वामीजी ने परोपकार की महिमा का गुणगान इन शब्दों में किया है—

नाम पर उपकारियों का आज तक विख्यात है।
दानियों की यश पताका स्वर्ग में फहरात है।
यों तो कूकर और शूकर जन्मते हैं जगत में।
जिसने कुछ नेकी कमाई बस उसी की बात है ॥49॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लावण्यलता' में कुछ लम्बे ख्याल वर्णन प्रधान हैं, यथा नरसी की हुंडी, गोवर्धन लीला, नागनाथन लीला आदि। इनमें कथा तत्त्व की प्रधानता होते हुए भी सरसता का संचार हुआ है।

'गोविनय' शीर्षक ख्याल में स्वामीजी ने गो माता की मर्मव्यथा को भावपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया है—

किसी की कौन सुनता है सब अपने मद में मतवाले।
गऊ माता बिचारी के पड़े हैं जान के लाले।
शिखा और सूत्रधारी हैं बने सन्तान ऋषियों की।
मगर वह डाले देते हैं कसाई के गऊ पाले।
हैं धेनु सुर विप्र बहु दुखारी तुम्हीं प्रभु धीर के धरैया।
भये हैं जग में प्रबल कसैया बचा लो आकर हमें कन्हैया ।।25।।

स्वामीजी सामयिक समस्याओं के प्रति भी जागरूक थे। अंग्रेजी राज्य में भारत की दुर्दशा का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं—

असर अब है कहां व्याखयानियों में।
न सिद्धि साधुओं की वाणियों में।
हुए हैं आलसी कर्त्तव्य भूले।
गंवाये दिन ये आनाकानियों में।
कठिन 'नारायण' है धर्म रहना, हर एक शै की गरानियों में।
कि सिक्का कागज का चल रहा है बजोर हिन्दुस्तानियों में ।।39।।

पाश्चात्य सभ्यता में रंगे भारतवासियों को देखकर उनका हृदय व्यथित हो उठा था। निम्नलिखित पक्तियों में उनकी वेदना साकार हो उठी है—

भूल गये सब लोग आज वह पहला चाल-चलन अपना।
पहन कोट पतलून बिसारा सुभग वस्त्र भूषन अपना।
बनते जंटिलमैन कभी था नाम सुखद सज्जन अपना।
उठा लिया यह कांच हाय, हाथों से फेंक रतन अपना।
हित न देश का किया, किया धन विदेश के अर्पन अपना।
विलासप्रियता में फंसकर बन गया देश निर्धन अपना ।।65।।

भारतवासियों को अपने प्राचीन गौरव का स्मरण कराते हुए वे कहते हैं—

है प्रमाण इतिहास कि भारत से शिक्षित सब देश हुए,
सार्वभौम शासनकर्त्ता भारत के वीर नरेश हुए।
नृप दिलीप रघु दशरथ आदिक महाबली विश्वेश हुए।
विजय किया लंका-सा द्वीप वह रामचन्द्र अवधेश हुए ।।66।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की पुकार इन शब्दों में की है—

सुनो हे प्रिय पुत्र मम विनय को ये आर्त्त स्वर कर पुकारी हिन्दी।
सुपुत्र हों तीस कोटि जिसके रहे वो माता दुखारी हिन्दी।
करो अनादर न इसका मन से कहे है करुणा बिचारी हिन्दी।
घनिष्ठ संबंध इसका तुमसे कि तुम ही हिन्दू तुम्हारी हिन्दी॥

भाव पक्ष के साथ-साथ स्वामी जी के ख्यालों में कला-पक्ष का भी सुन्दर निर्वाह हुआ है। उनके ख्यालों में अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग देखने को मिलता है। रूपक उनका प्रिय अलंकार है। एक उदाहरण देखिए—

काया रूपी कमल काल रूपी कुंजर जब लेवे तोड़।
मूल मनोरथ नष्ट होवे सब **भाव भृंग** जावें संग छोड़॥6॥

उनकी सांग रूपक की योजना देखते ही बनती है। उदाहरणार्थ 'रूपक वाटिका' ख्याल में कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

बना के करुणा की स्वच्छ क्यारी सुमति से एक सम कराएंगे हम।
और उनमें आत्मिक विचार रूपी विधि से पौधे लगाएंगे हम।
वह सत्य सुस्नेह रूप जल की नहर चहुंधा बहाएंगे हम।
हम अपने मन को बना के माली सुकृत से नितप्रति सिंचाएंगे हम॥33॥

निम्नलिखित पंक्तियों में उपमा अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है—

तक्षक सम शत्रु है मोह प्रबल और क्रोध सो काल की आकृत है।
तकता मुख जो इनका जग में उस जन को कहां फिर सुकृत है॥55॥

कुछ ख्यालों में यमक अलंकार का भी सफल निर्वाह हुआ है यथा—

योग युक्ति हर एक तरह से सदा साधते योग रहे।
योग सदा ही बना रहा पर हमीं एक बेयोग रहे॥60॥

अथवा—

कभी बालों को जो उसने खोला जरा दिया दम में घटा धरा का भी रुतवा।
कहीं कालों का होश बजा न रहा वो बला में बला को फंसाने लगा॥31॥

'लावण्यलता' की भाषा सरल व्यावहारिक हिन्दी है। कुछ ख्यालों में उर्दू शब्दों का भी खुलकर प्रयोग हुआ है, यथा—

मियां अकेले न खाओ हर्गिज कुछ और को भी खिलाके बैठो।
मकान अपना बहिश्त में तुम व फैजेहक से बना के बैठो।
मिला उसी को दिया है जिसने यह खूब तुम आजमा के बैठो।
मुकामे फानी है दौरे दुनिया न इसमें दिल को लगा के बैठो॥10॥

'लावण्यलता' के एक-दो ख्याल विशुद्ध उर्दू तथा फारसी में भी हैं, जिनसे स्वामी जी के उर्दू तथा फारसी ज्ञान का परिचय मिलता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी ने लावनी छंद का सफल प्रयोग किया है। इस पर उनका असाधारण अधिकार है। भाव, भाषा, अलंकार, छंद सभी दृष्टियों से 'लावण्यलता' एक सफल रचना है। लावनी-साहित्य में इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

---रीडर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग,
वर्द्धमान कॉलेज, बिजनौर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती पदावली—समीक्षात्मक परिचय

□ डॉ० शिवाशरण लाल मिश्र

नगर के प्रसिद्ध कवि श्री रमेशचन्द्र त्रिवेदी पुष्प के पास स्वामी जी रचित शृंगार-भक्ति विषयक बहुत से पद उन्हीं की हस्तलिपि में थे, जो एक ग्रंथ के रूप में व्यवस्थित थे। पुष्प जी ने इन पदों को 'सरस्वती पदावली'[1] नाम दिया था।

'सरस्वती पदावली' में गो-सेवा, ब्राह्मण जाति के पतन, देश-प्रेम, समाज-सुधार आदि विविध विषयों की अभिव्यक्ति हुई है। गो-रक्षा पर निम्नलिखित पंक्तियां देखिए—

'विनय मेरी सब भारतवासी ध्यान लगाकर करो भुवन।
गोरक्षा व्रत धर्म तुमारा इसे दिया क्यों त्याग सुजन।।[2]

ब्राह्मणों के पतन की ओर संकेत करते हुए कवि उनसे कहता है कि अब तो चेतो—

'अब तो चेतो हे ब्राह्मण गण, कर्म धर्म करो तेजो सुजन।
वेद शास्त्र तप संस्कार संध्या तज बन गए निश्चरगन।।'[3]

स्वामी जी ने कुछ लावनियां रामायण के रोचक प्रसंगों को लेकर भी लिखी हैं। जब भरत जी वन में राम से मिलने आते हैं, उस समय का चित्र देखिए—

'लखि कोल किरातन हांक दई प्रभु भरत शत्रुघ्न आए हैं।
बढ़ि धूरि गगन में पूरि रही चतुरंगिए सैन सुजाये हैं।।'

यह सुनकर कि भरतजी आ रहे हैं—प्रभु राम का तन पुलकित हो गया परंतु लक्ष्मण जी धनुष तानकर खड़े हो गए। राम भरत के प्रेम को स्मरण कर अकुलाने लगे—

1. पुष्प जी से एक सज्जन 'सरस्वती पदावली' ले गए परन्तु वापस नहीं की। —सं०।
2. सरस्वती पदावली, पृ० 8।
3. वही, पृ० 9।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुन बंधु के वैनन नीत सने रघुवीर हृदयहर्षित भये।
सुध प्रीत की भई जबहीं मन में तब अति ही अकुलात भये।
समुझ्यो बंधु कोई गूढ़ गिरा सुन के लक्ष्मण पुलकात भये।
मद राज्य को होइ भरत को नहीं अस कहि दृग सों जलतात भये[1]।।'

राधा के वियोग में कृष्ण की दशा देखिए। निम्नलिखित पंक्तियों में विप्रलम्भ शृंगार का अच्छा उद्रेक है—

ललिता सो कहें श्रीनन्द-नन्दन मेरी प्यारी को विनय सुना तो सही।
बिन काज प्रिया जो है मान कियो उन्हें जा के तू वेग मना तो सही।
बिन प्राण-प्रिया मोहि चैन नहीं सखी जल्दी तू दर्श दिखा तो सही।
उनको मुख चन्द्र चकोर हूं मैं मेरी प्यास को आली बुझा तो सही।
अति दीन दुःखी मोहिं जान सखी कृपा कर प्राण बचा तो सही।।[2]

सरस्वती-पदावली की भाषा को ब्रजभाषा के संस्पर्श ने अत्यन्त मधुर बना दिया है। स्वामी जी हमारे के सादृश्य पर तुम्हारे, तुम्हारी, तुम्हारा न लिखकर 'तुमारा', 'तुमारी', 'तुमारे' लिखते थे। यथा—

'गोरक्षा व्रत धर्म **तुमारा**'[3]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लावण्यलता की भांति ही 'सरस्वती पदावली' भी विविध भावों, विचारों, मार्मिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति करने वाली लावनियों का सुन्दर संग्रह है।

डी॰ पी॰ विद्यालय,
शाहजहांपुर

1. सरस्वती पदावली, पृ॰ 45।
2. वही, पृ॰ 51।
3. वही, पृ॰ 8।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तोषी सुदामा (सम्पादित) : समीक्षात्मक परिचय

□ डॉ० शम्भुशरण [redacted]

संतोषी सुदामा के मूल लेखक मुंशी गुरसहाय 'मुल्तजी' हैं। इसका सम्पादन स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर' ने किया है। इसका दूसरा संस्करण जो जून 1952 का है—मुझे स्वामी जी के शिष्य श्री रामऔतार ब्रह्मचारी से देखने को मिला। इसके प्रकाशक श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा 'ज्ञान मंदिर' पटकापुर, कानपुर हैं। यह पुस्तक सतयुग प्रेस बहादुरगंज—इलाहाबाद से छपी है। सम्पादक ने यह पुस्तक 'संतोषी' सुदामा के परम प्रेमी व भक्त श्री नन्दूमल गुप्ता उर्फ नन्दू खलीफा को सप्रेम भेंट की है।

तेरह पृष्ठों की भूमिका के लेखक हैं—सत्य भक्त, जो इस पुस्तक के मुद्रक हैं—इसे कोकिल सीरीज के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है, जिसकी संख्या 16 है। भूमिका में नरोत्तम दास, वीर कवि, राखन कवि, बुन्देलखण्ड के विनायक राव भट्ट रचित सुदामा चरित्रों का परिचय देते हुए भूमिका लेखक ने लिखा है—'प्रस्तुत पुस्तक में मुंशी गुरुसहाय 'मुल्तजी' ने सुदामा और श्रीकृष्ण की इसी जन-जन रंजनी कथा का उर्दू के मुसद्दस छंद में वर्णन किया है। मुल्तजी फारसी के विद्वान थे और जिस समय यह पुस्तक लिखी गई, उस जमाने में उर्दू कायस्थों की घरेलू भाषा हो गई थी। इसीलिए वे इस विषय को बहुत ऊंचे दर्जे की उर्दू और फारसी में सफलतापूर्वक लिख सके। तो भी बीच-बीच में उन्होंने बहुत से मुसद्दस ऐसे भी लिखे हैं जिनका भाषा शुद्ध हिन्दी है।'[1] नमूने के लिए देखिए—

'तब सहेली ने वहीं जाके उन्हें समझाया,
विप्रवर प्रेम का फल तुमने हरी से पाया।'[2]

सम्पादक के अनुसार, 'जहां मुल्तजी ने हिन्दी-उर्दू मिली भाषा का

1. भूमिका, पृ० 13
2. पद 202, पृ० 117

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग किया है, वे अंश अधिक मधुर तथा आकर्षक बन गए हैं। उदाहरण के लिए सुदामा की स्त्री के मुख से अपनी दीन दशा का वर्णन सुनिए[1]—

चुनरी है न दुपट्टा है, न सारी सर पर,
झूठा सच्चा कोई गोटा न किनारी सर पर,
बाल उलझे हुए बरसों से हैं भारी सर पर,
कंघी करती हूं तो हो जाती है आरी सर पर,
मर्द के होते जो औरत का न सिंगार बना,
क्या बना, कुछ न बना, खाक बनी खार बना ।।[2]

इस पुस्तक की भाषा के सम्बन्ध में 'मुल्तजी' ने स्वयं लिखा है—

पारसी इसमें है जो हिकमते यूनानी है।
जो जबां हिन्दी की है नुस्खये मिसरानी है।
प्रीतो परतीत की माजून ये मनमानी है;
कतु मधुर इसमें दवा सख्तियों आसानी है।
दले रंजूर को हर-बैत शफाखाना है;
उम्र भर इससे तलबगार विहीदाना है।।'[3]

अन्त में भूमिका लेखक ने लिखा है, 'मुल्तजी की 'संतोषी सुदामा' कविता भक्तिरस की दृष्टि से एक उच्चोकोटि की संग्रहणीय और पठनीय रचना है और तीनों भाषाओं के घुल-मिल जाने से यह और भी अधिक रोचक बन गयी है।'[4]

'संतोषी सुदामा' छोटे साइज में 128 पृष्ठों में सम्पादित है। भूमिका आदि सहित पुस्तक की कुल पृष्ठ संख्या 144 है।

छंद संख्या 228 के अंत में समाप्त लिखा है। यह छंद इस प्रकार है—

'सरपे हो मेरे इसी मोर मुकुट का साया,
तनपे खाके दरे[5] मोहन हो मेरा पैराया।[6]
भक्त का औजे[7] तरक्की पं हुआ यह पाया,

---

1. भूमिका, पृ० 13-14
2. पद 14, पृ० 24।
3. पद 221, पृ० 126
4. भूमिका, पृ० 16।
5. कृष्ण के द्वार की धूलि।
6. पोषण।
7. उन्नति का शिखर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम की उम्र उम्र गिरायी[1] के लिए सरमाया।
श्याम सन्मुख रहें और खुश रहें श्यामा जी से,
श्याम श्यामा की मिले भक्ति सुदामा जी से ।।'[2]

इसके बाद उपसंहार है— छंद 229 से 233 तक । छंद 233 में मुल्तजी ने संतोष की महिमा गायी है । कवि के अनुसार संतोष—

'गोहरे शुक्र दरी बहर दुरे नायाब, अस्त,[3]
सब्र साजे तरब अज बहर दिले बेताब अस्त ।[4]
हर जमां सब्र कलीदे अमलो ईजाब अस्त ।[5]
हर गुलिस्ताने जहां सब्र गुले शादाब अस्त ।[6]
नेमते शुक्र गदा अज पये तस्कीं दारद ।[7]
सब्र तलखत व लेकिन बेर शीरी दारद[8] ।।'[9]

इस प्रकार उपसंहार के अंतिम पद में संतोष की महिमा बताकर कवि मुल्तजी ने 'संतोषी सुदामा' शीर्षक की सार्थकता सिद्ध की है ।

इसके पश्चात् 'मुल्तजी' कृत दस गजलें दी गई हैं । जिनके संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि ये गजलें 'मुल्तजी' ने मूल पुस्तक में रखी थीं अथवा सम्पादक स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने 'मुल्तजी' की 10 गजलों को 'संतोषी सुदामा' के साथ संकलित किया है ।

प्रत्येक पद में आए कठिन शब्दों के अर्थ सम्पादक ने पाद-टिप्पणी में दिए हैं । जिस पद में पूरी पंक्ति फारसी की है—इस पूर्ण पंक्ति का अर्थ पाद-टिप्पणी में दिया गया है और जहां पूरा पद पारसी (फारसी) में है—उस पूरे पद का अर्थ दे दिया गया । जैसे—

'मन् हमानम् कि पयेपारसे नां शामो पगाह,
गर्दम आवारा वहरकूचे वसदहाल तवाह ।

---

1. अमूल्य जीवन ।
2. पद 228, पृ० 130
3. संतोष रूपी मोती समुद्र के मोती से मूल्यवान है ।
4. संतोष से अधीर मन भी प्रसन्न होता है ।
5. हर समय संतोष ही आशा की कुंजी है ।
6. संतोष संसार उद्यान का विकसित फूल है ।
7. संतोष रूपी धन से ही संतों को आनन्द मिलता है ।
8. संतोष करना कठिन है पर उसका फल मीठा होता है ।
9. पद 223, पृ० 133 ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारम अज तीरादिली नामये आमाल सियाह,
वेद हम ख्वानमो चूं वेद बलरजम जे गुनाह ।
कैरवा वृक्ष कजी मसियतम दखुज़री,
मेकुनी अज़ करमं खेश मगर चारागरी ।।1।।[1]

इससे पता चलता है कि स्वामी जी का उर्दू के साथ-साथ फारसी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था ।

'संतोषी सुदामा' की ऊंचे दरजे की उर्दू और फारसी का सफलतापूर्वक हिन्दी में अनुवाद तथा सुन्दर सम्पादन कर स्वामी जी ने मुल्तजी की यह सरस और भक्तिपूर्ण रचना हिन्दी पाठकों को सुलभ कराई—हिन्दी साहित्य संसार के लिए स्वामी जी का यह बहुत बड़ा योगदान है । साथ ही उनका यह प्रयास हिन्दी-उर्दू की एकता में भी सहायक है ।

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग
उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय
पीलीभीत (उ० प्र०)

1. पद 221, पृ० 122
'मैं वह हूं कि रोटी के टुकड़े के लिए गली-गली दुर्दशाग्रस्त फिरता हूं । हृदय की अपबित्रता से मेरे कर्म अच्छे नहीं हैं । मैं वेदपाठी हूं—परन्तु अपने पापों से बेंत की भांति कांपा करता हूं । क्या यह उचित होगा कि तू मेरे पापों को क्षमा कर दे । हां, शायद तू अपनी उदारता से मेरा उपकार करे—मुझे क्षमा करें ।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनी का इतिहास—समीक्षात्मक परिचय

□ डॉ० शम्भुशरण शुक्ल

'कानपुर के महात्मा स्वामी नारायणानंद ने लावनी में ही लावनीकारों का इतिहास प्रकाशित कराया था, यद्यपि वह बहुत युक्तिसंगत नहीं था और आजकल प्राप्त भी नहीं है।[1] इसका अर्थ यह हुआ कि डॉ० मानव ने स्वामी जी कृत 'लावनी' का इतिहास 'पुस्तक बिना देखे ही बता' दिया कि वह 'युक्ति संगत' नहीं तथा प्राप्त करने की चेष्टा किए बिना ही उसे अप्राप्य भी बता दिया।

स्वामी जी कृत 'लावनी का इतिहास' की एक प्रति इन पंक्तियों के लेखक के पास है। एक प्रति स्वामी जी के परम शिष्य डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' उपाचार्य—गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) के पास है। एक प्रति मैंने स्वामी जी के शिष्य रामऔतार ब्रह्मचारी मण्डी धनौरा (मुरादाबाद—उ० प्र०) के पास भी देखी। इसमें स्वामी जी का बिना दाढ़ी वाला चित्र भी प्रकाशित हुआ है।

'लावनी का इतिहास' पुस्तक राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा पब्लिक लाइब्रेरियों के लिए भी स्वीकृत की गयी थी। यदि डॉ० मानव इसे प्राप्त करने की चेष्टा करते तो अप्राप्य न लिखते। जहां तक युक्तिसंगत न होने की बात है—'हिन्दी की ख्याल लावनी परम्परा' के लेखक श्री रामनाराण अग्रवाल ने डॉ० मानव के विचारों का खण्डन करते हुए स्वामी जी की स्थापनाओं से अनेक स्थलों पर सहमति व्यक्त की है।[2]

---

1. डॉ० पुष्पमचन्द 'मानव'—हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी संत साहित्य का प्रभाव, पृ० 64।
2. "हिन्दी क्षेत्र में ख्याल गायकी का आन्दोलन सन् 1700 ई० से पूर्व किसी भी रूप में विद्यमान नहीं था। हमारे इस मत की पुष्टि स्वामी नारायणानंद जी के 'लावनी साहित्य के इतिहास' से भी हो जाती है। जो इस विधा के अधिकारी मर्मज्ञ विद्वान थे।" (पृ० 26)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लावनी का इतिहास' प्रथम बार सितम्बर 1953 में ज्ञान मंदिर पटकापुर कानपुर से प्रकाशित हुआ था। इसके प्रकाशक थे लावनी साहित्य-प्रेमी श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा। यह सतयुग प्रेस बहादुरगंज-इलाहाबाद से मुद्रित हुई थी। छोटे साइज में यह कुल 360 पृष्ठों की पुस्तक है। इसके प्रकाशक नारायण प्रसाद अरोड़ा ने स्वामी जी को 'लावनी के आचार्य'[1] कहा है। स्वामी जी ने 82 पृष्ठों की भूमिका में लावनी के स्वरूप तथा इतिहास पर प्रकाश डालते हुए उसके विभिन्न पक्षों—अखाड़े, अनुशासन, दण्ड, शागिर्द, चंगपूजा, दंगल, अखाड़े का परस्पर व्यवहार, सम्प्रदाय, गायकी आदि का सूक्ष्म तथा रोचक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

इसके पश्चात् कानपुर के खयालबाजों का इतिहास दो भागों में प्रस्तुत किया है—'कानपुर के तुर्रे वाले' और 'कानपुर के कलंगी वाले'। स्वामी जी ने कानपुर के तुर्रा पक्ष के 38 लावनीबाजों का परिचय दिया है। मदारीलाल उस्ताद, आशाराम, उस्ताद बदरुद्दीन, प्रेमसुख उस्ताद, भैरोंसिंह उस्ताद, दयालचंद या रामदयाल, उस्ताद बादल, अब्दुल गफूर खां, 'गफूर', मोहम्मद अहमद अली, मजीद खां, मथुरी मिस्सर, भग्गी गुरु भगवान, मुंशी खादिम, अजिज ज्ञानी, पं० रामदयाल जी त्रिपाठी, पं० प्रभुदयाल जी महाराज, मास्टर प्यारेलाल, मनीराम, मियां मौलाई, पं० माधव जी, बालावखश, शंकर स्वामी, स्वामी ब्लाकटानंद, चुन्नी गुरु, लाला कपूरचंद जैन उर्फ छन्नी बाबू, राजाराम मुनीम, मुकुन्दलाल स्वर्णकार, बैजनाथ उर्फ बैजू, चिरंजी पटवा, सुन्दर पं० लक्ष्मन प्रसाद शर्मा, कल्लन मियां उर्फ अद्दा मियां, मजनू खां, गंगासिंह, मैकू माली, लालता, पीताम्बर लाल नम्बरदार का परिचय उनकी रचनाओं के साथ दिया गया है।

कलंगी वालों में—श्यामसिंह उस्ताद, लाला शिवप्रसाद, मौलवी 'अफसर', पं० गौरीशंकर, तेगासिंह, दिल्लू ज्ञानी, आनंदी शायर, काशीदीन, कलूटी शायर, माटू शायर, बाबूराम खलीफा, बद्री प्रसाद खत्री, मणिलाल मिश्र, भगाने बाबू, शोर, विन्दा प्रसाद, गजफ्फर मियां, पन्नालाल खत्री, महेश नारायण मिश्र, महेश रुस्तम मास्टर, सप्पू लाला, भगवती, गुल, छेदी, दुर्गा उस्ताद, डॉ० सैयद अहमद अली, 'अहमद'—26 लावनीबाजों का परिचय दिया है। इन दोनों सम्प्रदायों के मौजूदा गाने वालों—सुन्दर बाबूलाल, खुशीराम, लालता, त्रिलोकी प्रसाद, वंशी (तुर्रा) तथा अयोध्या प्रसाद, बालजीत, दीना, सूरजबली (कलगी)—का अति संक्षिप्त परिचय दिया है।

'कतिपय प्रतिष्ठित सज्जनों का लावनी प्रम' शीर्षक से लाला चुन्नीलाल जी गर्ग, ला० सालिगराम बजाज, बा० किशोरचंद कपूर, ला० शंकर लाल कानोडिया,

---

1. लावनी का इतिहास, दो शब्द, पृ० 4

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० किशोरीलालजी एडवोकेट का परिचय दिया है। 'हिन्दी के कुछ श्रेष्ठ कवियों की रचनाएं' शीर्षक से लावनी प्रेमी हिन्दी कवियों का परिचय दिया गया है। इसमें कविवर पं० प्रतापनारायण मिश्र, सुकवि सम्राट श्री सनेही जी, महामनीषी श्री हितैषी जी, श्री पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री अभिराम शर्मा, श्री सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', स्वामी नारायणानंद सरस्वती 'अख्तर' का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके लावनी प्रेम की चर्चा के साथ-साथ उनकी लावनियों का आस्वादन भी कराया गया है। कानपुर के प्रसिद्ध लावनी लेखक पं० रामदयाल त्रिपाठी तथा चुन्नी गुरु और उनके अखाड़े के सदस्यों का समूह चित्र भी दिया है।

'लावनी का इतिहास' शीर्षक से ऐसा लगता है कि इसमें सभी लावनीबाजों का इतिहास होगा पर इसमें कानपुर के ख्यालगो लोगों का ही इतिहास प्रस्तुत किया गया है।[1] 'भूमिका' में जिस बारीकी से लावनी के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है—उससे स्पष्ट है कि स्वामी नारायणानंद सरस्वती लावनी गायक, लेखक ही नहीं, वास्तव में लावनी के आचार्य थे। इस दृष्टि से 'लावनी का इतिहास' लावनी समीक्षा शास्त्र की दृष्टि से इस क्षेत्र में मील का पत्थर है। हिन्दी में 'लावनी का इतिहास' एक ऐसी पुस्तक है जिसमें पहली बार लावनी के शास्त्रीय पक्ष पर व्यवस्थित तथा संतुलित विचार किया गया है और जिसकी उपादेयता असंदिग्ध है। पुस्तक का अवलोकन किए बिना ही 'युक्ति-संगत नहीं' कह देना उथली दृष्टि का परिचायक है।

इसकी शैली, व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक है और भाषा 'हिन्दुस्तानी'। स्वामी जी हिन्दी और हिन्दुस्तानी में अंतर नहीं मानते थे। उनके अनुसार हिन्दी कहो अथवा हिन्दुस्तानी दोनों का अर्थ है—हिन्दुस्तान की भाषा। यही कारण है कि उर्दू शब्दों के प्रयोग से उन्हें परहेज नहीं है—यथा चश्मदीद, जमाने, अक्सर मुनासिब, हकदार आदि। इसकी शैली पर आचार्यत्व की छाप है। इस प्रकार 'लावनी का इतिहास' स्वामी नारायणानंद सरस्वती को लावनी के आचार्य रूप में स्थापित करती है।

हिन्दी विभागाध्यक्ष,
उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीलीभीत (उ० प्र०)

1. लेखक की योजना लावनी का अखिल भारतीय इतिहास लिखने की थी। कानपुर के बाद आगरे के लावनीबाजों का इतिहास लिखने की तैयारी प्रारंभ कर दी थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्वामी जी ने ख्याल खोजक मंडल बनाया था। लेखक का सन् 54 में स्वर्गवास हो जाने के कारण लेखक की यह योजना पूरी न हो सकी। देखें लावनी का इतिहास, पृ० 13।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनी

□ द्वारिका प्रसाद सक्सेना

लोकगीत तीन प्रकार के मिलते हैं, परम्परा-प्रवाही, लिखित और प्रकीर्ण। लावनी का संबंध लिखित लोक-गीतों से है। यह लावनी-साहित्य किसी एक देश, एक भाषा, एक जाति एवं एक वर्ग से संबंधित नहीं रहा है, अपितु इसका संबंध अनेक स्थानों, अनेक भाषाओं अनेक जातियों एवं अनेक वर्गों से रहा है। इसीलिए लावनी लोकसाहित्य की सबसे अधिक प्रभावशाली एवं लोकप्रिय विधा के रूप में प्रसिद्ध है।

आरंभ में लावनी का संबंध सन्तों एवं फकीरों से रहा है, क्योंकि पहले सन्त या फकीर ही लावनी गाया करते थे और लावनी के लिए सभाओं, दंगलों एवं अखाड़ों का आयोजन नहीं किया गया था। सन्त या फकीर अपने भक्तों या शिष्यों के सम्मुख अत्यंत भाव-विभोर होकर लावनी गाते थे और उन लावनियों में भक्ति-भावना अथवा आध्यात्मिक भावों का ही प्राधान्य रहता था। इसी कारण लावनी के आदि प्रवर्तकों में सन्त तुकनगीर और फकीर शाहअली के नाम प्रसिद्ध हैं। धीरे-धीरे यह गायन पद्धति इतनी मनोरंजक एवं आकर्षक हो गयी कि सन्तों और फकीरों के यहां से जन-साधारण के मैदान में उतर आयी और लोकगीत के रूप में प्रचलित हो गयी। पहले लावनियों की दो मंच पद्धतियां प्रचलित थीं—**महाराष्ट्री और उत्तर भारतीय**। महाराष्ट्र में इसके अखाड़े या मंच को सभा महफिल अथवा तमाशा नाम दिया जाता था। इसमें गायक अभिनय के साथ मंच पर बैठे-बैठे लावनी गाया करते थे। सत्रहवीं शताब्दी में लावनी इतनी अधिक लोकप्रिय हो गई थी कि महाराष्ट्र के तमाशों के अन्तर्गत जो संक्षिप्त अभिनय किया जाता था उसमें लावनी के गायन की पद्धति ही प्रमुख रूप से अपनायी जाती थी और तमाशे में भाग लेने वाले नर्तक तथा नर्तकियां एवं अन्य अभिनेता इन लावनियों को विविध ढंग से गा-गाकर दर्शकों का मनोरंजन किया करते थे। यहां पहले लावनी के मंच पर नाटक की भांति रंग-पूजन के रूप में देव-स्तुति का प्रचार था। देव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुति के लिए कभी सरस्वती, कभी श्री कृष्ण अथवा कभी गणेश आदि किसी अन्य इष्टदेव की स्तुति का गायन किया जाता था। तदुपरान्त कुछ हास्य एवं मनोरंजन से परिपूर्ण संवाद प्रस्तुत किए जाते थे। ये संवाद किसी विदूषक या 'सौगाड्या' द्वारा मनोविनोद के लिए मंच पर प्रस्तुत किए जाते थे। इन संवादों के उपरान्त तीन कुमारियां नृत्य करती हुई रंगमंच पर उपस्थित होती थीं और नृत्य के साथ-साथ लावनियां भी गाती थीं। वे नर्तकियां दर्शकों के समीप जाकर उनकी फरमाइशें भी सुनती थीं और इनका संग्रह भी करती थीं। तदुपरान्त दर्शकों एवं श्रोताओं के अनुरोध पर लावनियां गायी जाती थीं। लावनी के मंच पर उक्त प्रथा महाराष्ट्र में दीर्घ अवधि तक प्रचलित रही।

उत्तरी भारत में लावनी के मंच की प्रथा दक्षिण की महाराष्ट्रीय पद्धति से पूर्णतया भिन्न रही है। यहां दंगल का आरम्भ अवश्य किसी देव-स्तुति से होता है, परन्तु यहां मंच पर न तो विदूषक या 'सौगाड्या' उपस्थित होता है, और न यहां तीन कुमारियां नृत्य के साथ लावनियां प्रस्तुत करती हैं!

यहां तो स्पष्ट रूप से मंच पर दो दल आमने-सामने बैठकर लावनी गाते हैं, एक-दूसरे की चुनौतियों का उत्तर देते हैं और रात भर लावनियों का गायन चलता रहता है। उत्तरी भारत की मंच पद्धति यह है कि यहां सर्वप्रथम मंगलाचरण के रूप में किसी देवी-देवता की स्तुति की जाती है, जिसे **सखी दौड़** या **दौड़ साखी** के नाम से अभिहित किया जाता है। यह शब्द वास्तव में 'दौरे साकी' है जिसका अपभ्रंश रूप सखी दौड़ या 'दौड़ साखी' प्रचलित हो गया है। कहीं-कहीं पर मंगलाचरण के पूर्व चंग नामक वाद्य पर निशान चढ़ाने की प्रथा भी प्रचलित है। मंगलाचरण के उपरान्त एक दल का कलाकार अपनी लावनी प्रस्तुत करता है, उसका उत्तर दूसरे पक्ष का कलाकार देता है। इस तरह दोनों दलों के लावनी कलावन्त परस्पर चुनौतियां देते हुए लावनियां प्रस्तुत करते हैं और रात भर लावनियां गायी जाती हैं। जो पक्ष अपने विरोधी पक्ष की लावनी का उत्तर नहीं दे पाता है अथवा उसी के वजन पर लावनी नहीं सुना पाता है, वह पराजित माना जाता है। लावनी के गायन हेतु पहले दुड़क्का, ढफ आदि वाद्यों का प्रयोग होता था, परन्तु आजकल तो चंग नामक वाद्य का ही प्रयोग होता है। दंगल में लावनी के गाने का अधिकार केवल उन्हीं कलाकारों को होता है, जो किसी अखाड़े से सम्बद्ध होते हैं तथा जो विधिवत् किसी गुरु के शिष्य होते हैं।

लावनी का आरम्भ होते ही मंच पर जो प्रश्नोत्तरात्मक लावनियां प्रस्तुत की जाती हैं, उनको **'दाखला'** के नाम से अभिहित किया जाता है। एक पक्ष का लावनीकार जिस रंगत, छन्द और तुक में अपनी पहली लावनी प्रस्तुत करता है। दूसरे पक्ष के लावनीकार को उसके उत्तर में उसी रंगत, उसी छंद और उसी तुक में **'दाखला'** (प्रारम्भिक लावनी) प्रस्तुत करना पड़ता है। इसके लिए गुरु या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस्ताद लोग भी दंगल में बैठे रहते हैं, जो शीघ्र ही उसी प्रकार की लावनी तैयार कर देते हैं और कभी-कभी स्वयं ही मंच पर गाकर अपनी लावनी प्रस्तुत किया करते हैं।

लावनी के दो प्रसिद्ध पक्ष माने गए हैं जो तुर्रा और कलंगी के नाम से प्रसिद्ध हैं। वैसे इनके अतिरिक्त दत्त, टुण्डा, मुकुट, सेहरा, मौड़, चिड़िया, अनगढ, चत्तर, लशकरी, टकसाली, चेतना, बन्दी आदि के अनेक भेदोपभेद सुने जाते हैं। परन्तु प्रमुख दो ही पक्ष हैं—तुर्रा और कलंगी। इनमें से 'तुर्रा' को कुछ पक्षधरता ब्रह्म या शिव के रूप में मानते हैं और उनका मत है कि ब्रह्म ही संसार का आदि तत्त्व है और जिससे यह समस्त जड़चेतन दृष्टिगोचर होता है। कुछ तुर्रा को निरंजन रूप मानते हैं। साथ ही कलंगी को माया बताते हैं जो दुर्गा, पार्वती, देवी आदि के रूप में मानी जाती है। इस प्रकार उनके मत से यदि तुर्रा पुरुष है तो कलंगी नारी है। तुर्रा यदि ब्रह्म है, तो कलंगी माया है। तुर्रा जगनियंता शिव है तो कलंगी उन्हीं के संकेत पर चलने वाली अथवा उनकी अंकशायिनी दुर्गा है। इस तुर्रा पक्ष के प्रवतंक तुकनगिरी माने जाते हैं और कलंगी पक्ष के प्रवर्तक शाह अली। प्रसिद्ध है तुकनगिरी अद्वैतवादी या ब्रह्मवादी थे तथा शाहअली सूफी सन्त थे। इसी कारण तुकनगिरि ने अपने तुर्रा को ब्रह्म या पुरुष रूप में माना है, जबकि सूफियों ने ईश्वर या ब्रह्म को नारी रूप में स्वीकार किया है।

इसीलिए शाहअली ने कलंगी को नारी माया या देवी रूप में माना है। पीछे चलकर लोगों को सूफी मत की इस मान्यता का तो ध्यान नहीं रहा कि वहां ईश्वर की ही नारी रूप में कल्पना की गई है। इसी कारण तुर्रा पक्ष को ब्रह्म या पुरुषवाचक तथा कलंगी पक्ष को माया या नारीवाचक मान लिया गया। उधर कलंगी पक्ष वाले अब कलंगी की सर्वोपरिता सिद्ध करने के लिए उसे आदि शक्ति या माता मानते हैं और शिव एवं ब्रह्म को उसका पुत्र कहते हैं। जो भी हो, इन दोनों पक्षों का कोई लिखित प्रमाण तो मिलता नहीं। केवल किम्वदन्तियों के रूप में कुछ बातें अवश्य मिल जाती हैं, जो इन दोनों पक्षों पर प्रकाश डालती हैं।

कहा जाता है कि तुकनगिरि और शाहअली दोनों सन्त एक बार घूमते-घूमते महाराष्ट्र प्रदेश में पहुंचे। वहां इनकी लावनियों की प्रसिद्धि सुनकर तत्कालीन मराठा-शासक ने इन दोनों सन्तों को अपने दरबार में लावनी गाने के लिए आमंत्रित किया। दोनों सन्तों ने बड़ी तन्मयता के साथ अपनी लावनियां सुनाईं, जो आध्यात्मिकता के रंग में रंगी हुई थीं और जिनको सुनकर मराठा शासक अत्यंत प्रसन्न हुआ था। अंत में उन दोनों का सम्मान करते हुए उस मराठा-शासक ने अपनी पगड़ी में से निकालकर तुर्रा को तुकनगिरि को दे दिया और 'कलंगी' शाहअली को भेंट कर दी। कुछ विद्वानों का मत है कि उक्त घटना सम्राट अकबर के दरबार से संबंधित है और सम्राट अकबर ने ही अपनी पगड़ी से तुर्रा निकालकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुकनगिरि महाराज को अर्पित किया था।

और कलंगी निकालकर फकीर शाहअली को भेंट की थी। एक विद्वान का विचार यह भी है कि सूफी संत शाहअली के दो पुत्र अरब से भारत में आए थे। उनमें से एक तो सन्त तुकनगिरि का शिष्य होकर एकेश्वरवाद या ब्रह्मवाद की लावनियां गाने लगा था और दूसरा अपने पिता शाहअली की तरह सूफी मत का अनुयायी होने के कारण सूफी धर्म संबंधी लावनियां गाता था। दोनों ही गायक एक बार सम्राट अकबर के निमंत्रण पर उनके दरबार में फतेहपुर सीकरी पहुंचे और दोनों ने अपनी-अपनी लावनियां सुनायीं, जिन्हें सुनकर सम्राट अकबर बहुत प्रसन्न हुए और दोनों के सम्मानार्थ एक को तुर्रा और दूसरे को कलंगी भेंट की गई। जो आगे चलकर लावनी के दो पक्षों के निशान बन गए। इस प्रकार उक्त मान्यताओं के आधार पर इतना ही स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि लावनीकार के दो पक्षों का विभाजन तुर्रा और कलंगी के नाम से लगभग सोलहवीं शताब्दी के आस-पास अवश्य हो गया था तथा इससे पूर्व लावनी के स्पष्ट रूप से कोई दो अखाड़े या दो पक्ष नहीं थे तथा यह कला केवल सन्तों या सूफी फकीरों तक ही सीमित थी।

आज लावनी के दंगलों एवं अखाड़ों पर दृष्टिपात करने के उपरांत पता चलता है कि लावनी के दंगलों में जब एक पक्ष का लावनीकार अपनी लावनी से कोई प्रश्न उपस्थित करता है, तब दूसरे पक्ष के लावनीकारों को वह चुनौती देता है और दूसरे पक्ष वाले उसकी चुनौती को स्वीकार करके प्रश्न का उत्तर देते हैं। ये प्रश्नोत्तर पूर्ण लावनियां बड़ी मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद होती हैं तथा इनमें वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान के अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है। इसी कारण लावनियों के गुरुओं को विविध विषयों का ज्ञान होता है, वे नाना प्रकार की पौराणिक गाथाओं से परिचित होते हैं और उन्हें विविध प्रकार के धर्म-ग्रन्थों की यथेष्ट जानकारी होती है। जैसे, एक लावनी के दंगल में मंगलाचरण के उपरान्त एक पक्ष ने प्रश्न उपस्थित किया—

'देकर प्रमाण यह बतलाना, मन में कुछ करना शंक नहीं,
क्या कारण है स्पष्ट कहो, क्यों ब्याल चढ़े पर्यंक नहीं।'

इस प्रश्न को सुनकर दूसरे पक्ष के लावनी कलाविज्ञ गुरु ने शीघ्र ही एक लावनी तैयार करके इस प्रकार उत्तर दिया, जिसमें अपने पौराणिक ज्ञान के साथ-साथ पूर्व पक्ष का उत्तर कितना कलात्मकता से युक्तिपूर्वक दिया गया है—

'तक्षक भय से अभिमन्यु तनय, सो पाता था निश्शंक नहीं।
राजी दिवला ने आन दई, यों चढ़े सर्प पर्यंक नहीं।'

ऐसे ही जब पूर्व पक्ष अपने विपक्षी के वजन पर उसी के ख्याल पर दूसरी लावनी पढ़ता है और इस प्रकार दंगल में एक पर एक लावनी गायी जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनियों की नोंक-झोंक एवं प्रतियोगिता को देखकर एक बात स्पष्ट है कि इनमें गुरुओं को बराबर यह ध्यान रखना है कि एक पक्ष ने किस विषय पर किस टेक को लेकर, किस रंगत में, किस छन्द में और किस भाषा में कैसी लावनी गायी है। दूसरे पक्ष को भी उसी तरह की लावनी सुनानी पड़ती है। इन लावनियों में गर्वोक्तियों, समस्याओं, प्रश्नोत्तरों, आध्यात्मिक वाद-विवादों आदि के अतिरिक्त फटके का प्रयोग भी दाखला के रूप में होता है। इस फटके के अंतर्गत प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों को एक ही प्रश्न में, एक ही तुक में और एक ही छन्द में अपनी-अपनी बात सुनानी पड़ती है। इस प्रकार टेक पर टेक और दाखला पर दाखला द्वारा लावनियों का गायन बराबर होता रहता है।

लावनियों के विषय की विविधता इनकी प्रमुख विशेषता है, क्योंकि लावनी का निर्माण कभी एक ही विषय पर नहीं होता। कभी तो शृंगार रस प्रधान लावनी गायी जाती है, तो कभी वीर-रस प्रधान। कभी राष्ट्र-प्रेम से परिपूर्ण लावनी गाई जाती है, तो कभी दार्शनिक विषय पर, कभी पौराणिक गाथाओं को आधार बनाकर लावनी गायी जाती है तो कभी राजनीतिक विषयों पर और कभी 'इश्क हकीकी' पर लावनी गायी जाती है तो कभी 'इश्क मजाजी' पर। कहने का तात्पर्य यह है कि लावनी में विविध विषयों का समावेश होता है।

कभी-कभी समसामयिक विषयों को लेकर ऐसी मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद लावनी गायी जाती है, जिसे सुनकर श्रोता न केवल गद्गद हो जाते हैं, अपितु उस रचना की सराहना करते हुए नहीं थकते। जैसे, राष्ट्र-प्रेम से परिपूर्ण यह लावनी देखिए, जिसमें लावनीकार ने भारत के सभी नेताओं को लेकर किस प्रकार सुन्दर लावनी की रचना की है—

खद्द्र की चुंदरी कर ऐसी तैयार रे रंगरेजवा।
जिससे इस भारत का होवे उपकार रे रंगरेजवा॥
एक ओर कोने पर बावा गांधी चरखाधारी हों।
विजय लक्ष्मी एक ओर भारत की राजदुलारी हों॥
मौलाना आजाद कांग्रेसी प्रधान अधिकारी हों।
एक ओर गोविंद पंत भारत के प्रेम-पुजारी हों॥
हों वीर भगतसिंह बलिदानी सरदार रे रंगरेजवा।

उक्त लावनी को सुनकर दूसरे पक्ष के लावनीकार ने भी तुरंत इसी वजन पर उसी समय इसका उत्तर देने के लिए लावनी तैयार की जो इसी टेक, इसी छन्द, इसी वजन एवं इसी विषय पर इस प्रकार गायी गई थी—

जिसमें हो चरखा संघ प्रामाणिक तार रे रंगरेजवा।
मैं उस खद्द्र की चादर पर बलिहार रे रंगरेजवा॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चे स्वदेश के भाव भरे सत्याग्रह की गति जानी हों।
पक्के स्वराज्य के तीन रंग असि प्रणधारा का पानी हों।।
दादाभाई नौरोजी के फूलों की बेल सुहानी हों।
गंगाधर तिलक चढ़ाते हो गंगाधर का वरदानी हों।।

इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर देते हुए लावनी के दंगल सारी रात चलते रहते हैं। कभी-कभी दो-दो या तीन-तीन रातोंरात भी लावनी के दंगल जमते हैं और जब तक जय-पराजय नहीं होती, तब तक कोई पक्ष किसी दूसरे से प्रतिस्पर्धा में पीछे नहीं हटता।

लावनी के बारे में एक भ्रान्त धारणा है कि लावनी एक छन्द विशेष होता है और उसी छंद में जो गायकी प्रस्तुत की जाती है, उसे लावनी कहते हैं। परन्तु आज तक किसी भी विद्वान ने 'लावनी' की कोई सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत नहीं की है। कारण यह है कि लावनी किसी छंद विशेष में गायी जाने वाली रचना का नाम ही नहीं है, अपितु यह गायन की विशेष शैली है, जिसमें विविध प्रकार के राग एवं रागनियों का समावेश रहता है। इसे **ख्यालगोई** भी कहते हैं। इसका मुख्यतया सम्बन्ध उन लोक-छंदों से होता है जो नौटंकी, स्वांग, भगत आदि में भी प्रयुक्त होते हैं और जिनका प्रचार एवं प्रसार उर्दू शायरी में भी है। मुख्यतया 'लावनी' कई रंगतों में रची एवं गायी जाती है। इनमें से बहरतावील, छोटी लावनी, रंगत शिकिस्ता, रंगत खड़ी, रंगत महाराज, रंगत लंगड़ी, रंगत जिकड़ी, रंगत वची, दौड़ और सखी अथवा सखी दौड़ (दौरे शाकी), रंगत गजली, खमसा या खमचा, तवील मुखपफा, रंगत सोहनी, शैर आदि विविध रंगतों एवं रचना-पद्धतियों का प्रयोग अधिक होता है। इसका अभिप्राय यह है कि पहले भले ही लावनियां सुप्रसिद्ध 'लावनी' छंदों में रची और गायी जाती होंगी, किन्तु लावनी का सम्बन्ध जैसे-जैसे दंगलों, अखाड़ों आदि में आकर उर्दू-फारसी की बहरों, गजलों, शिकिस्ता आदि छंदों से हुआ, वैसे-वैसे इसमें विविध प्रकार के छंदों का समावेश होने लगा। पहले ये छंद हिन्दी एवं उर्दू के छंद शास्त्र से ही लिये जाते थे, परन्तु जनसाधारण की रुचि के अनुकूल लावनियों की रचना होने के कारण इसमें बहतरबील, झूलना, चौबोला, दोहा, सोरठा आदि का भी समावेश होने लगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र आदि के द्वारा रचित लावनियों में प्राय: 22 मात्राओं के राधा, सुमेरु, भृंगावर्तनी, परमावर्तनी आदि छंदों का ही प्रयोग हुआ है, और पहले हिन्दी में इन्हीं छंदों के अन्तर्गत लावनी-साहित्य रचा जाता था, परन्तु धीरे-धीरे जैसे-जैसे उर्दू-फारसी के साथ-साथ हिन्दी-लावनी का सम्बन्ध बढ़ने लगा, वैसे-वैसे उर्दू-फारसी भाषा के साथ-साथ लावनी में उर्दू-फारसी की बहरें, शेर आदि भी पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त होने लगीं। इस तरह आज लावनी साहित्य की रचना-पद्धति का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि इनमें विविध

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के छंदों, बहरों, रंगतों आदि के प्रयोगों के कारण छन्दगत विविधता आ गयी है। कहीं-कहीं अब लावनियां आधुनिक चित्रपट-संगीत को आधार बनाकर भी रची जाने लगी हैं क्योंकि लावनी का मुख्य लक्ष्य जनसाधारण है और जनसाधारण को जो लोकधुनें, शास्त्रीय या अशास्त्रीय धुनें, अरबी-फारसी की धुनें, चित्रपट संगीत की धुनें पसन्द हैं, लावनीकार उन्हीं धुनों में लावनियों की रचना करके श्रोताओं का मनोरंजन किया करते हैं।

लावनी-साहित्य का मुख्य रस तो शृंगार है और शृंगार में भी संयोग शृंगार सम्बन्धी लावनियां अधिक रची जाती हैं। कारण यह है कि शृंगार रस-राज है और जनसाधारण के मानस को आन्दोलित करने अथवा उसके चित्त को प्रसन्न बनाने में शृंगार रस का योग महत्त्वपूर्ण होता है। प्राय: सभी लावनीकार अस्सी प्रतिशत लावनियां संयोग शृंगार में अवश्य रचा करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लावनियां वियोग शृंगार में भी मिलती हैं। शृंगार के संयोग एवं वियोग पक्ष को लेकर प्राय: राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण सम्बन्धी लावनियां अधिक रची गई हैं। जिन लावनियों में उर्दू-फारसी का प्राधान्य मिलता है, उनमें 'इश्कमजाजी' संबंधी लावनियां अधिक रची गयी हैं, जहां आशिक, माशूक, साकी, शराब, मयखाना आदि का वर्णन अधिक मात्रा में मिलता है। हिन्दी भाषा में रचित लावनियों के अन्तर्गत कृष्ण और गोपियों की छेड़छाड़ अथवा कृष्ण के वियोग में व्यथित गोपियों की कातर स्थिति का वर्णन अधिक मिलता है। शृंगार के अन्तर्गत लावनीकारों ने प्राय: रूप-वर्णन को अधिक महत्त्व दिया है। नायिका के रूप-सौंदर्य की झांकी अंकित करने में इन लावनीकारों ने कमाल कर दिखाया है। इसके साथ ही हिन्दी के रीतिकालीन कवियों की भांति लावनीकारों ने भी कामुकता, विलासिता एवं शृंगारिकता से परिपूर्ण कामोत्तेजक भावों का चित्रण लावनियों में अधिक मात्रा में किया है। इसके साथ ही अनेक लावनियां नखशिख-वर्णन, ऋतु वर्णन, बारहमासा आदि के अतिरिक्त नायिका-भेद पर भी लिखी गयी हैं, जिनमें नारी के विविध भेदों, रूपों, स्वभावों, क्रियाओं, चेष्टाओं, काम-व्यापारों आदि के वर्णन अत्यंत रोचकता एवं मार्मिकता के साथ किये गए हैं।

लावनियों में प्रमुखता तो शृंगार-रस की ही रहती है, किन्तु शृंगार के अतिरिक्त कुछ लावनीकारों ने वीररस की लावनियां भी अत्यंत प्रभावोत्पादक शैली में लिखी हैं, जिनमें इतिहासप्रसिद्ध वीरों एवं वीरांगनाओं, त्यागी एवं बलिदानी महापुरुषों, उत्साह एवं उमंग से परिपूर्ण सपूतों निष्काम कर्मयोगी, समाज-सेवकों, स्वदेश-प्रेम में मतवाले योद्धाओं, रणांगण में मारकाट मचाने वाले शूरवीरों आदि के वर्णन अत्यंत ओजपूर्ण भाषा में मिलते हैं। वीर-रस के अतिरिक्त देशभक्ति से परिपूर्ण लावनियां भी पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं, जिनमें समसामयिक आन्दोलनकारी वीरों, सत्याग्रहियों, फांसी पर चढ़ने वाले बलिदानियों, स्वतंत्रता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्राम में आहुति देने वाले हुतात्माओं, देश-प्रेम में मतवाले देशभक्तों, आजादी के परवानों आदि के अतिरिक्त महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू, विजयलक्ष्मी पंडित, बालगंगाधर तिलक, वीर सावरकर, झांसी वाली रानी, महाराणा प्राताप, वीरवर शिवाजी, दादाभाई नौरोजी, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, लालबहादुर शास्त्री, इन्दिरा गांधी आदि पर भी अत्यंत उत्कृष्ट भावनाएं व्यक्त हुई हैं। इसके साथ ही कुछ लावनीकारों ने ऐसी लावनियां रची हैं, जिनमें दीन-हीन किसानों के शोषण, मजदूरों की दयनीय स्थिति, जनसाधारण की दूषित मनोवृत्ति, अंग्रेजों की दमन-नीति, शासकों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार आदि का चित्रण मिलता है।

कुछ लावनीकारों ने ऐसी भी लावनियां लिखी हैं, जिनमें रौद्र, वीभत्स, भयानक, करुणा एवं वात्सल्य रसों के दर्शन होते हैं। युद्ध वर्णनों में प्रायः रौद्र एवं वीभत्स रस के दर्शन हो जाते हैं। देश की दयनीय दशा के चित्र अंकित करते हुए कहीं-कहीं लावनीकारों ने शोक की ऐसी नदी प्रवाहित की है, जिसमें करुण रस विद्यमान है। ऐसे ही भूचाल आदि के विवरण प्रस्तुत करते हुए लावनीकारों ने भय नामक स्थायी भाव से परिपूर्ण **भयानक रस** का भी निरूपण किया है। इसी भांति बालकों के प्रति ममता, स्नेह एवं प्रेम की धारा बहाते हुए कुछ लावनीकारों ने **वात्सल्य रस** का भी चित्रण किया है। परन्तु उक्त सभी रसों में **शान्त रस** का वर्णन लावनियों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कारण यह है कि भारत दार्शनिकों का देश है और लावनी के प्रवर्तक भी दार्शनिक व्यक्ति थे। अतः संसार की असारता, जीवन की क्षणभंगुरता, आत्मा की अमरता, विषय-भोगों की निस्सारता, शरीर की नश्वरता आदि के साथ-साथ लावनीकारों ने जहां जीव, ब्रह्म एवं ब्रह्म और जगत की अद्वैतता का वर्णन किया है, माया के प्रपंच का निरूपण किया है, विविध विकारों से निवृत्ति का चित्रण किया है, उस अद्वैत, अगोचर एवं विराट् सत्ता के प्रति गहन आस्था एवं विश्वास का निरूपण किया है अथवा मोक्ष-प्राप्ति के लिए अपने भावों की अभिव्यक्ति की है, वहां सर्वत्र शान्त रस की अभिव्यंजना हुई है।

लावनी की रचना पर हिन्दी और संस्कृत की रचना शैली का उतना प्रभाव नहीं, जितना कि अरबी-फारसी की रचना-शैली का है। अरबी-फारसी की इस रचना शैली को **'सनअत'** कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है—नक्काशी, कारीगरी, चित्रकारी आदि। अतः लावनी की रचना या साज-सज्जा में 'सनअत' का सर्वाधिक प्रभाव रहता है। किसी भी दंगल या अखाड़े में दो पक्ष लावनियां गाने के लिए बैठते हैं, तब लावनी को कलात्मक बनाने के लिए इसी 'सनअत' का प्रयोग किया जाता है और एक ही 'सनअत' को लेकर दूसरा, तीसरा और चौथा उत्तर-प्रत्युत्तर चलता रहता है। इस 'सनअत' में हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी आदि सभी भाषाओं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अलंकरणों का समावेश रहता है। अतः किसी एक भाषा के शास्त्रीय आधार पर इसका विवेचन नहीं किया जा सकता। जैसे 'सनअत' का एक रूप 'तलाजमा' या 'जिलाजवानी' होता है। इसे न तो विशुद्ध श्लेषालंकार कहा जा सकता है और न मुद्रालंकार। इसमें कई अलंकारों, प्रतीकों एवं अर्थान्तरों का समावेश रहता है। जैसे इन अलंकारों में ऐसे शब्दों को चुन-चुनकर रखा जाता है, जो एक ओर तो तरकारी, व्यंजन, पाकवस्त्र, आभूषण, मेवा, मिष्टान्न आदि से सम्बन्धित होते हैं और दूसरी ओर वे किसी अन्य सांकेतिक अर्थ के भी द्योतक होते हैं। 'जिला जवानी' या 'तलाजमा' का यह नमूना देखिए—

'क्या मालपुआ खुल गये गुड़ की भेली के।
तगड़ी नितम्ब पर बंधी है खुल खेली के।।
खोले किसमिस अदरक है सममेली के।
बांधी है घांघरी कटि पर अलबेली के।।"

उक्त पद में पकवान, ज़ेवर, मेवा, तरकारी और वस्त्र पांच जिले एक साथ वर्णित हैं। ऐसे ही कुछ लावनियों की रचना 'तिसहर्फी, या 'ककहरे' के आधार पर की जाती है, जिसमें पूरी लावनी 'क' से 'ह' तक वर्णों पर निर्मित होती है। यह 'ककहरा' भी कभी सीधा और कभी उल्टा प्रयोग किया जाता है, जिसमें कभी 'क' से 'ह' तक कभी 'ह' से 'क' तक वर्णों पर पंक्तियां लिखी जाती हैं। कभी-कभी कुछ लावनियों की रचना संख्यावाचक शब्दों को लेकर की जाती है, जिसमें संख्याओं के आधार पर गूढ़ एवं गम्भीर बातें कही जाती हैं। जैसे—पंचतत्त्व, दस अवतार, पच्चीस प्रकृतियां आदि। कभी-कभी कुछ लावनियां मात्राहीन अक्षरों पर लिखी जाती हैं जिनमें केवल व्यंजनों का ही प्रयोग होता है और जिन्हें 'अमात्र सनअत' के नाम से पुकारा जाता है। जैसे—'लटत लट हट लट हट लक टल लरत, नटखट जटखट नत रल' आदि। ऐसे ही कुछ लावनियों की रचना 'बेनुकता सनअत' अथवा कुछ लावनियां 'नुकताचीन सनअत' में लिखी जाती हैं। इनमें से 'बेनुकता सनअत' के अन्तर्गत ऐसे शब्द रखे जाते हैं, जिनके नीचे नुकते नहीं लगते और 'नुकताचीन सनअत' में सभी शब्द नुकते वाले प्रयोग किए जाते हैं। कुछ लावनियां ऐसी 'सनअत' में भी लिखी जाती हैं, जिनमें एक शब्द दूसरे शब्द से शृंखला या जंजीर के रूप में पिरोया हुआ होता है, ऐसी 'सनअत' को 'जंजीर बंद सनअत' के नाम से पुकारा जाता है। जैसे 'काया में है जीव, जीव में रूप, रूप में छवि वृन्द, छवि में ज्योति, ज्योति में आप रूप सच्चिदानन्द' आदि। कुछ लावनियां 'गतागत सनअत' में भी लिखी जाती हैं, जिनमें एक ही पंक्ति उल्टी या सीधी किसी भी प्रकार पढ़ी जाए, वह ज्यों की त्यों रहती है। जैसे 'रक्षअ' कारक जनि का निज कर का अक्षर' आदि कुछ लावनियों की रचना 'हफ्त-जबान' अर्थात् सात भाषाओं में भी की जाती है, जिसमें सात के अलावा अधिक भाषाओं के शब्द भी आ सकते हैं। ऐसे ही कतिपय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनियां चित्र-काव्य शैली में भी रची जाती हैं।

इस प्रकार लावनी साहित्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि लावनी लोक-साहित्य की ऐसी विधा है, जिसमें सभी प्रकार के भावों, रसों एव विचारों का समावेश बड़ी गहनता एवं गम्भीरता से होता है, जो लोकानुरंजन की एक अत्यंत प्रभावोत्पादक शैली है, जिसकी रचना के लिए उर्वर प्रतिभा एवं नवनवोन्मेष-शालिनी कल्पना की आवश्यकता होती है जो किसी एक भाषा तक सीमित न रहकर विविध भाषाओं के सम्मिश्रण से रची जाती है, जिसमें ऐतिहासिक, पौराणिक सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि घटनाओं एवं विवरणों के साथ-साथ दार्शनिक विचारों एवं समसामयिक घटनाओं का भी समावेश होता है, जो लोक-काव्य शैली में रची जाती हैं जिसके लिए पर्याप्त ज्ञान एवं योग्यता की आवश्यकता होती है, जो बड़े-बड़े गुरुओं एवं उस्तादों के द्वारा अत्यंत मार्मिक ढंग से रची जाती हैं तथा जिसमें जन-साधारण को प्रभावित करने एवं उनका मनोरंजन करने की विलक्षण शक्ति होती है।

475, नई बस्ती, खुर्जा (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराष्ट्र के लोक-साहित्य की शाहीरी परंपरा में लावनी

□ कृष्णाजी गंगाधर दिवाकर

महाराष्ट्र के लोक-साहित्य में 'शाहीरी साहित्य' का विशेष बोलबाला रहा। इसके अन्तर्गत पोवाडे, लावनियां, लोकनाट्य, भारूड, गोंधल, डफगान आदि का समावेश किया जाता है। अधिकांश शाहीरी साहित्य मनोरंजनार्थ निर्माण हुआ है। रुचि भिन्नता के कारण इसमें भी वीर, शृंगार, शांत आदि रस पाये जाते हैं। महाराष्ट्र पर बहुत दिनों तक मुसलमानों का शासन रहने से शासकों की हिन्दी-उर्दू भाषा के कई शब्द मराठी भाषा में रूढ़ हो गये हैं। कभी-कभी ऐसे शब्दों के प्रयोग मराठी भाषा में किये गये हैं जिनके मूल अर्थ में कुछ अंतर होता है। उर्दू में प्रयुक्त शायर शब्द अरबी के 'शाहर' इस शब्द का तद्भव रूप है जिसका अर्थ कवि होता है।[1] मराठी में प्रयुक्त शाहीर शब्द सम्भवतः उर्दू के 'शायर' अथवा अरबी के 'शाहर' शब्द का अपभ्रंश रूप होगा। जिस प्रकार 'शाहर' अथवा 'शायर' शब्द के रूप में परिवर्तन हुआ उसी प्रकार अर्थ में भी परिवर्तन पाया जाता है। मराठी में 'शाहीर' शब्द का अर्थ यद्यपि 'कवि' किया जाता है फिर भी विशेष अर्थ में। किसी भी प्रकार की कविता करने वाले कवि को 'शाहीर' नहीं कहा जाता बल्कि पोवाडा, लावनी अथवा तत्सम लोककाव्य की रचना करने वालों के लिए 'शाहीर' शब्द का प्रयोग किया जाता है और ऐसे शहीरों की लोकाभिमुख कविता 'शाहीरी' कहलाती है।

पोवाड़ों की भांति लावनी अथवा लावणी भी लोकाभिमुख शाहीरी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। पोवाड़े में वीर रस की प्रधानता रहती है तो लावनी में शृंगार रस की। मराठी में पोवाड़ों की तुलना में लावनी की संख्या अधिक मात्रा में मिलती है। 'लावणी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक मतभेद पाये जाते हैं। एक

1. उर्दू-हिन्दी-कोश, रामचन्द्र वर्मा, पृ० 424

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत के अनुसार लवण अथवा लावण्य शब्द से 'लावणी' बना है जिसका अर्थ सुन्दर रचना अथवा सौंदर्य-वर्णन प्रधान रचना हो सकता है। महाराष्ट्र की लावणियों में युवतियों के सौन्दर्य का वर्णन प्रधान रूप में पाये जाने से संभवतः यह व्युत्पत्ति दी गयी होगी। दूसरे मत के अनुसार लावणी शब्द की व्युत्पत्ति 'लू' इस संस्कृत धातु से बतायी जाती है, जिसका अर्थ है काटना। खेत में फसल काटते समय कृषक जो लोकगीत गाते हैं उन्हीं को 'लावणी' कहा गया है। हिंदी में खेत के फसल की कटाई को 'लौनी' कहते हैं। संभव है कि इसी 'लौनी' के समय गाये जाने वाले लोकगीत को 'लावनी' कहा गया हो। तीसरे मत के अनुसार 'लावनी' शब्द संस्कृत के 'लापनिका' शब्द से बना है। अनेक विद्वानों ने इसका समर्थन भी किया है। संस्कृत में लापनिका शब्द बोलना, बड़बड़ाना—इस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। परन्तु 'रचना' इस अर्थ में इसका प्रयोग नहीं मिलता। चौथे मतानुसार 'लावणी' यह शुद्ध मराठी काव्य-प्रकार है जो लावणे इस मराठी क्रिया के आधार पर बना है। लावणे, का अर्थ है किसी चीज को सुव्यवस्थित रूप में लगाना। अतः इसके अनुसार 'लावणी' का अर्थ होगा 'सुव्यवस्थित रचना'। हिंदी में भी 'लावना' क्रिया इसी अर्थ में प्रयुक्त की जाती है। लावणें अथवा लावना शब्द लावणी अथवा लावनी के अधिक समीप जान पड़ते हैं, और भी अनेक मत व्यक्त किये गये हैं परन्तु ये तर्कसम्मत प्रतीत नहीं होते।

अधिकांश मराठी आलोचकों ने 'लावणी' शब्द की व्युत्पत्ति का विचार करते समय यह धारणा कर रखी है कि 'लावणी' यह केवल महाराष्ट्र का विशेष छंद है। परन्तु वैसी वास्तविक स्थिति नहीं है। वस्तुतः लावनी लोक-काव्य की एक अत्यंत प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण शैली है। इसकी रचना लोकभाषाओं, हिंदी बोलियों और साहित्यिक भाषाओं में समान रूप से हुई। संगीत राग-कल्पद्रुम में लावनी को एक उपराग माना है। उसमें उल्लेख है कि 'लावणी जो गिया जगी अहंग सुहाना कोल्लिका।' लावनी या लावणी की परिगणना देशी राग के अन्तर्गत की गयी है। देशी राग को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'देशे-देशे भिन्न नाम तद्देशी गावमुच्यते।[1] तात्पर्य यह है कि विभिन्न देशों में जो भिन्न-भिन्न नाम ग्रहण करे, वह देशी राग है। देशी राग को ग्राम्य राग भी कहा जाता है। इस उपराग (लावणी) का संबंध लावणक देश से प्रगाढ़ रूप में था जो मगध के समीप था। डॉ० रामखेलावन पांडेय[2] के मतानुसार लावणी का नामकरण लखनऊ प्रदेश के आधार पर हुआ है। प्रसिद्ध गायक तानसेन ने जिन अनेक रागों या मिश्रित रागों को शास्त्रीयता प्रदान की उनमें 'लावनी' भी एक राग था। लोक-रागिनी के रूप में मान्य और स्वीकृत होने

1. राग कल्पद्रुम-1, पृ० 16
2. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 683।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ लोककवियों द्वारा यह प्रचुर रूप में समादरित हुई। लावनी के अनेक भेद हैं जैसे लावनी भूपाली, लावनी कलांगड़ा, लावनी रेखता आदि। सगनभाऊ, होना जी आदि मराठी शाहिरों की लावनियों में भी इन्हीं रागों के नाम मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मराठी के लावणी साहित्य का मूल प्राचीन है, और इसका प्रचलन न केवल महाराष्ट्र तक ही सीमित था बल्कि उत्तर भारत में भी इसका प्रचलन था।

उत्तर भारत में प्रचलित लावनी तथा महाराष्ट्र की 'लावणी' में एक महत्त्वपूर्ण साम्य और भी पाया जाता है। मराठी लावणीकारों में जिस प्रकार 'तुर्रा' और 'क़लंगी' ये दो पक्ष पाये जाते हैं, इसी प्रकार उत्तर भारत के हिन्दी लावनीकारों में भी इसी नाम के दो पक्ष पाये जाते हैं। इन दो संप्रदायों को दो थोक भी कहा गया है। 'तुर्रा' सम्प्रदाय के लोग शिव के उपासक होते हैं और 'कलंगी' सम्प्रदाय के लोग शक्ति के उपासक होते हैं। तुर्रा पक्ष के प्रवर्त्तक महात्मा तुकनगिरि और 'कलंगी' सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत शाह अली थे जो उत्तर प्रदेश के निवासी थे। तुकनगिरि वेदांत से प्रभावित थे और शाहअली सूफी दर्शन से प्रभावित थे। तुर्रा और कलंगी के नामकरण के संबंध में एक किम्वदन्ति है।[1] महात्मा तुकनगिरि और संत शाहअली दोनों मित्र थे। रमते-रमते एक दिन वे मराठा दरबार में जा पहुंचे। उदारचेता मराठों ने इनका बड़ा सम्मान किया। दोनों संतों ने अपनी-अपनी रचनाएं सुनायीं जिनसे प्रसन्न होकर मराठा दरबार के अधिष्ठाता ने तुकनगिरि को बहुमूल्य तुर्रा और शाहअली को कीमती कलंगी भेंट की। उभय संतों ने उन्हें स्वीकार कर चंग पर चढ़ा दिया। इस प्रकार तुर्रा और कलंगी संप्रदाय चल पड़े। हिन्दी तथा हिन्दी मराठी संतों की रचनाओं में भी लावनी की रचना पायी जाती है।

मराठी शाहीरी की लावनियों में और हिन्दी लावनियों में अनेक बातों में समता पायी जाने पर भी मराठी 'लावणी' में अपनी विशेषता है। ये लावनियां लोकाभिमुख तथा लोकरंजनार्थ रची गयी थीं। जनसमूह के सामने सुस्वर कंठ से लावनियां गायी जाती थीं। इनकी अधिकांश रचना आठ मात्राओं के पद्मावर्तनी वृत्त में पायी जाती है। कहीं-कहीं छः मात्राओं के मृगवर्तनी वृत्त में भी पायी जाती है। ये लावनियां तालगेय जाति वृन्तों में रहती थीं।[2] गायन के लिए कभी-कभी इनमें छंद-दोष भी स्वीकार किया गया है। मराठी शाहीरों की लवनियों में वैराग्य से लेकर श्रृंगार तक और प्रशस्ति से लेकर गूढ़ार्थ तक अनेक विषयों का वर्णन

1. सप्तसिंधु, जून 1963, पृ० 12 (डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित का लावनी साहित्य' नामक लेख)
2. मल्हाठी लावनी, मधुकर वासुदेव धौंड़, पृ० 14

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। इनमें संयोग तथा विप्रलंभ श्रृंगार के वर्णन उत्तम रीति से मिलते हैं। मराठी लावनियों में महाराष्ट्र के तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक जीवन के दर्शन हो सकते हैं। यद्यपि लावनी लोककाव्य के अधिकांश रचयिता बहुजन समाज के थे फिर भी रामजोशी, अनंत फंदी, प्रभाकर जैसे ब्राह्मण भी उनमें थे जिन्होंने लोकाभिमुख होकर जनसाधरण की भाषा में उन्हीं के लिए रचनाएं कीं। उनके लावनियों में ग्रामीण जनता का स्वप्नरंजन भी दृष्टिगोचर होता है। अन्य प्रान्तों की तुलना में लावणी का उत्कर्ष महाराष्ट्र में ही विशेष दिखायी देता है। मराठी साहित्य में शाहीरी साहित्य को महाराष्ट्र का 'वास्तविक साहित्य कहा जाता है। मराठी शाहीरों की हिंदी रचनाओं में अधिकांश लावनियां ही प्राप्त होती हैं, पोवाडों की संख्या न्यूनतम है।

इन लावनियों में शुद्ध हिन्दी के रूप में भी कई लावनियां हैं। कुछ लावनियां हिन्दी मराठी मिश्रित हैं तो कुछ लावनियां संस्कृत, कन्नड़, मराठी हिन्दी मिश्रित भी हैं। प्रभाकर की कृष्ण लीला विषयक लावनी देखिए—

'प्यारी देखन चली कुंज बिहारी ।।ध्रु०।।
जमुना के तीर वै मिल रंग खेले।
सब गोकुल के लड़के बाले।
हिल मिल खेलत बनसीवाले।
खड़े बीच कान्हा गोपी घेर लेके।।
लूट लिये सबकूं घूमकर लेके।
छीन-छीन चुनरियां छुपे दूर जाके।
कहूं क्या उनकी गम्मत न्यारी ।।1।।

अनंत फंदी की एक श्रृंगारिक लावनी का कुछ अंश देखिए—

'छतियन पर दो जोबन थोर[1] रह गए जैसे अभर।
भिर भिर नयन झुकावत चाल चलत गोरी गज भार।
गल मोतन के हार छोभा छिम बिचवन के झनकार।
रुमझुम पाऊल[2] बजावत नयनों की लग रही मार।
करंजफूल कानों में चमकत माया ऊपर शाल जरी।
नयनों में कजरा डाल दिया पनघट पर था सिर पर गगरी ।।

महाराष्ट्र के लोक-कवियों में अनंत फंदी का अपना विशेष स्थान है। मराठी साहित्य में तो इनका नाम सम्मान के साथ लिया जाता ही है परन्तु इनकी परिगणना हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी होनी आवश्यक है।

---

1. थोर—बड़ा (मराठी शब्द)
2. पाऊल—पैर (मराठी शब्द)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश में ख्याल-गायकी

□ रामनारायण अग्रवाल

उत्तर प्रदेश में लावनी-गायकी का प्रचार सर्वाधिक हुआ और संभवतः यहीं उसकी गायकी का नाम 'ख्याल' जिसे उर्दू वाले 'ख्याल' कहने लगे, पड़ा। उत्तर प्रदेश में इस गायकी का प्रचार तुकनगिरि के शिष्य रिसालगिरि ने किया था और उन्हें इस कार्य में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी। उत्तर-प्रदेश में ख्याल गायकी के दो बड़े महत्त्वपूर्ण दुर्ग स्थापित हुए और यहां से यह परंपरा पूरे प्रदेश में फैल गई।

आगरा का तुर्रा अखाड़ा--रिसालगिरि 18वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में आगरा आए थे और यहां ताजगंज में उनका भारी स्वागत हुआ था। यहां उन्होंने तुर्रा अखाड़े की स्थापना की और अनेक शिष्य बनाए जिनमें हरिदयाल सिंह और गुरुदयाल सिंह प्रमुख थे। रिसालगिरि द्वारा आगरा के कचहरी घाट पर तुर्रा का पहला अखाड़ा स्थापित किया गया और उस्तादी की पगड़ी हरिदयाल सिंह के माथे पर बांधी गई। इसी अखाड़े के द्वारा आगरा में व्यापक रूप से लावनी का प्रचार हुआ और उसकी शाखा-प्रशाखाएं अनेक स्थानों पर खुलीं। इस अखाड़े की प्रमुख शिष्य-परंपरा निम्नलिखित है—

तुर्रा अखाड़ा-हरिदयाल सिंह
|
ख्याली मिस्सर
|
लाला लाल | पन्ना लाल | धर्म सिंह

पन्ना लाल
|
मौलवी आशिम हुसेन, गुरुदीन (लखीमपुर निवासी) व अन्य अनेक लाला शंकर लाल,

धर्म सिंह
|
पंडित रूपकिशोर

गुरुदयाल सिंह
|
हलधर महंत
|
चन्दो पंडित
|
बल्लतसिंह, उत्तम, चन्द, हीरा आदि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारायण प्रसाद (जबलपुर) ओंकारप्रसाद अजमेरी,
राजा राजेन्द्रसिंह, द्वारका प्रसाद खत्री आदि।
श्री हरिवंश लाल शर्मा (आदि)

उक्त महानुभावों के साथ-साथ सर्वश्री नन्नू प्रतापसिंह, श्यामा, भवानी, शाहवली, अयोध्या नाथ (शाहजहांपुर) आदि अनेक प्रसिद्ध गायक थे। झांसी के छोटे मियां और बाबा घमंडगिरि का भी आगरा के तुर्रा अखाड़े से संबंध था। पन्नालाल जी के शिष्य ओंकार प्रसाद अजमेरी का एक ख्याल-संग्रह 'ख्याल बेमिसाल' जनवरी 1925 में अजमेर के महावीर छापाखाने से छपा था जिसकी कीमत आठ आना थी। यह ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।

आगरा के कलंगी अखाड़े—तुर्रा के साथ आगरा में कलंगी-पक्ष के भी बड़े प्रभावशाली अखाड़े स्थापित हुए। इनमें उस्ताद महमूद बक्श लश्करी का टकसाली अखाड़ा बहुत प्रसिद्ध था। टकसाली अखाड़े की विशेषता यह है कि उसमें केवल अपने अखाड़े की रचना गायी जाती है। वैसे नियम यह है कि तुर्रा अखाड़े में किसी भी तुर्रा अखाड़े की या कलंगी अखाड़े में किसी कलंगी अखाड़े की रचना दंगल में गायी जा सकती है, चाहे वह कहीं की भी हो। खैराती खां, मलखानसिंह (उर्फ छीतर) इस अखाड़े के प्रमुख व प्रसिद्ध गायक हो गए हैं। कलंगी के अन्य अखाड़ों आगरा के इलाही वक्श का अखाड़ा, मूलचंद कलंगी वाले, मिर्जा संतोख आदि बड़े प्रसिद्ध रहे हैं।

आगरा के इन कलंगी गायकों के साथ-साथ मेरठ के अल्लादिया, बेलोन (जिला बुलन्दशहर) के बद्रीप्रसाद, बदायूं के कालीचरण, लखनऊ के मैकूलाल व हाफिज इस युग के बड़े प्रसिद्ध गायक थे। दंगलों में इन सभी की परस्पर झड़प होती रहती है। अलीगढ़ में मेंडूमियां और मुरादाबाद के राजकुमार का भी कलंगी गायकों में बड़ा नाम था।

इन उस्तादों ने, जिनके नाम ऊपर दिए हैं, ख्याल-गायकी का दूर-दूर तक प्रचार किया। उत्तर प्रदेश में ख्याल-गायकी के सामूहिक प्रचार-प्रसार में आगरा के उस्तादोंने पश्चिमी उत्तरप्रदेश, दिल्ली तथा पंजाब में तथा कानपुर के कलाकारों ने पूर्वी क्षेत्र में लावनी की लोकप्रियता खूब बढ़ायी। पंडित पन्नालाल का युग लावनी का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। इस युग में लावनी का दूर-दूर तक प्रचार हुआ। पन्नालाल जी व रूपकिशोर के शिष्य दूर-दूर तक फैल गए थे और उन्होंने अपने-अपने नगरों में अखाड़े स्थापित किए। पं० रूपकिशोर ने ब्रजभाषा के माध्यम से शृंगार रस तथा नायिका के नखशिख के जो भव्य चित्र उकेरे हैं, वे अपने दंगल के अद्वितीय हैं। पं० पन्नालाल हिन्दी, उर्दू और फारसी के पंडित थे। उनका प्रभाव बड़ा व्यापक था। जबलपुर के राजा राजेन्द्रसिंह, चिटोरा आदि छत्तीसगढ़ के नवाब कमलशाह भी इनके शिष्यों में थे। लालालाल बड़े होने के कारण आगरा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अखाड़े के उस्ताद थे। परन्तु उनके पूरे अधिकार पं० पन्नालाल जी द्वारा ही प्रभावी होते थे। वह भी आगरा के प्रसिद्ध लेखक व ख्याल-गायक थे।

गुरु गैंवीनाथ भी आगरा के ही थे, जिन्होंने अनगढ़ ख्यालों की परंपरा चलायी। वे आगरा के आलमगंज में रहते थे और वहीं उनकी समाधि है। आगरा में ही उस्ताद लेखराज ने 'सेहरा' अखाड़ा बनाया। इनके भाई शेदासिंह भगत अखाड़े के उस्ताद थे। आगरा ख्याल-गायकी का पुराना गढ़ है। नजीर अकबरवादी जैसे शायर आगरा के इस ख्याल-गायक की ही देन थे।

टुण्डा अखाड़ा—इस अखाड़े के उस्तादों में नब्जूखां व ज्वालाप्रसाद प्रसिद्ध थे।

कानपुर की ख्याल परंपरा—ख्याल-गायकी का दूसरा गढ़ कानपुर था। जिनमें रिसालगिरि के शिष्य मदारीलाल, बादल, आसारामा, उस्ताद बदरुद्दीन, भैरोंसिह जैसे गायक सर्वत्र प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार कलंगी-पक्ष में उस्ताद श्यामासिंह, लाला शिवप्रसाद, मौलवी अफसर आदि अनेक नाम लिये जा सकते हैं। स्वामी नारायणनंद[1] सरस्वती ने, जो स्वयं कानपुर के ही ख्याल-गायक थे, कानपुर के इन लावनी-गायकों की प्रतिभा को उजागर करने के लिए 'लावनी साहित्य का इतिहास' नामक एक पुस्तक लिखी थी जो सन 1953 में ज्ञानमंदिर, कानपुर से छपी थी। कानपुर के ख्याल-गायक वंदी खलीफा ने कानपुर में नौटंकी परम्परा की नींव रखने में भी प्रमुख भूमिका संपादित की थी।

अन्य अखाड़े—उत्तर-प्रदेश में ख्याल-गायकी के अनगिनत अखाड़े हैं तथा अनेक नगर ख्याल-गायकी के गढ़ हैं। हाथरस भी लावनी का एक प्रसिद्ध गढ़ रहा है। उस्ताद वासुदेव बासम यहां के अग्रणी लावनी-लेखक व गायक थे। वह डिप्टी इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स थे। उनके शिष्य राय मुरलीधर ख्याल-गायक के साथ-साथ स्वांग विधा के भी प्रणेताओं में से थे। इन्हीं के शिष्य रामचरण माहेश्वरी भी बड़े कुशल लेखक तथा पिंगल शास्त्र के पंडित थे। उन्होंने कई नये छंदों की भी रचना की और उनके नामकरण करने की चेष्टा की थी।

पूर्वी उत्तर-प्रदेश में बस्ती, गोंडा, बनारस, इलाहाबाद तथा बुंदेलखंड में झांसी आदि स्थल लावनी-गायन के गढ़ रहे हैं। वाराणसी के परमहंस काशीगिरि बनारसी के ख्यालों की अपने समय में सर्वत्र ख्याति थी, यद्यपि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। बल्लासिंह, नत्थासिंह, सुखलाल, चुन्नीगुरु गौहर आदि ऐसे अनेक नाम हैं, जिनकी सर्वत्र प्रसिद्धि थी।

गली रवालिया, मथुरा (उ० प्र०)

---

1. स्वामी नारायणानन्द का जन्म पीलीभीत (उ० प्र०) में हुआ था— कानपुर अधिक दिनों रहने तथा कानपुर के प्रति अधिक लगाव होने के कारण कानपुर के ही समझे जाने लगे—सं०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान के ख्याल

☐ डॉ० महेन्द्र भानावत

लोक-नाट्यों की गंगोत्री लोकजीवन की उन धड़कनों में है जो न केवल लोक-नाट्यों को एक मजमे के रूप में देखती हैं अपितु उसके पोषण में हाथ बंटाती हैं, उन्हें प्रोत्साहित करती हैं, उनके प्रदर्शन का आयोजन करती हैं, मन-भावन मंच तैयार करती हैं और उनसे रंग प्राप्त करने के लिए सामान्य दर्शक रहते हुए भी प्रदर्शक का वह समस्त रंग उड़ेलती हैं जिसके ऊपर नाटक की यशश्री तोरण पाती हैं। लोक-नाट्य पूरी की पूरी एक खेती है। किसान अपनी पुष्ट फसल की उम्मीदों में खेत निराई से कोठाभराई तक जितना आनंदश्रम साधता है, उतना ही सुखश्रम किसी लोक-नाट्य की फसल के लिए दर्शक किसान को करना पड़ता है। लोक-नाट्य इसीलिए आंचलिक होते हैं। उनकी नब्ज को पकड़ने-पहचानने वाले बाहर कैसे मिलेंगे? मारवाड़ में बाजरी और मेवाड़ में मकई का अपना एक भौगोलिक परिवेश है। बाजरी के कण-कण में रेत का कण-कण समाया हुआ है। उसके स्वाद, गुण और पौष्टिक तत्त्वों का अपना अंचलीय उर्स है। इसीलिए मारवाड़ वाले मकई के साथ उतना नहीं रच-पच सकते जितना बाजरी के साथ। ठीक यही स्थिति मेवाड़ वालों के साथ भी है।

ख्यालों की विविध विधाएं

अकेले राजस्थान में ही लोक-नाट्यो की बीस-पच्चीस विधा-रंगतें हैं। इनमें गायकी, नृत्य अदायगी, रंगमंचीय सज्जा तथा प्रस्तुतीकरणपरक छोटे-मोटे भेद-प्रभेद हैं, परन्तु क्षेत्रीय जनता अपने रस के मनोनुकूल ही अपना प्रदर्शन पसंद करती है। यदि ऐसा नहीं होता तो इतनी विधाओं को पनपाने, प्रश्रय देने की आवश्यकता ही क्यों महसूस होती? यहां के मैंने लगभग सभी विधा-रंगतों के ख्याल देखे हैं और प्रस्तुतकर्त्ताओं के निकट संपर्क में भी आया हूं। वे अपनी मंडलियों को राजस्थान के बाहर भी बहुत दूर बैंगलोर, मद्रास, कलकत्ता तक ले जाते हैं। उन्हें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन भी बहुत प्राप्त होता है मगर फिर भी वे यही कहते सुने गए कि ख्याल करने का जो मजा उन्हें अपने क्षेत्र में अपने लोगों के बीच आता है वैसा वहां नहीं आ पाता।

बहुत दूर क्यों जाएं, भारतीय लोक-कला मंडल के रंग-प्रांगण में हम प्रति वर्ष लोक-नाट्य समारोह आयोजित करते हैं। उनमें राजस्थान के चुने हुए ख्याति प्राप्त दलों को नाट्य प्रदर्शन के लिए आमंत्रित किया जाता है परन्तु यहां आकर जब वे अपना प्रदर्शन देते हैं तो उसमें आधा रंग भी नहीं रह जाता है। जो दल और जो कलाकार अपने क्षेत्र में बड़े नामी होते हैं, उन्हें यहां आकर निराश होते हुए भी देखा गया है। कारण कि उन्हें यहां अपने वैसे दर्शक नहीं मिलते जिनसे वे प्रदर्शन के समय बातचीत कर सकें, चुटकियां ले सकें, दो-दो सुन सकें, सुना सकें। उनके अच्छे प्रदर्शन पर नोटों की माला और भेंट-भेंटावण तथा निछरावल से उनकी झोली भर सकें और यदि कहीं प्रदर्शन में कोई खामी देखी तो उसी वक्त बीच जनता से ही उन्हें हिदायतें देकर उनकी कमियों को रफादफा करा सकें।

ये कलाकार जिस गांव में जाते, महीने-महीने भर तक उन्हें गांव वाले अपने यहां से हिलने नहीं देते। सारा का सारा गांव इन्हें अपना मेहमान मानता है। प्रातः खेल समाप्त होने के पश्चात इन कलाकारों को अपनी उसी वेशभूषा में गाजे-बाजे के साथ मंदिर ले जाया जाता है। किसी सार्वजनिक पंचायती स्थान में उन्हें गोठ-घूघरी दी जाती और सभी के सिर पर सम्मानसूचक बाला-बन्दूएं बांधे जाते। कलाकारों को भी अपनी कला में निखार लाने के लिए पूर्णतः परिश्रम करना पड़ता। गुरु-उस्ताद दो-दो महीने, चार-चार महीने तक उन्हें अभ्यास कराते। मीठी और बुलन्द आवाज के लिए उन्हें मटकियों में मुंह डालकर बड़े कठिन परिश्रम से रियाज करना पड़ता।

कलाकारों के लिए अच्छी-अच्छी पोशाकें तथा भारी-भरकम आभूषण जुटाने एवं आलीशान रंगमंच बनाने के लिए गांव की सारी जनता उमड़ पड़ती। बांस-बल्लियों से मंडप बनाया जाता और उसे कौर-किनारियों तथा रंग-बिरंगे कागज कपड़ों से सजाया जाता। रानी पात्र के लिए वेश कीमती और सौ-सौ डेढ़-डेढ़ सौ तोले तक के सोने-चांदी के जेवर जुटाये जाते। महीने-महीने भर तक लोग-बाग अपने गृहकार्य भूल जाते और इसी तैयारी में लगे रहते। दूर-दूर से जनता उमड़ पड़ती। मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैं दस-बारह वर्ष का था, अपने गांव के कई लोगों के साथ आठ-आठ, दस-दस मील दूर इन ख्यालों को देखने गया हूं और वे ख्याल एवं खिलाड़ी कम-ज्यादा रूप में आज भी मेरी स्मृति-पटल कर रंगे-बसे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शक मात्र दर्शक ही नहीं

जो ख्याल पुस्तकें बाजारों और फुटपाथों पर हमें देखने को मिलती हैं, खिलाड़ियों के खेलने के लिए वे ही सब कुछ नहीं होतीं। वे तो केवल आधार मात्र होती हैं। मुख्य तत्त्व होता है उनका संगीत, नाच, लय, ताल और मुरकी ठेके। खिलाड़ियों की तो बात छोड़ दीजिये, दर्शकों तक को ये ख्याल पूरे कंठस्थ होते हैं। एक भी कड़ावा कोई खिलाड़ी चूक जाए कि तत्काल ही दर्शकों से आवाज उठने लग जाएगी और कलाकार को भूली हुई कड़ी दुहरानी पड़ेगी। दर्शक समाज रंगमंच की किसी भी खोट को कतई पसंद नहीं करता। इसलिए पोसे खिलाड़ियों को कभी भी मंच स्वीकार नहीं करता। जनता एक क्षण के लिए भी उसे बर्दाशत नहीं करेगी और यदि पात्रों का अभाव महसूस भी होने लगेगा तो दर्शकों में से ही कोई जवांमर्द मंच पर आ डटेगा। इससे यह भली प्रकार जाना जा सकता है कि ख्याल प्रदर्शनों में दर्शक प्रदर्शक और प्रदर्शक दर्शक की कब कितनी कैसी भूमिकाएं निर्मित होती रहती हैं। यही नहीं, एक ही लेखक का लिखा ख्याल अलग-अलग शैलियों के दल प्रस्तुत करते हैं परन्तु उनके प्रस्तुतीकरण के रंग-ढंग सदैव ही जुदा-जुदा होंगे। उनके वाद्यों में भिन्नता होगी। टेरियों की टेरों में विभिन्नता होगी। नृत्य संगीत में जुदाई होगी और खेल का रंग-आनन्द भी लोगों को जुदा-जुदा मजा और अनुभूति देगा।

प्रहसनों की मनोरंजकता

इन ख्यालों के बीच-बीच में छोटे-छोटे गीत-प्रहसन के रूप में जो संवादमूलक हंसगुल्ले प्रदर्शित किए जाते हैं वे दर्शकों में नया रंग और ताजगी भर देते हैं। ये प्रहसन खिलाड़ियों की प्रत्युत्पन्न मति से ओतप्रोत दर्शकों के रंग-ढंग और समसामयिक परिस्थिति से अधिक प्रभावित होते हैं। प्रहसन करने का कोई समय नहीं होता। दर्शकों के मनोभावों को भांपते हुए चलते खेल को विराम देकर प्रहसन प्रारंभ कर दिया जाता है। इसके लिए किसी प्रकार की कोई विशेष तैयारी नहीं करनी पड़ती। न कोई पर्दा उठता है, न कोई पर्दा गिरता है। मंच पर जो पात्र अपना नाट्य प्रस्तुत कर रहे होते हैं, वे उसे वहीं समाप्त कर प्रहसन प्रारंभ कर देते हैं। इससे मूल नाटक को कोई हानि-व्यवधान नहीं पहुंचता। अब तक जो राजा बना हुआ था वो अब एक साधारण छैला के रूप में दिखाई देने लग जाता है और रानी पात्र छैली बनकर दर्शकों में हंसी-मजाक की बत्तीसी बिखेर देती है। इन प्रहसनों में चंद खिलौना से लेकर चन्द्रलोक का वह सभी कुछ होता है जो पारम्परिक और आधुनिक को समान रूप से मनोरंजित करता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें चार छोर्यें बाबाजी के पास जागरण कराने के लिए आती हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोर्यें : बाबाजी-बाबाजी, राम-राम !

बाबाजी : (धीरे से उनकी तरफ देखकर) ट्यूबलाइटां ज्यूं थें कुण आई हो ? थाने देखतांई म्हारो मन अजक-बजक करवा लाग जावे ।

पेली छोरी : बाबाजी म्है थांस्यूं करावाने आई हां ।

बाबाजी : मास्यूं करावाने आई हो ?

दूजी छोरी : हां, थांस्यूं करावाने आई हां ।

बाबाजी : थे कुण हो ए···?

तीजी छोरी : म्हैं थांरी सातई पींडी हां ।

बाबाजी : तो जावो, दूजा कनांऊं करा आवो ।

चौथी छोरी : (उसे झल्लाती हुई) नहीं, म्हैं तो थांस्यूं ही करास्यां । थां घणी चोखी करो हो ।

पेली छोरी : म्हैं पेलांई थां कोडूं करायो हो । थांरो म्हांने बिसवास है । (यह सुनकर पास बैठी औरतें जोर-जोर से हंसने लगती हैं, तब दूजी छोरी उनसे कह उठती है ।)

दूजी छोरी : थे क्यूं हंसो ए वायां ! म्हें कांई रोष्ठां थोड़े ई कररी हां । थें थांणे घरे जाय कोनी करावो ? ये ऐंडी-बेंडी वाता क्यूं समझ्यो । म्हैं तो अठे जागरण करावा आई हां, बाबाजी कन्ने सूं ।

तीजी छोरी : बाबाजी, पैल म्हूं करास्यूं ।

दूजी छोरी : नहीं बाबाजी, पैल म्हारे करणो पड़ी ।

पेली और चौथी छोरी : पैल म्हें करास्यां बाबाजी ! थांने म्हांणी सोगन है । पैल म्हांणे करणो पड़ती ।

बाबाजी : थें सब आपस में क्यूं लड़ो ए रांडां । म्हूं सबरेई एक साथ कर देस्यूं ।
(इस पर सब लोग खूब जोर-जोर से हंस पड़ते हैं ।)

बाबाजी : सेंग रात करावोगा के खाली आधी रात ?

पेली अर तीजी छोरी : बाबाजी, म्हें तो सेंग रात करावांला ।

दूजी अर चौथी छोरी : बाबाजी, म्हें तो आधी रात करावांला ।

बाबाजी : क्यूं वायां लारली पूनम ने थांरे कर्‌यो जो थांने काई दुःख दियो ।

पेली अर तीजी छोरी : बाबाजी, म्हांणे तो थां घणो चोखो कर्‌यो ।

बाबाजी : तो लगावो अगरबत्ती ने धूप, चौक में ई कर देस्यूं ।

दूजी छोरी : बाबाजी, चौक में सावल कोनी लागे, म्हें तो ओवरा मांयने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई करास्यां।

बाबाजी : मांयने गरमी घणी पड़े ओ रांडां ! म्हूं पसीनो-पसीनो हो जाऊं।

तीजी छोरी : तो थां केवो जठे ई करा लेस्यां। झटापट करजो रांडकां। घणी देर न लगाइजो।

बाबाजी : तो थें थांणी रागणी मलावो म्हें म्हारो सुर काडूं।

बाबाजी दोहा प्रारंभ करता है—

सदा मनाऊं केतली, सनमुख रहत पलेट।
तीन देव रच्छा करे पान बीड़ी सिगरेट।

एक छोरी : बाबाजी थांणो सुर कोनी मल्यो। ऊंचो घणो पड़ै।

बाबाजी : ढब-ढब बेटी की बाप, आगती मती वे। सुर तो सुर है, मलती ई मली सेवट में। तो सुण।

छोर्‌यां : हां, सुणावो।

बाबाजी : तू है छोरी बी० ए० पास तो मैं हूं छेलो तीये।
बी० ए० में तीए करघूं थूं भांग धतूरा पीये।

छोर्‌यां : आगो बालरे नाड़काट्या। ये सगला लोग सुणलेई तो थांने कांई केवेला मालजाद्यां···

इस तरह दर्शकों की अभिरुचि के अनुरूप वार्ता-प्रहसन चलता रहता है और पुनः मूल नाटक को जहां छोड़ा था वहां से प्रारंभ कर दिया जाता है। जनता भी पुनः इस नाटक को अपने उसी रूप में ढाल लेती है।

यह तो नाटक के अवान्तर प्रसंग की बात हुई परन्तु चलते नाटक में भी संवादों के साथ ऐसे प्रहसन-टुकड़े जोड़ने में ये लोग कमाल हासिल करते हैं। उदाहरण के लिए नौटंकी के खेल में नौटंकी-मालिन का यह संवाद द्रष्टव्य है—

नौटंकी : यदि तू अपने भतीजे की बहू को, जिसने मेरे लिए इतना सुन्दर हार गूंथा है, जल्दी ही मेरे पास नहीं लायी तो मैं तेरा तेल निकलवा दूंगी।

मालिन : म्हारो तेल ?

नौटंकी : हां, तुम्हारा तेल।

मालिन : वो किसो व्है ?

नौटंकी : वो गुलल-गूलल होता है।

मालिन : बींने कुण खासी ?

नौटंकी : खाने वालों की क्या कमी है, (दर्शकों की ओर इशारा कर) ये जितने भी लोग, यहां बैठे हुए हैं, सब उसी को खाने के लिए तो आये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बीच बाजा वाला बोल उठता है—अरे इसे तो हम खायेंगे। हमारे रहते दूसरा कैसे खा सकता है। चल, इधर आ मालिन की बच्ची!

फिर मूल नाटक प्रारंभ कर दिया जाता है। सभी लोग हंस पड़ते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक की सफलता के भागीदार केवल वे कलाकार ही नहीं हैं जो मंच पर दिखाई देते हैं अपितु वे समस्त दर्शक, बजैये, गवैये आदि भी हैं और इन सभी के सम्मेलन से ही लोकनाट्य का सफल प्रदर्शन संभव होता है।

भेंट-भेटावण निछरावल

यह भी देखा जाता है कि कभी-कभी बिना नाट्य प्रदर्शन और प्रहसन के भी कलाकार दर्शकों को अपनी ओर खींचे रहते हैं। यह स्थिति निछरावल की होती है जब दर्शक समुदाय में से लोग नाटक के रंग से रंगपंग होकर भेंट-भेंटावण देना प्रारंभ कर देते हैं। जो भी व्यक्ति भेंट स्वरूप पैसा निकालता है उसकी नाटकीय रूप में ही अभिनय-गावणी एवं नृत्य-अदायगी में सरे आम घोषणा की जाती है। यथा—

(अ) पीरूदानजी ने दिया रूपया रोकड़ यह रंगदार।
पीरबाबा यांने छोरा दिजो नम्मे मीनै चार।।

(ब) आज रचाई मेंहदी मैंने खूब कियो सिणगार।
शोभालाल जी दीनो रुपयो देस्यूं भर-भर प्यार।।

(स) जीवन झोला खाय सहेल्यां सेजां करो तयार।
पांच रुपया सरपंच दीना होस्यां गंगा पार।।

(द) थाणेदार साब ने दिया रुपया बार-बार बलि जाऊं।
थे तो म्हांणे सायब थांसूं बात्यां करवा आऊं।।

हर भेंट के साथ नया-नया दोहा, तुक, फिटाकड़ा आदि जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार इस निछरावल-नाट्य का भी ऐसा समा बंध जाता है कि यह भी नाटक का ही एक अंश बन जाता है। यह भेंट-भेंटावण इतनी अधिक प्राप्त होती है कि कभी-कभी दर्शक भी इसके सामने फीका लगने लगता है।

रानी पात्र की प्रमुखता

इन ख्यालों में नायिकाओं की भूमिका प्रमुख रहती है। इसलिए खेल का सारा दारोमदार रानी पात्र पर ही केन्द्रित रहता है। ख्याल मंडलियों के संचालक भी प्रायः वे ही होते हैं जो रानी की मुख्य भूमिका में निष्णात होते हैं। चिड़ावा के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० नानूराणा, कुचामण के स्व० लच्छीराम तथा डेंडा के स्व० पूनमचन्द सिखवाल ने न केवल रानी पात्रों की प्रमुख भूमिका के रूप में ख्याति पायी अपितु ख्याल मंडलियों के सफल संचालन के साथ-साथ ख्याल पुस्तकों की रचना कर इस क्षेत्र को साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धरातल प्रदान करने में भी अनिर्वचनीय योग दिया। वर्तमान में मेड़ता के श्री उगमराज तथा डाबला के कानाराम ने इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्धि अर्जित की है।

मेलों-ठेलों में ये ख्याल मंडलियां अकसर एकत्र होती हैं और अपने प्रदर्शनों द्वारा मेला-दर्शकों का खासा मनोरंजन करती हैं। पुष्कर मेले में मैंने चार-पांच ख्याल मंडलियां देखीं। बारी-बारी से उनके प्रदर्शन भी देखे। कलाकारों से भी मिला। मैंने एक ही बात पायी कि अब ख्यालों की यदि कोई जीवनी-शक्ति है तो मुख्यत: वे ही रसिया लोग हैं जो रंगमंच पर चढ़कर ख्याल बनते हैं। मसलन समस्त खिलाड़ी यानी नचैये-गवैये से लेकर टेरिये और बजैये सभी अपने-अपने हुनर के उस्ताद होने चाहिए। मेले के मुख्य स्थलों से काफी दूर भी जो समूचे उमड़ पड़ता, वह निराला ही था। उसी मेले में तीन-तीन सर्कस के तीन-तीन शो। पर बिना किसी इश्तहार-विज्ञापन के लोग उगमराज के खेल के लिए मचल पड़ते। खेल कौन-सा होगा, इसकी उन्हें कोई चिंता नहीं थी। वे तो गेट वाले से सबसे पहला सवाल ही यह करते 'उगमा रो दल ओई है?' 'उगमो है के नीं?' जब उन्हें पूरा विश्वास हो जाता कि यही उगमराज का दल है और उगमराज भी यही है तो फिर लोग आंख मींचकर प्रवेश पा जाते, क्या कारण था कि अन्य दल वही खेल प्रस्तुत करते हुए भी पांच-पचास, सौ-दो सौ आदमी भी बड़ी मुश्किल से घेर-घेरकर बुला-बुलाकर एकत्र कर पाते थे।

उगमराज के ख्याल

मेला मेड़तारोड़ का हो चाहे नागौर का, पुष्कर का हो चाहे परबतसर का, उगमराज का दल अवश्य पहुंचता है। उगमराज का दल यदि कभी इन मेलों में नहीं पहुंचता है तो मेले की रौनक और रंगीनी ही जाती रहती है। उगमराज लच्छीराम कृत कुचामण शैली के ठेठ पारम्परिक ख्याल पेश करते हैं परन्तु वे उसमें बहुत कुछ नये जमाने की नयी रंगत का मसाला भी मिला देते हैं। उनका कहना है कि देखनेवालों की चाव को यदि हमने नहीं पकड़ा तो फिर हमें कोई पूछने वाला नहीं है। सिनेमा उनकी चुनौती का सबसे जबर्दस्त साधन; मगर उगमराज के दल ने सिनेमा शहरों में कई जगह अपने प्रदर्शन देकर यह भी बता दिया कि सिनेमा के मुकाबले में भी लोकनाट्यों में कोई ऐसी जीवनी है जो संपूर्ण सिनेमागृह को खाली रखकर भी सारी भीड़ अपनी ओर खींच सकती है। न केवल तीन घंटे के लिए बल्कि छह-छह, आठ-आठ घंटे तक के लिए। उनके ख्यालों में गोपीचन्द,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदेव कंकाली, सती सावित्री, नौटंकी, हरिश्चन्द्र, अमरसिंह राठौड़ आदि ख्याल आज भी लोकजीवन में उसी रूप में समादृत हैं जैसे आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व थे।

परिस्थिति का प्रभाव

परिस्थिति का, जमाने के बदलाव का फर्क अवश्य आया है इन ख्यालों-खिलाड़ियों में भी। अब रात-रात भर खेल नहीं होते। मशालें नहीं जलतीं। बना-बनाया मंच तैयार मिल जाता है। इसलिए पहलेवाला जनसहयोग जाता रहा। नाई अब मशालची नहीं रहा। वह सूटेड-बूटेड हो गया और हेयर कटिंग सैलून की दुकान में पंखे की हवा के नीचे पुरानी हजामत नहीं करके नया केश-विन्यास करता है। वह अब अपनी पेटी लेकर बाबुओं के घरों में नहीं जाता। बाबू लोग अब उसके केश कर्तनालय में जाते हैं। गांव का गणेस्या अब नाई नहीं रहा, क्षौर कलाकार बन गया है तो खिलाड़ी भी वैसे नहीं रहे। वह संयम और सात्विकता कहां? न गले में वो रस रहा न शरीर में वो लोच। अब सात्विकों के लिए शराब जरूरी हो गया है जैसे, और बाबुओं के लिए बीड़ी।

लोकनाट्य दल प्रायः वे समाप्त हो रहे हैं जो अपने को नया मोड़ नहीं दे पा रहे हैं। पारम्परिक नाट्यों में नये के लिए काफी गुंजाइश है। यदि हम सब कुछ परम्परा को ही लेकर पीटते रहे तो एक समय ऐसा भी आ सकता है जब हमारे पास पीटने के लिए भी कुछ नहीं रह जाएगा और जाजम पर एक कीड़ी तक कणकाई हुई नहीं मिलेगी।

नये प्रयोग

श्री उगमराज ने अपनी ही परम्परा में रहकर कुछ नये मंचीय प्रयोग किए हैं। ये प्रयोग हैं—महाराणा प्रताप और पृथ्वीराज चौहान के नाटक प्रदर्शनों के। जगन्नाथ राव द्वारा लिखे इन ख्यालों के तीन-चार प्रदर्शन उगमराज ने दिए हैं। प्रताप का ख्याल तो मैंने भी पुष्कर में देखा। राव जगन्नाथ से भी मिलना हुआ। हमें निराशा इसलिए है कि हम गांवों के इन मनोरंजनों को शहर के लिए थोपना चाहते हैं। शहर के बंगलों से गांव की मेड़ी की समता करने की भूल आखिर हम क्यों? किसलिए? किसके लिए? करते हैं। यदि यह करना ही है तो इसके लिए नयी भूमि और नये प्रयोग करने होंगे। बया के बच्चे बया के घोंसले में ही पैदा होंगे! आप चाहें कि आपकी श्रीमतीजी के जूड़े में हो जाएं, तो यह कैसे संभव होगा?

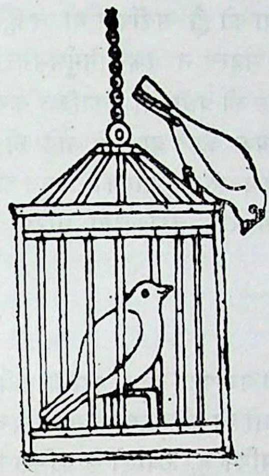
—352, श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर (राज०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्याल-परम्परा और तुर्राकलंगी ख्याल

□ डॉ० महेन्द्र भानावत



राजस्थान में लोकनाट्य-ख्याल अपनी विविध शैलियों और रंग अवधारणाओं से समृद्ध है, यहां यह ख्याल विधा अपनी आंचलिक हैसियत और रंग दर्शन तथा अंतर गठन की विशिष्ट उपलब्धि है। इन ख्यालों में तुर्राकलंगी ख्याल सबसे वारे-न्यारे हैं। यहां पढ़िये राजस्थान की ख्याल-परम्परा में इन ख्यालों का उठाव और इनका वैचित्र्य।

राजस्थान लोकमंच-ख्यालों का गढ़ कहा जाता है। यहां ख्यालों की जितनी विधाएं प्रचलित रही हैं, उतनी देश के किसी अन्य प्रान्त या अंचल में देखने को नहीं मिलेंगी। ख्यालों की ये विधाएं संगीत-गायकी, नृत्य-अदायगी तथा नाट्य-प्रस्तुति की दृष्टि से अपनी निराली विशेषताएं और अनुपम वैशिष्ट्य रखती हैं। इन ख्यालों में 'तुर्राकलंगी-ख्याल' मंच तथा मण्डप दोनों ही दृष्टियों से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। यहां ये ख्याल 'तुर्राकलंगी', 'कलंगीतुर्रा', 'किल्लेतुरंगी' आदि नामों से जाने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। 'लावणी' मूल छंद होने के कारण इन्हें 'लावणीबाजी के ख्याल' भी कहते हैं। इन ख्यालों की गिनती माच के ख्यालों में की जाती है। अखाड़ा और उस्ताद इन ख्यालों की ये दो मूलभूत विशेषताएं या आवश्यकताएं हैं, जिनके बिना इनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती।

विविध अखाड़े

लावणीबाजों के तुर्रा तथा कलंगी ये दो तो मुख्य अखाड़े रहे ही हैं, परंतु इनके अतिरिक्त छत्रमुकुट, तोड़ा, सेहरा, अनघड़, डण्डानी और इश्कनामी अखाड़े भी प्रचलित रहे हैं। इन सब अखाड़ों की अपनी-अपनी विशेषताएं और अपने-अपने सिद्धांत रहे हैं। इनकी मान्यताएं और मिजाज, कार्यप्रणाली और प्रदर्शन एक-दूसरे अखाड़ों से अपनी अलग पहचान देते हैं। जैसे अनघड़ अखाड़े वाले तुर्रा और कलंगी की शिव-शक्ति उपासना को ही सर्वोपरि मानते हैं, इश्क अखाड़े वाले मन की लगन और तन्मयता को महत्त्व न देकर निर्गुण-निराकार उपासना को महत्त्वपूर्ण मानते हुए जीवन में इश्क की प्रधानता प्रकाशित करते हैं। इस अखाड़े का निशान केला है। डण्डानी में गायक अपने हाथों में लोहे की चूड़ियां पहने रहते हैं, जिन्हें एक हल्के-से डण्डे से खनखनाते हुए गायकी प्रस्तुत करते हैं, जबकि सेहरा में प्रमुख व्यक्ति अपने सिर पर सेहरा—तुर्राकलंगी धारण करता है और दूल्हा बना-सा लगता है।

बैठकी-ख्याल

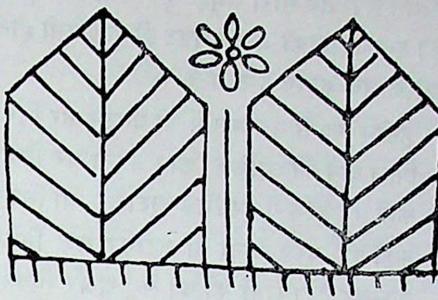
राजस्थान में ख्यालों की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है, परंतु इन ख्यालों से पूर्व बैठकी और दंगली ख्यालों की जो परम्परा यहां प्रचलित रही, उसका इतिहास बड़ा पुराना और पारम्परिक है, ख्यालों के क्रमिक विकास में इन दंगली-बैठकी ख्यालों की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है।

ये बैठकी-ख्याल दो दलों की बैठकों के रूप में प्रारम्भ हुए। ख्यालियों और श्रोताओं के बीच इन परम्पराओं ने बड़ा जोर पकड़ा और खूब वाहवाही ली। जगह-जगह इनके दंगल-के-दंगल जुड़ते और गांव-के-गांव उन्हें देखने-सुनने को उमड़ पड़ते। इन दलों का आपसी सवाल-जवाब बड़ा स्पर्द्धामूलक होता। होड़ाहोड़ी की वजह से हर दल पूरी तैयारी लिये होता। मंदिर, घर, आंगन, चौराहा, चौपाल कहीं भी खुला स्थान होता, ये बैठकें जुड़ जातीं। इनमें किसी प्रकार का कोई विशेष मंच न होकर जाजिम बिछा दी जाती और दोनों दल आमने-सामने अपने-अपने दफ्तर (बही-पानड़े) खोलकर बैठ जाते और सवाल-जवाब प्रारम्भ कर देते।

दोनों दलों के आपस के सवाल-जवाब की यह क्रिया फड़केबाजी कहलाती,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जिस दिन इसका आयोजन करना होता, आयोजक दल दूसरे दल को लौंग इलायची भेजकर तारीख मुकर्रर कर देता। लोगबाग मुंह-दर-मुंह आपस में भी इसका प्रचार कर देते। तभी निश्चित तिथि पर शौकिया लोग अपने-अपने घर-गांव छोड़ उमड़ पड़ते और उसमें पूरा-पूरा रस लेते तथा अपनी पूर्ण भागीदारी भी व्यक्त करते—कभी दंगलियों का हौंसला बढ़ाकर, कभी उनकी अच्छाई पर ताल ठोककर, कभी तालियां बजाकर, तो कभी रंग-व्यंग्य के विनोदी स्वर देकर।

सवाल-जवाब

दलों के सवाल-जवाब समान रंग-ढंग, ताल-स्वर तथा छंद-विषय लिये होते। कभी यह फड़केबाजी कहावत, अन्त्याक्षरी तथा पारसी पहेली के संकेतात्मक, प्रतीकात्मक तथा गूढार्थ लिये होती। इस प्रकार घण्टों बीत जाते। इनमें जिस दल में जितने अच्छे प्रखर बुद्धिवाले, हाजिरजवाबी, आशु और प्रत्युत्पन्न मतवाले होते, वही दल बाजी मारता और सबकी आंखों का तारा बनता। पहेली पर आधारित एक फड़का देखिए—

मिट्टी का घोड़ा मिट्टी का भोजन पावे
एक टांग से चारों खूंट चढ़ जावे
बच्चे हजारों किन्तु दूध न पीवें
गिरते ही निकलें प्राण अग्नि में जीवें
सच्चा गुरु का सच्चा चेला
कौन जो भेद बतावे?
यह घोड़ा कौन कहावे?

यों तो इसका सीधा-सा उत्तर हो गया—कुम्हार का चाक। मगर, जवाबी दल इसका उसी ढंग से उसी काव्य-छंद में उत्तर देगा। ये ख्याल रीतिग्रंथों के नायिका-भेद, नखशिख-वर्णन एवं षड्ऋतु तथा बारहमासा-वर्णन से परिपूर्ण भी होते हैं, कभी-कभी इनका प्रारम्भ सखी एवं दौड़ से होता है। ये सखी और दौड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उच्चरित होते हैं। तब सारा समूह एक अजीब तरह के वातावरण में खोया-खोया रहता है। इनकी गायकी और वणगट ही कुछ ऐसी होती है कि मजा-ही-मजा रहता है। सखी के चंद कड़ावे द्रष्टव्य हैं—

हसीन अपनी नजाकत से जो बनठन कर निकलते हैं
फिदा होने को आशिक छोड़ अपना घर निकलते हैं
कहीं पर इश्क में आशिक लुटाकर जां निकलते हैं
कहीं पर वस्ले जाना में कटाकर सर निकलते हैं
तकब्बुर है रकीबों को जो ले खंजर निकलते हैं
कजा आती है चींटी को तो उसके पर निकलते हैं
जो मिर्जा खाजू गाने को कहीं गर निकलते हैं
तो अपने चंग के इमराह ले दफ्तर निकलते हैं

विशेष छन्द

जैसा कहा गया, लावणी मूल छंद होने के कारण ये ख्याल लावणीबाजी के ख्याल भी कहलाए, परन्तु आगे जाकर यह सीमा नहीं रही और दुष्कर-सरल छंद इसमें आ घुसे। छंदों और उपछंदों में जब शास्त्रार्थ चलता, तब सामान्य लोग उनकी बारीकियों को नहीं समझ पाते, केवल उनके गाने की शैली और शब्दों के वाग्जाल का आनन्द अवश्य ले सकते थे।

इन छंदों में कड़ी, छोटी कड़ी, डेढ़ कड़ी, शेर, आधा शेर, डेड़ा शेर, शकील, द्रोण, विरुदन, विकट, झड़, आल्हा, सखी, दौड़, पद्मावत, गजल, सवैया, जिकरी, दौन जिकरी, सनद, दौन सनद, झेला, दौन का झेला, तिलौन का झेला, सनद का झेला, खाड़ी का झेला, सिंगावलोचन, लावणी, लावणी कड़ी, लावणी शेर, लावणी रेखता जैसे और भी कई नाम गिनाए जा सकते हैं। यहां सिंगावलोचन का एक उदाहरण दिया जा रहा है, जिसमें प्रत्येक चरण का जो आखिरी शब्द होता है, उसी शब्द से आगे वाला चरण प्रारम्भ होता है—

लटक रहीं जुलफें, जुलफों में लट, लट में उलझी बिलकुल।
बिलकुल सिर में बाल, बाल में जाल, जाल में जिसके जुल।
जुल में जिसके जहां, जहां में खलक, खलक में है ये गुल।
गुल में बलकि शेर, शेर में सुनी तेरी यकता काकुल।
काकुल में वो पेच, पेच में पेचताव, पेचां सम्बुल।
सम्बुल में तो गिरह, गिरह में गई गिरह सम्बुल की खुल।
खुलने में वो आन, आन में जान, हंसी मिसले बिलकुल।
बिलकुल सिर में बाल, बाल में जाल, जाल में जिसके जुल।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

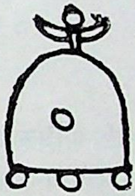
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो किस्मी गाना

इन ख्यालों का यह गाना दो किस्म का होता है। शर्तिया गाना तथा मिल्लत का गाना। शर्तिया में हार-जीत का प्रश्न रहता है। इसमें प्रथम दल जिस भाषा, रंगत, चाल तथा विषय-छंद में अपना सवाल प्रस्तुत करता है, उसी भाषा, रंगत, चाल, विषय तथा छंद में दूसरे दल को उस सवाल का जवाव देना पड़ता है। आम तौर से ये ख्याल एक ही भाषा में लड़ाये जाते हैं, पर कभी-कभी यह क्रम विपरीत भाषा में भी देखने को मिलता है। इसमें हार-जीत की कई प्रकार की शर्तें रखी जाती हैं, जिनमें विजयी दल द्वारा पराजित दल से चंग ले लेना, पराजित दल द्वारा विजयी दल से आजीवन शास्त्रार्थ न करने की प्रतिज्ञा करना, मजमे में खड़े होकर अपनी पराजय स्वीकार करना अथवा अपने सारे पोथी-पतरे देकर शिष्यत्व ग्रहण कर लेना होता है, मिल्लत का गाना केवल शौकिया मनोरंजन का होता है, जिसमें न कोई शर्त रहती है, न किसी प्रकार की रंगत-से-रंगत लड़ाने जैसी बात ही।

विविध रंगतें

इन ख्यालों के साथ भाषा की भी कोई सीमा नहीं रहती, उर्दू, फारसी, अरबी और हिन्दी में प्रायः इनकी भिन्नतें चलती हैं और लावणी से प्रारम्भ कर टोडी, चन्द्रायणी, कव्वाली, झड़, तिझड़ा, रेखता, घूमड़ी, कालंगड़ा, थियेटर, तिपदी,



दुलाणी, पहाड़ झेला, लंगड़ी, मोरधज लंगड़ी, रासड़ी, हिडोली, चौझड़ी, जानकी, बोझड़ी, खडी, पारकी, गजल, भैरवी, चलत, कैरवी, कड़ी, छोटी कड़ी, डेढ़ कड़ी, खैंच, शकिस्ता, तबील, शकील, दून, विरुदन, विकट विरुदन, दिलबहार, जिगरी, एजन, जुल्मार, दिलपसन्द, पद्मावत, सिंगावलोचन और बहरे तबील जैसी रंगतों में लिखे जाते हैं। पर, यह सत्य है कि प्रारम्भ में इतनी रंगतों अथवा बहरों का इन ख्यालों में प्रचलन नहीं था। केवल शकिस्ता, तबील, लंगड़ी, दून, छोटी कड़ी तथा खड़ी में ही ये ख्याल लिखे जाते रहे। गजल, ठुमरी की भी तब मान्यता नहीं थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविधनामी ख्याल

वर्णमाला के प्रत्येक व्यंजन को लेकर ख्याल-रचना की परम्परा भी बहुत कम मिलती है। ऐसे ख्याल कक्काबतीसी अथवा ककहरा के नाम से जाने जाते हैं। जिन ख्यालों का प्रत्येक मिसरा अलिफ बे, पे के क्रम से प्रारम्भ होता है, उन्हें तीस हरफी ख्याल कहते हैं, ऐसे ही उल्टे ककहरे और उल्टे तीस हरफी ख्याल भी होते हैं। इनके अतिरिक्त, कलमबंध, चित्रबंध, नागफांस, जंजीरेबंध, एअंगी, दुअंगी, चौअंगी, छेअंगी, अठंगी, सौलंगी, उधर, ऊथर, रकारी, दो अदारी, चारचौकी, बहरदूनी, गतानुगती, लोमविलमी, ऊपरनुकती तथा शटहरफी ख्याल भी होते हैं, जिनमें रंगत से रंगत तथा रदीफ से रदीफ लड़ाने की शरायतें होती हैं। रदीफ लड़ाने का एक नमूना इस प्रकार है—

राम चले वन दशरथ के अरमान के टुकड़े कर डाले
शूर्पणखा की कटी नाक जी जान के टुकड़े कर डाले
रावण पे चढ़ाई फौज फतह अभिमान के टुकड़े कर डाले
वन्दर सैन्या हनुमाना ने शैतान के टुकड़े कर डाले

ख्यालों की यह जानकारी अपने-आप में बड़ा गहन और रुचिपूर्ण अध्ययन तो है ही, साथ ही इनसे जुड़े खिलाड़ियों की रचनाधर्मिता और काव्य-विलक्षणता के विपुल आयामों का पर्यालोचन भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इन ख्यालों की अपने अन्दर की और बहुत-सी बारीकियां तथा नियमावलियां भी हैं, जिनसे लगता है कि लोक में प्रचलित साहित्य की ये कितनी श्रेष्ठ और सांगोपांग धाराएं थीं।

दंगली ख्याल

बैठकी-ख्यालों का यह दौर जब अधिकाधिक रूप में समादृत होने लगा, तब स्पर्धा का यह रूप और अधिक खुले रूप में सामने आया। फलस्वरूप, प्रत्येक दल दूसरे से अपने को सवाया दिखाने की होड़ में अपनी फड़केबाजी के साथ-साथ अपनी जगह बैठने की बजाय थोड़ी उठान भी भरने लगा। ऐसी स्थिति में कभी-कभी ईर्ष्या-भाव भी एक-दूसरे में पनपने लग गया, परन्तु उठान के इस तौर-तरीके से जन-जागरण को बढ़ावा मिला और एक नये अंदाज तथा तेवर में ख्यालियों और दंगलियों की भावना ने रंग पकड़ा। दंगलों के ये रूप धीरे-धीरे इतने लोकप्रिय हुए कि इनका क्षेत्र व्यापक हुआ और स्थानीय आंचलिक परिवेश तथा प्रभाव ने इन्हें अपना ऐसा निजत्व दिया कि जिससे ये अलग-अलग नाम-रूपों में जाने-पहचाने जाने लगे। इनमें हेला, कन्हैया, ढप्पाली तथा सांगीत-दंगल की परम्परा तो आज भी विशाल स्तर पर देखी जा सकती है। फसल के पकने पर,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होली के पश्चात् इन दंगलों का आयोजन होता है।

हेला-ख्याल-दंगल

करौली की ओर हेला-ख्याल-दंगलों का बड़ा जोर रहा है। कहा जाता है कि इन दंगलों के मुख्य प्रेरक शायर थे, जो हेला जाति के थे। इसलिए ये ख्याल-दंगल हेला नाम से चल पड़े। यों हेला देना इन दंगलों की मुख्य विशेषता रही है। मंडली के सभी गायक घेरे के रूप में एकत्र हो जाते हैं। बीच में नौपत रख दी जाती है। प्रारम्भ में दो-चार मिनट तक तौर लेने के लिए नौपत बजाई जाती है। इसके बाद मुख्य गायक उस्ताद द्वारा देवी की सुमिरनी प्रारम्भ कर दी जाती है। सुमिरनी के बाद हेला की पीड प्रारम्भ होती है, जिसमें दंगल का मुख्य आशय प्रकट कर दिया जाता है। पीड़ के समाप्त होते ही ख्याल का चढ़ाव प्रारम्भ हो जाता है और तत्पश्चात सभी गायक समवेत रूप में लम्बे तथा ऊंचे स्वरों में 'अजी ए हो' की टेर द्वारा ख्याल का हेला देना प्रारम्भ कर देते हैं। यहीं से यह हेला (पुकार) बुलावा ही, जो खेल की जान है, इन ख्यालों के हेला नाम को प्रचारित करने में सार्थक हुआ है।

नौपत के अतिरिक्त, ढपली, चंग, चिमटा, नांत और तुरई का प्रयोग भी इन दंगलों में किया जाता है। खुली-फैली जगह में लगातार कई दिन-रात तक ये दंगल चलते रहते हैं। इनमें पारस्परिक होड़, प्रतिस्पर्धा और कभी-कभी ईर्ष्या भी देखने को मिलती है। काशी के कजली-दंगलों की तरह फटहाबाजी और बरदस्ताबाजी के उन्नत रूप इनमें भी देखने को मिलते हैं।

प्रतिस्पर्द्धा का उभार

इनमें एक ओर जहां प्रथम पक्ष अपने विरोधी पक्ष पर प्रहार करता हुआ उसकी कटावती करता है वहीं दूसरी ओर आशु रचनाओं द्वारा तत्काल ही उस्ताद शायर गायक अपने पांडित्यपूर्ण जवाब द्वारा सबको चकित कर देता है। हेला का एक रूप इस प्रकार है—

पीड़ : क्या कहूं नृपति एक बात मैं
आया हूं कर आस मैं
सुन राजन तेरे पास मैं
जल्द भेज दियो राम लखन को मेरे पास में,
चढ़ाव : जब मैंने भतो उपायो
चल्यो मैं अवधपुरी को आयो तेरे पास में
सुन राजन तेरे पास में
सुन भूपति रे तेरे पास में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजी ए, अजी ए हो···
जब हम वन में यज्ञ रचावें
हम को आके असुर सतावें
पूजा पाठ करन नहीं पावें
देखो भूप जंगल तोर
अजी ए हो···

इसके बाद कली चलती है, जो बड़ी लम्बी होती है, करौली में हनुमान थोक, करमैती थोक, गणेश थोक, चटीकनागढ़, जगन्नाथजी का गढ़ और टोरीवाला गढ़ हेला के खास अखाड़े हैं, जिनके क्रमशः कजोड़ीलाल शर्मा, परमानन्द डोम, रमेशचंद्र शर्मा, सत्यनारायण, बाबूलाल शर्मा तथा कन्हैयालाल ब्राह्मण अच्छे संचालक उस्ताद रहे। मई, 1969 ई० में अपनी शोधयात्रा के दौरान मैंने इन अखाड़ों तथा इनके संचालकों से भेंट कर इन दंगलों के संबंध में जब विशेष जानकारी प्राप्त की, तब मुझे माच-ख्यालों की पृष्ठभूमि में इन दंगलों के न केवल महत्त्व-प्रतिपादिन की ही प्रतीति हुई, अपितु यह भी प्रतीत हुआ कि ख्यालों के क्रमिक विकास में इन दंगलों का बड़ा जबरदस्त योग रहा है। करौली के मासलपुर, खेड़िया, शुभनगर, मावली, भांकरी, लैंदोर, नारायण, बैराई, चैनपुर जैसे कई गांवों में हेला के दंगल आयोजित किए जाते हैं। इधर भाप-ख्यालों का प्रचलन भी उल्लेखनीय है।

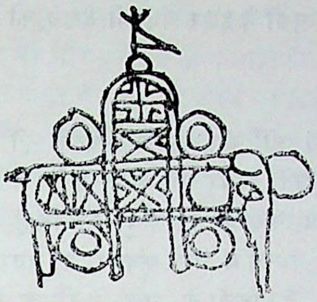
ढप्पाली-ख्याल दंगल

अलवर की ओर ढप्पाली-ख्यालों के दंगल विशेष प्रचलित रहे हैं। इनमें ढोल, नगाड़े और शहनाई मुख्य वाद्य होते हैं। रात होते-होते प्रारम्भ होने वाले ये दंगल सुबह प्रातः तक, यानी रात-रात भर चलते रहते हैं। ढप्पाली का एक नाम धमाल भी इधर सुनने को मिला। लक्ष्मणगढ़, गढ़ी, कठूमर, बिनाईं, नगर, हरसाना, खेड़ली, अखेगढ़ आदि ढप्पाली के बड़े अच्छे अखाड़े हैं। इधर बहु-प्रसिद्ध अलीबख्श के भजनों तक में मैंने ढप्पाली-ख्यालों का प्रभाव देखा। अलीबख्श के अलावा और किसी का सुमिरन नहीं करने वाले भजनी गोकुल कोली से मिलने जब मैं कोली मोहल्ले में उसके घर पहुंचा, तब रात को उसने मुझे ब्रह्मचारी मोहल्ले में आने को कहा, जहां रात्रि-जागरण में उसकी भजन-मंडली बुलाई गई थी।

रात को दो बजे तक मैं भजन सुनता रहा, प्रमुख भजनी पद गाने के साथ-साथ विविध मुद्राओं में तदनुकूल अपनी नृत्यमय अभिव्यक्ति देता है और तदनन्तर नगाड़ा और ढ़ोलक उसकी संगत करते हैं और टेरीये बारीक-बारीक तानों में भजन-पंक्तियां बुनते पाये जाते हैं। शरीर से थके-मांदे गोकुल ने बताया कि अलीबख्श के भजन गाने के लिए पंसेरी (पांचसेर, दो पसेरी) दूध चाहिए। नसें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

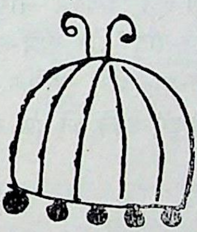


खिंच जाती हैं और नगाड़े-ढोलक पर तान में तान और मुरकी में मुरकी जब तक नहीं निकली, अलीबख्श का भजन ही क्या गाया। अलीबख्श स्वयं पहुंचे हुए ख्यालकार थे, जिन्होंने लंगड़ी, चौबोल, जकड़ी, वेहर, शिकस्त, गजल एवं भजन में ख्याल लिखे।

कन्हैया-ख्याल-दंगल

श्रीमहावीरजी का क्षेत्र कन्हैय-दंगलों के लिए बड़ा प्रसिद्ध रहा है। इन दंगलों में बहुसंख्य लोग पंक्तिबद्ध खड़े होकर अपने हाथों के झाले देते, उछलते, झूमते, आगे-पीछे बढ़ते-हटते कन्हैया का समा बांध देते हैं, उठान से उठकर ये दंगल बढ़ावरा, कहाणी, चिट्ठा, झड़ी, डट्टा तथा विविध राग-रागिनियों में 'रामायण' और 'महाभारत' के विभिन्न आख्यानों का गान-तान करते हैं। गूजर, मैना, माली तथा मीण जाति के लोग इन दंगलों के बड़े रसिया होते हैं।

इन दंगलों में बड़ा नगाड़ा जिसे नौपत अथवा बम भी कहते हैं, मुख्य वाद्य होता है। ये बम इतने बड़े होते हैं कि इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर गाड़ी में



लाया-ले जाया जाता है। बम बजानेवाले के चारों ओर टीप देनेवाले होते हैं, बमवादक बम पर चोट देता हुआ चारों ओर घूमता रहता है। दंगली लोग आगे रहते हैं। सौ-सौ, डेढ़-डेढ़ सौ तक दंगली एक-एक दंगल में भाग लेते हैं। गंगापुर, पीलोदा, पण्डाल, मोचा खण्डीप, बजीरपुर, सनेट, बयाना, हिंडोन, बेर, मण्ठावरी, वामनवास आदि कई गांव इन दंगलों से भरे पड़े हैं। वसन्तपंचमी से ही नगाड़े का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजन प्रारम्भ हो जाता है। वाद्यों में इधर चंग भी देखने को मिला।

सांगीत दंगल

अलवर की ओर सांगीत-दंगलों की परम्परा देखते ही बनती है। वादी-प्रतिवादी दल आमने-सामने खड़े होकर गगनभेदी संगीत में विपक्ष को ललकारते हुए अपने अंग-प्रत्यंग को उछालकर जो संगीत-वृष्टि करते हैं, वह अकल्पनीय और अनिर्वचनीय है। नगाड़ा इन दंगलों में प्राण फूंकता है, मगर दंगलिये भी अपना वाद्य अपने पास लिये रहते हैं। किसी के गले में ढोलक लटका है, तो कोई हारमोनियम लिये खड़ा है। किसी ने सांरगी बांध रखी है, तो किसी ने नफीरी पकड़ रखी है और कोई अपने हाथों में मंजीरा लिये हुए है।

एक व्यक्ति गीत का स्थायी प्रस्तुत करता है। शेष सभी सुर में सुर भर कर टेर उठाते हैं, टेर की शैली ख्याल-शैली है। वादक संगत करते हैं, विशिष्ट लहजों एवं खटकों में ताल के सम बड़े सुन्दर लगते हैं। बीच-बीच में आलापों की उठान जो रस घोलती है, उसका तो कहना ही क्या! जब गायकी पूरे जोश-होश में आ जाती है, तब दल में से कुछ अगुआ लोग बाहर निकलकर जमीन पर बैठकें करते हैं और नाटकीय मुद्राओं में अपने हाथों को ऊपर-नीचे फैलाकर सम को एक लहजे के साथ फेंकते हैं, जैसे कोई किसी ताल वाद्य पर ताल दे रहा हो, गानेवाले शास्त्रीय परिपाटी से सर्वथा अलग होते हैं, मगर, ये दंगल अपने नियमों में बद्ध होते हैं और रात-रात भर संगीत वृष्टि करते रहते हैं।

रसिया दंगल

डीग-भरतपुर की ओर भीमकाय नगाड़ों पर ऐसे ही रसियों के दंगल आयोजित होते हैं। हाथों के लम्बे हेले दे-देकर लांगुरिया गानेवाले भी इधर बहुत मिलते हैं। इन दंगलों में जात-पांत और धर्म-सम्प्रदाय का कोई भेदभाव नहीं रहता। ऐसे सामूहिक उल्लास-आनन्द में प्रत्येक व्यक्ति भाग लेकर अपनी भागीदारी देना परम कर्त्तव्य मानते हुए अपने को पूर्ण मनोरथी समझता है।

तुर्रा-कलंगी ख्याल

इन बैठकी-दंगली-ख्यालों का ही विकसित स्वरूप राजस्थान का तुर्राकलंगी ख्याल है। यदि और गहराई से छानबीन की जाए तो नाट्य के क्रमिक विद्यार्थियों में भी इन विधाओं का अध्ययन बड़ा महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। तुर्राकलंगी ख्यालों के मूल में भी ऐसे ही बैठकी-ख्यालों की भावभूमि रही है। कहा जाता है कि मध्य प्रदेश के चन्देरी राज्य के हिन्दू-सन्त तुखनगिरि और मुसलमान फकीर शाहअली अपने दंगलों के अगुआ थे, जिनके बीच आपसी दंगल जुड़ते रहते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

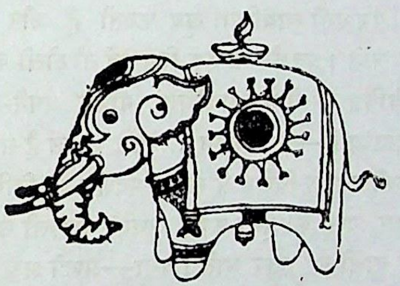
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने उच्चस्तरीय स्वरूप, शुद्ध शास्त्रार्थ और स्वस्थ फड़केबाजी के कारण दोनों उस्तादों की बड़ी नामवरी थी और बड़े-बड़े लोग अपने ठिकानों में इन्हें आमन्त्रित कर इनके दंगल आयोजित करते थे। ऐसे ही दंगल का आयोजन चन्देरी के राजा ने अपने महल में किया और तुखनगिरि एवं शाहअली से प्रभावित होकर एक को तुर्रा एवं दूसरे को कलंगी भेंटकर उनका बड़ा सम्मान किया, तब से तुर्राकलंगी के नाम से इनके अखाड़े चर्चित हुए और आगे चलकर इनके नाम से ख्यालों का मंचन ही प्रारम्भ हो गया।

राजस्थानी परम्परा

राजस्थान में तुर्रा-ख्यालों का प्रारम्भ सर्वप्रथम गौड़ ब्राह्मणों ने सहेड़ूसिंह के नेतृत्व में, चित्तौड़ में किया। सहेड़ूसिंह के बाद क्रमशः रूपचन्द, छोटूलाल, खेमचन्द, चम्पालाल, मूलचन्द, ख्यालीलाल, गब्बूलाल, भवानीशंकर, हरिशंकर, रामसुखलाल और चैनराम ख्यालों के उस्ताद हुए, जिन्होंने सैकड़ों की संख्या में ख्यालों तथा लावणियों की रचना कर अपने-अपने अखाड़े चलाये और तुर्रा ख्यालों की जोत जगाई। इनकी देखादेखी चित्तौड़ के पास घोसुंडा में कागजी मुसलमानों ने कलंगी-ख्यालों का अखाड़ा प्रारम्भ किया, तबसे तुर्राकलंगी-ख्यालों की दो धाराएं बैठकी और मंचीय दोनों रूपों में यहां विद्यमान रहीं।

बैठकी-ख्यालों की फटकाबाजी, होड़ाहोड़ी और प्रतिस्पर्धा इन मंचीय ख्यालों में भी बराबर बनी रही। जहां भी तुर्रावाले अपना साज मांड़ते कलंगीवाले उनकी



प्रतिस्पर्धा मे अपना ख्याल प्रारंभ करते। चंग-डफ का वाद्य लहराने लगता। तुर्रावालों का भगवा रंग का वस्त्र व तुर्रा निशान और कलंगी वालों का हरे रंग के साथ कलंगी निशान बना। दोनों दलों के प्रतिस्पर्धी दो सम्प्रदाय बने, जो दल अखाड़ा अथवा फड़ नाम से मशहूर हुए। ये अखाड़े आगे जाकर अपने-अपने मत के बड़े कट्टर बने। यहां तक कि पिता-पुत्र के बीच भी इन ख्यालों को लेकर आपस में तनातनी और तड़बाजी तक देखी गई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खम्भा-प्रचार

तुर्रा अथवा कलंगी के जहां भी प्रदर्शन आयोजित किये जाते हैं, उस स्थान विशेष पर महीने-डेढ़ महीने पहले से एक खम्भा गाड़ दिया जाता है और उस पर अपने-अपने अखाड़े विशेष की भगवा अथवा हरी झण्डी लगा दी जाती है। इस खम्भे पर एक कागज चिपका दिया जाता है, जिस पर ख्याल का नाम तिथि-दल उस्ताद तथा मुख्य-मुख्य कलाकारों के नाम रहते हैं। ये सारी सूचनाएं लावणी में लिखी रहती हैं, ताकि अन्य लोगों की जबान पर भी यह नाम चढ़ जाए और आसपास तथा आगे इसका जोरदार प्रचार हो सके एवं भारी संख्या में लोगों की भीड़ इसे देखने को उमड़ पड़े। यह लावणी कुछ इस प्रकार होती है—

होगा तमासा गढ़ चित्तौड़ में सब आजो देखवा। टेर।
पोस सुदी नोमी को तमासो सुण लीजो नर-नार
तारीख पंदरा जनवरी सरे वार मिल्यो सोमार
राजगति और देवगति तो है ईश्वर अखत्यार
राजा भरथरी करां तमासो देखी सब परवार
खेले खिलाड़ी माणकचौक में देखे सकल जहान
चम्पालाल और फूलचन्द के चन्पे तुर्रा निशान
धूमधाम से होगा प्यारे यहां पै मंगलाचार
चैनराम उस्ताद हमारा करजो बेड़ा पार। जी सब।

लोगों के कण्ठों पर ऐसी लावणियां खूब फबती हैं और उन्हें गा-गाकर वे प्रचार-कार्य में लग जाते। प्रदर्शन के एक दिन पूर्व तो टोली की टोली, गली-गली घर-घर पहुंचकर विविध रंगतों में लावणियां गाकर अपने-अपने दल का प्रचार करते। एक रंगत द्रष्टव्य है—'तुर्रावाला रो काले ख्याल है सब आजो देखवा।'

कभी-कभी किसी कारण-विशेष से ख्याल-प्रदर्शन की तिथियां बढ़ाई जातीं तो विपक्षी लोगों को उस दल की हंसी करने अथवा खिल्ली उड़ाने में बड़ा आनन्द आता। तब घर-घर गाली पर उतर आते। यथा—झण्डी झख मारे माणकचौक में मर गये खिलाड़ी।

विपक्षी प्रचार

यह स्थिति यहीं तक नहीं रहती। ख्याल-प्रदर्शन में विपक्षी लोग हरचन्द विघ्न डालते, सवाल-जवाब करते और कभी-कभी ग्रामशूकर तक छोड़ देते हैं। जब अधिक हल्ला-गुल्ला मचता और प्रदर्शनकर्त्ता को पता लग जाता कि विरोधी लोग यह गड़बड़ी कर रहे हैं, तब प्रदर्शन के बीच मंच पर ही उस तरह की लावणी गाकर हल्ला करनेवालों को ठण्डा कर दिया जाता है। जैसे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाको कूण कीधो रे म्हाणे ख्याल में थाणी मां ने चो···
याकि
भांचो कणी नाक्यो रे जमता खेल में थाणी मांरा माटी।

कभी कोई शेरे-दिल ऐसा भी मिलता जो हिम्मत रख इसका उत्तर भी उसी टेर लहजे में दे बैठता—'गाल्यां कई काढ़ो रे चोदी रांड रा थां खेल बिगाड्यो।'

कभी-कभी यह रूप इतना भोंडा और गंवारू बन जाता कि आपसी तनाव और वैमनस्य बढ़ जाता। इससे समाज में फिरके तक पड़ जाते और बाजवक्त एक ही परिवार में दो विरोधी धाराएं हो जातीं। भाई-भाई और पिता-पुत्र तक इन ख्यालों के पीछे अलग-अलग होते देखे गये। इसका बुरा असर जीवन-मरण तथा विवाह जैसे संस्कारों पर भी देखा गया।

इससे यह तो स्पष्ट है कि इन ख्यालों के प्रति लोगबाग कितने आसक्त होते और इनसे जुड़ने में अपनी प्रतिष्ठा तक दांव पर लगा देते हैं। लोगबाग धन की परवाह नहीं करते मगर अपने दल की गरिमा को तनिक भी आंच नहीं आने देते हैं। बड़े-बड़े सेठ-साहूकार तक इनसे जुड़ने में अपना मान समझते और पूरी तैयारी के साथ सर्वस्व दांव पर लगा देते। चित्तौड़ जिले काडूंगला इस मामले में सबसे आगे था। चित्तौड़ घोसुंडा के अलावा निम्बाहेड़ा, बसी, बेगू, सावा, जयपुर, कुकड़ेश्वर छोटी सादड़ी, जावद, अजमेर, कनेरा, निकुम, किशनगढ़, आसींद आदि में तुर्राकलंगी के प्रसिद्ध अखाड़े रहे हैं।

अट्टाली मंच

इन ख्यालों के लिए अट्टालीनुमा विशेष आकर्षक मंच बनाया जाता है। यही मंच इन ख्यालों को अन्य राजस्थानी ख्यालों से भिन्न प्रतीति देता है। अट्टाली बाहर से बीस-बीस फीट तक ऊंची होती है, जो रंग-बिरंगी फर्रियों, कोर-किनारियों तथा फूल-पत्तियों एवं कपड़े-लत्तों से बड़ी आकर्षक सज्जा लिये होती है। राजस्थानी स्थापत्यकला का उत्कृष्ट रूप इनमें देखने को मिलता है। यह रानी-पात्र के लिए होती है। इस पर चढ़ने-उतरने के लिए बड़ी कलात्मक सीढ़ी लगा दी जाती है। रानी-पात्र इसके सहारे टेर देता हुआ नीचे उतरता है। उधर बीच दर्शकों से पुरुष-पात्र राजा धीरे-धीरे मंच की ओर अग्रसर होता है, कभी-कभी वह घोड़े पर आता है, दोनों के नाम-ठाम, पद-प्रतिष्ठा, वंश-परिचय आदि का गायकी-संवाद होने के बाद मंच पर मुख्य खेल प्रारम्भ हो जाता है। किसी-किसी खेल में दो रानी-पात्र होने के फलस्वरूप उनके लिए अलग-अलग दो अट्टालिकाएं बनाई जाती हैं। अट्टाली को कहीं झरोखा, कहीं महल तथा शीशमहल भी कहते हैं। अट्टाली से लगा मुख्य मंच होता है। यह जमीन से लगभग पांच फीट ऊंचा होता है। इस मंच के आगे अथवा एक ओर एक लघु मंच होता है, जो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादकों तथा टेरियों के लिए होता है। वादक, सारंगी, शहनाई, ढोलक, नगाड़, मजीरे तथा हारमोनियमवाले होते हैं। उस्ताद का आसन भी मुख्य मंच के पास रहता है, जहां प्रायः कुर्सी रख दी जाती है। मुख्य मंच के एक किनारे दल-विशेष की झण्डी लगा दी जाती है, शेष तीनों किनारों पर मशालें जला दी जाती हैं।

ख्याल-प्रेरक उस्ताद

उस्ताद इन ख्यालों के प्रेरक होते हैं, जो हर समय मंच पर बने रहते हैं। अभिनय के समय ये पात्र के पीछे-पीछे रहकर अपने साथ रखी लम्बी-लम्बी हस्तलिखित बहियों से उसके हिस्से का संवाद बोल-बोलकर सुनाते हैं, जिसे गाकर वह पात्र मंच पर अभिनय करता है। ख्याल के पूरे समय में उस्ताद की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहती है। वह कभी पात्रों को, कभी साजिन्दों को, कभी टेरियों को, कभी स्थानीय व्यवस्थाकर्मियों को नाना प्रकार के निर्देश देता रहता है और अपना प्रभाव बनाये रखता है।

यह उस्ताद आशु रचनाकार भी होता है, जो तत्काल किसी सन्दर्भ-विशेष की लावणी बनाकर जनता-जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत करता है और अपने दल तथा स्थानीय आयोजकों का मान बढ़ाकर वाहवाही लूटता है, ख्याल-समाप्ति पर प्रातः सूर्य की किरणों के निकलते-निकलते जो रसिया सुनाया जाता है उसमें उस्ताद, अखाड़ा, कलाकार, साजिन्दे, टेरिये और आयोजकों के नामोल्लेख के साथ-साथ दानदाता तथा विशेष सहयोगियों का भी गुणगान किया जाता है। दर्शकों तथा सम्पूर्ण ग्रामनिवासियों पर इसकी अच्छी छाप पड़ती है और कई बरसों तक वह याद बनी रहती है।

इन ख्यालों में रुक्मिणी मंगल, राजा भरथरी, भक्त पूरणमल, राजा हरिशचन्द्र, सीतास्वयंवर, कृष्णचरित्र, गोपीचन्द, उषाचरित, रूपवसन्त, त्रियाचरित, अमरसिंह राठौड़ आदि ख्याल अधिक-प्रचलन में हैं, ये ख्याल जनता-जनार्दन को भी कण्ठस्थ रहते हैं इसीलिए यदि कहीं कोई खिलाड़ी मंच पर कोई गलती कर भी बैठता है तो तत्काल दर्शक उसे याद दिलाकर शुद्ध ख्याल प्रस्तुत करने को बाध्य करते हैं। यही कारण है कि इन ख्यालों में हल्के-फुल्के, नासमझ, अप्रवीण अभिनेता कभी बर्दाश्त नहीं किये जाते।

पुरुष-औरतों की भागीदारी

मुख्य पात्र राजा-रानी, राजकुमार-राजकुमारी तथा मन्त्री होते हैं, जो परम्परागत पोशाकों में सजे-धजे रहते हैं, औरतें कभी ख्यालों में भाग नहीं लेतीं। तुर्राकलंगी ख्यालों में पुरुष-पात्र ही नहीं, राजस्थान के सभी ख्यालों में पुरुष-पात्र ही महिला-पात्र का अभिनय करते हैं। औरतें मंच पर ऐसा मर्दानगीभरा अभिनय

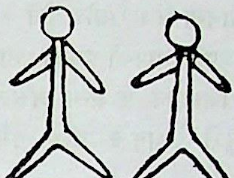
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर भी नहीं सकतीं, इसीलिए कहावत चल पड़ी—'मर्द हो सो चढ़े माच पर' रात-रात भर नाचने-गाने का इतना कार्य रहता है, जो औरतों के वश का भी नहीं है। नायक सुन्दर, तेजस्वी पराक्रमी और उच्चकुलीन होता है। नायिका बननेवाला व्यक्ति अच्छे डीलडौल वाला, गौरवपूर्ण, मृदुभाषी तथा कोमल शरीर लिये होता है।

राजा दूल्हे का वेश पहने होता है। वह चूड़ीदार पाजामा, शेरवानी तथा साफा या पगड़ी धारण करता है। पगड़ी-साफे पर तुर्राकलंगी शोभित रहती है। रानी-पात्र कीमती घेरदार घाघरा, साड़ी और सोने के आभूषण पहनता है। राजा के साथ मन्त्री तथा रानी के साथ दासी रहती है, जो सवाल-जवाब को रोचक बनाने तथा उनके हुकुम बजाने में सहायक होते हैं।

मंच पर आते ही प्रत्येक पात्र उस्ताद का चरणंस्पर्श करता है। राजा-रानी दोनों के हाथ में छड़ी तथा रूमाल रहता है। रानी पात्र घूंघट लिये होता है। संवाद बोलने पर पात्र नृत्य-अभिनय की विविध मुद्राओं में अपनी-अपनी जगह



पलटते हैं, राजा-रानी आपस में घूमर लेते हैं। पात्रों के गा चुकने के बाद वादक अपने वाद्यों के साथ उसी गायकी में संगत करते हैं। टेरिये भी अपनी टेरें खोलते हैं। ये टेरिये ख्याल को अधिक रंगत देने के लिए चार से छह-छह, आठ-आठ तक होते हैं। वाद्यों की संगत और टेरियों की टेरों के समय पात्र को थोड़ा विश्राम मिल जाता है पर ख्याल का आनन्द जरा भी कम नहीं होने पाता। नायक-नायिका आभूषण तथा गले में माला धारण करते हैं।

मर्यादित पृष्ठभूमि

बैठकी-ख्यालों की पृष्ठभूमि से पल्लवित-पुष्पित होने के कारण इन ख्यालों का नियम बड़ा बंधा-बंधाया और पक्का अनुशासन लिये होता है। अखाड़ा, उस्ताद और दल के प्रति पूर्ण वफादारी रखनेवाला तथा कर्त्तव्यनिष्ठ कलाकार ही इनसे सम्मिलित हो सकता है। प्रत्येक कलाकार उस्ताद के हाथों पूरा प्रशिक्षण-शिक्षण लेता है और अखाड़े के नियमों तथा उसकी मर्यादाओं का सख्ती से पालन करता है। बैठकी एवं दंगली-ख्यालों का आध्यात्मिक और काव्यात्मक पक्ष यद्यपि प्रारम्भ में अपने प्रबल रूप में बड़े निखार पर आया तथापि धीरे-धीरे जब स्वस्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिस्पर्धा नहीं रहीं, तब इस परम्परा का अस्वस्थ रूप समाज के लिए बोझा बन गया, इसलिए तुर्राकलंगी ख्यालों का यह मंचीय रूप सामाजिकों में नये उत्साह, स्वस्थ वातावरण और अच्छे-खासे मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत हुआ। यद्यपि अखाड़ा, उस्ताद और दंगल का स्वरूप तो वही रहा, तथापि उसकी रचना-विधि और काव्यात्मक प्रतिपादन में परिवर्तन आ गया। जहां एक स्थान पर बैठकर जिस सीमा में बिना किसी विशेष मुद्राभिव्यक्ति के दार्शनिक एवं बौद्धिक रचनाओं का पाठ कर दिया जाता था, वहां उससे हटकर एक नया परिवेश और रंग-विधान इन ख्यालों में प्रकटित हुआ।

होड़ाहोड़ी का प्रभाव

कोरे काव्य की मन्दाकिनी के साथ नृत्य-संगीत-नाटक और मंच का मिला-जुला परिवेश जब जुड़ा, तब मनोरंजन प्राप्त करनेवालों का दायरा बढ़ा और ग्रामीण क्षेत्रों में इन ख्यालों के प्रदर्शन आयोजित होने लगे जिससे गांव-के-गांव इनका रस लूटने और इनके आनन्द में सराबोर होने के लिए हर सम्भव सहयोग देने स्वतः प्रेरित हुए और अपने आपको इनका भागीदार समझने लगे। इसका व्यापक प्रभाव यह रहा कि राजस्थान के अन्य अंचलों में रंगमंचीय प्रदर्शनकारी की दूसरी कलाएं भी अपनी पूरी उठान के साथ आगे आईं और उनके प्रदर्शनों की स्वस्थ होड़-सी मच गई।

इस होड़ाहोड़ी में नये ख्याल-तमाशे लिखे गये। कई कलाकार रंगमंच से जुड़े और नवीन हलचल का सूत्रपात हुआ। दंगली ख्यालों में जो लोग केवल दंगलबाजी तक ही अपने को सीमित रख पाये, वे रंगमंचीय अन्य व्यवस्था के कार्यों में सक्रिय हुए, साथ ही कई अन्य प्रतिभावान् लोगों का सहयोग मिलना प्रारम्भ हुआ, जो कभी इन दंगलों के साथ जुड़े हुए नहीं थे। कई नये वादक, साजिन्दे, सारंगिये, नगाड़ची, ढोलकिये, तबलची तथा शहनाईनबाजों ने मिलकर इन ख्यालों में चार चांद लगा दिये। बैठकी-ख्यालियों द्वारा इन ख्यालों का शुभारम्भ होने से इनमें गेय पक्ष की ही प्रधानता रही। नृत्य और अभिनय पक्ष उतना सशक्त और असरदार नहीं बन सका, इसीलिए गायक के गा चुकने के बाद वादक उनकी संगत पकड़ लेते हैं और टेरिये उन बोलों को उतनी ही ऊंचाई और साफगोई से टेरते हुए पुनरावृत्ति करते हैं।

प्रभाव क्षमता

जनता-जनार्दन में लोकप्रियता प्राप्त करने के पीछे इन ख्यालों का एक कारण यह भी रहा कि उनकी रचना-विधि और बन्दिशें लोकजीवन में प्रचलित बहुप्रिय लोकगीतों, भजनों तथा गाथा-गायकियों की धुनें थीं, जिनके आधार पर इन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्यालों की रचना की गई। प्रख्यात जैन मुनि श्री चौथमलजी अपने गृहस्थ जीवन में इन ख्यालों के अच्छे माने हुए खिलाड़ी थे। साधु-जीवन में दीक्षित होने के बाद इन्होंने ख्यालों में प्रचलित कजलियों, घूंसों, जला, कांगसिया, 'मीरां थारे कांई लगे गोपाल', 'रावण को समझावे राणी', 'तरकारी ले लो मालण आई बीकानेर की' जैसी पचासों अति लोकप्रिय लोकधुनों और तर्जों को लेकर जैनाख्यानों की रचना की, जो जैन समाज और इतर समाज में भी बड़े प्रशंसित हुए और सहज ही लोगों के कण्ठ पर चढ़ गये। स्वयं चौथमलजी अपने विशेष बुलन्दगी में बड़ी मधुर गायकी में गाते, तो श्रोता झूम उठते, उनके व्याख्यानों को सुनने हर सम्प्रदाय तथा वर्ग के लोग जुटते थे।

जैन मुनियों का योग

उनकी देखादेखी उनके अन्य साधु-शिष्यों ने भी लोकतर्जों में विविध जैनाख्यानों की रचना की। इनमें मुनि नाथूलाल तथा रामलाल के नाम उल्लेखनीय हैं। साहित्य की यह सृष्टि तो आज भी यथावत् देखने को मिल रही है। कई कवि, तुर्राकलंगी-ख्यालों के सम्पर्क में आये, उन्होंने उन्हीं ख्यालों की विशिष्ट लावणियों एवं तर्जों में उत्कृष्ट साहित्य रचा। वेगू के भक्तकवि दिवाकर उपाध्याय ने तो सत्यनारायण की कथा, हनुमान-चरित, और शिवपुराण जैसी कई अच्छी सुन्दर कृतियां लिखीं, जिनका वह विशिष्ट अवसरों तथा रात्रि-जागरणों पर पिछले तीन दशकों से सस्वर पाठ करते हैं और अपने क्षेत्र में उन्होंने लोकप्रियता प्राप्त की है। परन्तु धीरे-धीरे जब राजस्थान के अन्य ख्यालों ने अपने अभिनय और नृत्यपक्ष के कारण जोर पकड़ा, तब तुर्राकलंगी के ख्याल उनके समक्ष नहीं टिक पाये। इसका मुख्य कारण इन ख्यालों के कलाकारों का शौकिया होना भी रहा, अतएव वे व्यावसायिक कलाकारों का स्तर और उनके कला-करिश्मे नहीं पकड़ पाये।

उदयपुर में भारतीय लोककला-मण्डल ने अपने रंगमंच पर आयोजित लोकनाट्य समारोह में राजस्थान में प्रचलित विविध शैलियों के ख्याल-दलों के साथ-साथ जब चित्तौड़ के चैनराम के तुर्रादल को आमन्त्रित किया, तब अपने प्रदर्शन द्वारा चैनराम को यहां निराशा ही हाथ लगी। अपने तुर्राख्यालों के कारण जो चैनराम सारे मेवाड़-क्षेत्र में निरन्तर चालीस वर्षों तक लोगों के दिलोदिमाग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर छाए रहे और जिन्हें लोगों से असीम स्नेह और अपार प्रतिष्ठा मिली, वही चैनराम बदले हुए माहौल में परम्पराओं से बंधे-जकड़े होने के कारण अपने में कोई परिवर्तन नहीं ला सके और इसीलिए उनके रहते-देखते तुर्राख्याल की इतनी शानदार और सशक्त परम्परा समाप्त हो गई। यही स्थिति घोसुंडा के खजूखां के साथ कलंगी-ख्यालों को लेकर हुई। दोनों उस्तादों के निधन के बाद इस परम्परा को बड़ा धक्का लगा है।

मैंने तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व के तुर्राकलंगी के वे खेल भी देखे हैं, जो अपने असली रूप में बड़े लुभावने और कभी न विस्मृत होनेवाले थे और पांच-सात वर्ष पूर्व के जीर्ण-शीर्ण खेलों को भी देखा है। आज इन खेलों को देखकर कहीं यह नहीं लगता कि ये वे ही खेल हैं, जो किसी समय अपनी पूर्ण समृद्धि, असीम उल्लास और जन-मन की भावनाओं की भव्य प्रतीति की चरम सीमा पर थे। तुर्राकलंगी ख्यालों के नाम पर गांवों में वे लोग और वे कलाकार अवश्य हैं, जिनकी कहानी सुन-सुनकर आज भी उन गांवों में रस बरसता है। लोग ताजगी ग्रहण करते हैं और राजस्थान का यह विविधवर्णी लोकमंच आंखों के सामने चित्रित हो उठता है। नवरात्रों में अष्टमी को आवरीमाता (उदयपुर) में इन ख्यालों की बाजियां अवश्य जुड़ती हैं जो इनकी परम्परा का कुछ दिग्दर्शन कराती हैं। निम्बाहेड़ा के गिरधारी स्वर्णकार और उनकी मित्र-मंडली अपने अतीत के रंग में आज भी सक्रिय दिखाई पड़ती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती साहित्य में लावनी का स्वरूप और प्रयोग

—डॉ० कमल पुंजाणी

गुजराती में, 'लावनी' शब्द का प्रयोग 'संगीत के एक विशिष्ट ताल' के रूप में होता है। गुजराती के सुप्रसिद्ध विश्वकोश 'भगवद् गोमण्डल' में लावनी विषयक जो टिप्पणी दी गयी है, वह इस प्रकार है—

'लावनी एक ताल है जिसकी आठ मात्राएं तथा तीन ताल होते हैं। पहली, तीसरी और सातवीं मात्रा पर ताल पड़ता है तथा पांचवीं पर खाली जाता है।

यह ताल शिष्ट संगीत का न होकर दक्षिण देश्य ताल है जिसे दक्षिण में 'धुमाली' ताल कहते हैं। ऐसा भी समझा जाता है कि दादरा और एमटा की द्रुत-पद्धति करने से लावनी का ताल बन सकता है।'

(भगवद् गोमण्डल, भाग-8, पृ० 777)

स्वर्गीय श्री बर्वे ने गुजराती में संगीत तथा छन्दशास्त्र से सम्बन्धित अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उनके सुविख्यात ग्रंथ 'गायन वादन पाठमाला' में लावनी के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। उन्होंने एक स्थान पर लावनी का आठ मात्राओं के नीचे विविध प्रकार के चिह्न लगाकर तालों का महत्त्व प्रदर्शित करने का जो प्रयास किया है, वह इस प्रकार है—

लावनी—	1	2	3	4	5	6	7	8
	÷		—		=		—	

यहां ÷ चिह्न से समताल का संकेत मिलता है। लावनी में यह ताल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। = चिह्न से खाली ताल का सूचन किया गया है जो महत्त्व की दृष्टि से समताल के बाद का स्थान पाता है। — चिह्न से उस ताल का बोध मिलता है जिसका महत्त्व खाली ताल से कुछ कम होता है।

विस्तृत विवरण के लिए देखिए : गायन वादन पाठमाला-1, पृ० 69-70

'प्राचीन गुजराती छन्द : एक ऐतिहासिक समालोचना' शीर्षक पुस्तक (पृ० 36 तथा 40) में भी लावनी के स्वरूप की विस्तृत समालोचना की गयी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बृहत् पिंगल' के लेखक श्री रामनारायण पाठक ने 'लावनी' के लिए 'चलती' शब्द का प्रयोग किया है।

(देखिए : बृहत् पिंगल, शब्द सूची, पृ० 720)

गुजराती में प्रकाशित उपर्युक्त ग्रंथों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि लावनी आठ मात्राओं से युक्त संगीत का एक विशिष्ट ताल है जिसका सम्बन्ध देश्य तालों से अपेक्षाकृत अधिक है। गुजराती में यह ताल दक्षिण की देन है।

गुजराती में लावनी का सर्वाधिक प्रयोग मध्यकालीन कवियों की कृतियों में मिलता है। मध्यकाल के ख्यातिप्राप्त कवि श्री दलपतराम ने अपने पिंगल में लावनी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए जो उदाहरण दिये हैं उनमें से एक उदाहरण हम यहां उद्धृत करते हैं—

'किंचित करतां को दिन भूल्या,
सेवी केफ नहि फरशो फूल्या,
जे नर साप जतन थी झाले,
ते मृत्यु पामे को काले।'

(दलपत पिंगल, पृ० 13)

मध्यकालीन गुजराती कवियों में लावनी का सर्वाधिक सफल प्रयोग नर्मदाशंकर ने किया है। नर्मदा की अत्यन्त लोकप्रिय कविता 'जय जय गरवी गुजरात' लावनी में ही लिखी गयी है। इस कविता की प्रारम्भिक पंक्तियां यहां उदाहरणस्वरूप उद्धृत की गयी हैं—

'जय जय गरवी गुजरात
दीये अरुण परभात
जय जय गरवी गुजरात
ध्वज प्रकाशे झल ल कुसुंबी प्रेमशौर्य अंकी तुं
भणव भणव निज संतति सहुने प्रेमभक्तिनी रीत
ऊंची तुज सुंदर जात
जय जय गरवी गुजरात'

यह पूरी कविता शुद्ध चतुष्कल-अष्टकल रचना है।

नर्मदा ने अनेक प्रकार की लावनियां लिखी हैं। एक सरलतम लावनी देखिए—

'कहां गयूं कनेथी म्हारूं रमकडुं प्यारूं
शुं थयुं हतुं शुं धार्यूं हवे दिल हार्यूं।'

(नर्मदाप्य, पृ० 728)

नर्मदाशंकर के बाद, गुजराती के मध्यकालीन कवियों में, लावनी के विविध प्रयोग करने का श्रेय श्री मणिलाल द्विवेदी को प्राप्त है। यहां हम उनकी एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध लावनी की कुछ पंक्तियां दे रहे हैं —

'प्रिय रे ते ते क्यम विसराय ?
घड़ी घड़ी चमकि चित्त उभराय,
अंग ताब मार्ग गमन न खमाय,
श्रमित बलि लुलित मुग्ध दे खाय,
आलिंगन आशिथील थी चापुं ते धरी प्रेम,
चूंथायेली मृणालि सरखां दुर्बल दीसे तेम,
एम मम उर धरि ज्यां ऊंघाय—प्रियरे,

(उद्धृत-बृहत् पिंगल, पृ० 642)

इस लावनी के अष्टकलो की रचना पूर्वोद्धृत नर्मदाशंकर की लावनी 'जय जय गरवी गुजरात' से कुछ भिन्न है और चंतुष्कलों से अष्टकल ही अधिक दिखाई देते हैं। अपने विशुद्ध रूप में लावनी ताल अष्टकल ही होता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से हम कह सकते हैं कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य में लावनी के अनेक प्रयोग उपलब्ध होते हैं। विविध प्रकार की लावनियां लिखनेवालों में कविवर नर्मदाशंकर का नाम विशेष महत्त्व रखता है जब कि अष्टकलों से युक्त लोकप्रिय लावनियों की रचना करनेवाले कवियों में मणिलाल द्विवेदी का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। दलपतराम, कान्त आदि ने भी लावनी-लेखन में उल्लेखनीय योगदान दिया है। आधुनिक काल में राजेन्द्र शुक्ल, मनोज खंडेरिया आदि कवियों ने भी अपनी रचनाओं को लावनी के लालित्य से सजाने का प्रयास किया है।

3/2 श्रीनाथ जी फ्ट्लैस,
जामनगर 361008 (गुजरात)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतीक लावनी

□ डॉ० प्रतापनारायण टंडन

हिन्दी में विभिन्न विधाओं का जो साहित्य उपलब्ध होता है, उसमें लावनी का विशेष महत्त्व है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से लावनी लोक-साहित्य की एक गीतात्मक विधा है। शाब्दिक दृष्टिकोण से यह एक प्रकार का छंद होता है जो चंग बजाकर गाया जाता है। उसकी प्रतिष्ठा एक उपराग के रूप में है। व्यवहारतः लावनी शब्द का उच्चारण सभी भागों में होता है। प्रचलित अर्थ के अनुसार लावनी लोक-साहित्य के अन्तर्गत एक संगीतात्मक गीत विधा है जो चंग बजाकर गायी जाती है। यह एक लोक-रागिनी है और इसे लोक कवियों ने अंगीकार किया है। एक युक्ति के अनुसार चूंकि लावनी मन लगाकर गायी जाती है इसलिए इसे लावणी कहते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लावनी का विकास लोकगीतों के माध्यम से हुआ है। इसके नामकरण के विषय में यह मत प्रचलित है कि इसका सम्बन्ध मगध के समीपवर्ती देश लावणक से था और उससे नैकट्य के कारण ही इसका नाम लावनी पड़ा। कहा जाता है कि प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन ने एक मिश्रित रागिनी के रूप में लावनी को भी शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया था। इन्हीं के समय यह निर्गुण भक्त-धारा से संबद्ध हो गयी थी। यही कारण है कि कबीर, हस्तिराम, हरिदास, रसरंग और कृष्णानंद आदि ने लावनियों की रचना की थी। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी 'प्रेम तरंग' और 'प्रेम प्रलाप' में कुछ लावनियां प्रकाशित की थीं। इनका एक संग्रह पृथक से भी प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक 'फूलों का गुच्छा' है।

लावनी एक समग्र रूपात्मक लोक-साहित्यिक विधा है जिसमें भाव और कला पक्ष का संतुलित समन्वय होता है। व्यापक दृष्टिकोण से वह लोक-साहित्य का परिष्कृत रूप भी है जिसका अर्थ लावण्यमयी है। बारहवीं शताब्दी में हेमचंद ने 'डोम्बिका' नामक एक साहित्यिक विधा का उल्लेख किया है जो लावनी से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूपगत साम्य रखता है। इसे 'डोम' आदि की कला के रूप में भी स्वीकार किया गया है। मंदिरों के माध्यम से लावनियों ने शिष्ट समाज में प्रवेश किया। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि औरंगजेब के शासन काल में तुखन गिरि तथा शाहअलि नामक दो साधुओं ने लावनी गायन का आरम्भ किया था। 'कलगी', 'तुर्रा', 'टुंडा', 'अनगढ़' आदि लावनी के प्रमुख अंग है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिंदी में अमीर खुसरो की कविता में लावनी का प्रारम्भिक रूप दृष्टिगत होता है। खुसरो लोकगीत शैली पर कुछ लावनी उपलब्ध होती है। इसी प्रकार कबीर ने भी लावनी का प्रणयन किया और उसके माध्यम से न केवल खड़ी रंगत और छोटी रंगत के उदाहरण प्रस्तुत किये वरन् देश की अखंडता और एकता के लिए भी संदेश दिया।

तुलसीदास जी ने भी भगवान राम के उदात्त चरित्र को आधार बनाकर कुछ लावनियां लिखीं। इसमें सहज भक्ति का आदर्श रूप उपलब्ध होता है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लावनी का न केवल सृजन किया वरन् इस विधा को प्रोत्साहित भी किया। उनके समकालीन अन्य कवियों ने भी लावनियों का लेखन और गायन किया। कुछ ने तो लावनियों के दंगलों में भी भाग लिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने द्वारा सम्पादित पत्रिका कवि वचन सुधा में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी जिससे ग्राम्य साहित्य विभिन्न विधाओं के पोषण का संदेश था। उन्होंने लिखा था—जिन लोगों का ग्रामीणों से सम्बन्ध है, वे गांव में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहां कहीं ऐसे गीत सुनें उनका अभिनन्दन करें। इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छंदों में और असाधारण भाषा में बनें, वरंच गंवारी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कंगली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, अद्धा, चेती, होली, सांझी, लम्बे, लावनी, जाते के गीत, विरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्राम गीतों में इनका प्रचार हो।

उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय अर्द्धांश में लावनी एक लोकप्रिय विधा बन गयी थी। बाबू शिवनन्दन सहाय ने अपने ग्रन्थ भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि में उनके समय में इसके प्रचार-प्रसार के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा हैं। बाबू शिवनन्दन सहाय लिखते हैं—1872 ई० में बनारसी लावनीबाजों की लावनियां की बड़ी चर्चा थी। उसी समय उन्होंने 'फूलों का गुच्छा' नामक लावनियों का एक ग्रन्थ बनाया था। प्रतीत होता है कि 1882 ई० में उन पुस्तक की कोई नूतन आवृत्ति हुई थी क्योंकि खरक विलास में जो संस्करण हुआ है, उसमें हमारे चरित नायक की 1939 सम्वत की लिखी भूमिका देखी जाती है। श्री गुप्त ने भारतेन्दु के उक्त ग्रन्थ विषयक अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये—इस गुच्छे में उर्दू की 13 लावनियों है। रचनाएं अत्यन्त साधारण एवं सदोष हैं। प्रायः प्रत्येक लावनी में स्थान-स्थान पर सकता है, जो सारा मजा किरकिरा कर देता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अन्त्यानुप्रास भी बड़े बुरे हैं, यथा झूठा शिकवा लिखा गिला, चले, कहे, रहे, गले आदि। ये सभी रचनाएं लावनी की निर्गुण रहस्यावादी परम्परा का अनुसरण करती हैं।

हिन्दी लावनी साहित्य में प्रायः उदात्तवादी विचार-सूत्रों की निहिति भी परिलक्षित होती है। वास्तव में इससे यह ज्ञात होता है कि लावनी के कुछ रूप भक्ति युगीन हिन्दी साहित्य के विचारों से प्रेरित और प्रभावित हैं। उनमें जो प्रतीक और रूपक शैली बंदिश के रूप में मिलती है वह भी इसी तथ्य को स्पष्ट करती है। वास्तव में भक्ति युग में राम और कृष्ण काव्य-धाराएं प्राचीन भारतीय दार्शनिक सिद्धांतों से अनुप्राणित रहती हैं भक्ति युग में ही जिन संत कवियों ने जन्म लिया। उन्हीं के समान अधिकांश लावनी लेखक भी निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव ने भी उस अनुभव की अभिव्यक्ति को प्रखर बना दिया है जो लावनी में जीवन की अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त हुई है। इसी प्रकार लावनी साहित्य साम्प्रदायिक और धार्मिक विद्वेश का भी खण्डन करता है क्योंकि उसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का सायास रूप अभिव्यक्त होता है।

लावनी साहित्य के प्रणेता जाति, धर्म, वर्ग और सम्प्रदाय के बंधन को नहीं मानते। यही कारण है कि हिन्दू लावनीकारों ने मुसलमान और मुसलमान लावनीकारों ने हिन्दू जाति के महान मनीषियों को आधार बनाकर लावनियां लिखी हैं। उदाहरण के लिए मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आशक' ने 'वीर हकीकत राय' लावनी की रचना की। इसी प्रकार पंडित पन्नालाल और बाबू ओंकार प्रसाद आदि लावनी साहित्य के प्रणेताओं ने हसन और हुसैन की शहीदियां लिखीं।

हिन्दी के लावनी प्रणेताओं ने एकता का जो संदेश दिया है उसकी पृष्ठभूमि में समाज-सुधार के समानान्तर आत्मिक और आत्मानुमान की भावना मिलती है। उन्होंने जन-जागरण का संदेश देते हुए प्रकारान्तर से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता तभी संभव है जब साम्प्रदायिक विद्वेष समाप्त हो। संभवतः इसीलिए विभिन्न लावनीकारों ने गुरु की महिमा का वर्णन भी किया है क्योंकि वही संकुचित भावना से मुक्ति दिलाकर सत्य का बोध करा सकता है। लावनी की लाला लाल की निम्नलिखित पंक्तियां इसी तथ्य को प्रकट करती है—

विष्णु नाभी में और लिलाट में शिव को
महाराज हिये ब्रह्मा को धारूं जी।
गुरु को मन में, वसा न पल भर ध्यान बिसारूं जी
कर शीष सदा गुरु पद सरोज रज धारूं।
महाराज पर्व खल पाय विचारूं जी
गुरु सेवा उर धार ध्यान मगन हो गुरु गुन पुकारूं जी।
घट पट खोल्हे घर ध्यान धरम धर गुरु का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज—नितन्तर नेह निहारूं जी
चित चंचलता त्याग दसों इंद्रिन बल मारूं जी
छल छिद्र छोड़ मोड मन्द ममता से—महाराज जोग मारग विस्तारूं जी,

इसी प्रकार से लावनी का अर्थ मास्टर कन्हैयालाल : काल कवि ने भी गुरु की अन्यतम महिमा का वर्णन किया है क्योंकि वही विवेक से शिष्य को सत्य ज्ञान करा सकता है।

अखण्ड आतम राम काम उसका हर एक निराला है।
अलख अगोचर अजर अमर बिन कौन-सा पुतली वाला है।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह ज्ञात होगा कि गुरु-महिमा का वर्णन विवेक ज्ञान की दृष्टि से किया गया है। प्रायः संत कवियों के अनुकरण पर ही लावनीकार ने इस विषय का निरूपण किया है। इसी संदर्भ में यह भी उल्लेख है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश परोक्ष रूप से इन लावनीकारों में दिया है। इसकी प्रेरणा भी कबीर जैसे मनीषियों के काव्य में उपलब्ध लावनियों से ही मिलती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

तू सूरत नैन निहार अंड पारा है
तू हिरदे सोच विचार ये देश हमारा है।
पहले ध्यान गुरन का धारो सुरत निरत मन पवन चितारो
सुहेलना धुन नाम उजारो लहु सतगुरु दीदारा है।
सतगुरु दरस होय जब भाई, वह दे तुमको नाम चिताई
सुरत शब्द दोष भेद बताई, देख संख के पारा है
सतगुरु कृपा दृष्टि पहिचाना अंड सिखर वेहद मैदाना
सहज दास तह रोपा थाना अग्रदीप सरदारा है।

इस प्रकार से हिन्दी लावनी साहित्य में गुरु के द्वारा विवेक बुद्धि के ज्ञान और राष्ट्र प्रेम के समानान्तर यह संदेश दिया है कि विभिन्न सम्प्रदायों का वैमनस्य संकुचित भावना का द्योतक है। उससे मुक्त रहकर ही राष्ट्र की एकता और अखंडता सुरक्षित रह सकती है। विभिन्न लावनी काल में भी हिन्दू मुस्लिम एकता और सभी धर्म सम्प्रदायों की एकता और समानता का संदेश प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किया है।

रीडर, हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोरवंजी

□ डॉ० कर्ण राजशेषगिरिराव

1.1.0 कुरवंजे

'सुग्रीव-विजय' नामक यज्ञगान की भूमिका में श्री वेटूरि० प्रभाकर शास्त्री लिखते हैं—प्राचीन काल में द्रविड़ भाषाओं में विकसित दृश्य प्रबंध को 'कुरवंज' कहा करते थे। आंध्र, तमिल एवं कर्नाटक प्रदेशों के अरण्यों में रहने वाले आदिवासी चेंचु, कुख, कोव, कोय आदि उल्लेखनीय हैं। कुख-जाति के लोगों का चरण विक्षेप (अंजे = अड्गु = चरण = नृत्य विशेष) कुरवंजे कहलाता है। 'चिंदु', 'गंतु', 'गोंडिल', 'अंजे', 'अंग' इत्यादि नृत्त विशेष हैं। आंध्र प्रदेश में युग-युगों से श्रीशैल, इंद्रकील पर्वता आदि शैवमंदिरों; वेदाद्रि आदि नृसिह मंदिरों के पर्वतप्रांतों में वार्षिक महोत्सवों के शुभ अवसर पर जिसे यात्रा, जातर 'या' 'जात्र' कहते हैं। नागरिक जन इकट्ठा हुआ करते थे। इन नागरिकों के विनोदार्थ वहां के आदि वासी रात्रि के समय नृत्यों का प्रदर्शन कर धन का उपार्जन किया करते थे। आदिवासी 'कोरव' जाति के नृत्यों को 'कोरवंजु' कहते हैं। 'कोरवंजे' पहले नृत्त विशेष के लिए, तदनंतर नृत्य समन्वित लघु गेयों के लिए तदुपरांत 'कुरव' जाति वालों के लिए प्रयुक्त हुआ है। कुरव जाति वालों के ये नृत्य ही कमशः तत्-तत् पर्वत प्रांतों की स्थल-माहात्म्य कथाओं से पूर्ण; शिव एवं विष्णु कथाओं से परिपुष्ट हो गेय-नाट्यों का रूप धारण कर चुके हैं। तब कुहना-किरात के वेष में स्थित पार्वती-शिव-कथा संबंधी किरातार्जुनीय, नृसिह स्वामी-चेंचीत (लक्ष्मी) विवाह-संबंधी स्थल-माहात्म्य-कथाएं 'कुरवंजु' नाम से प्रसिद्ध थीं। निष्कर्ष यह है कि 'कुरव' नामक आदिवासियों का नृत्य विशेष ही 'कुरवंजे' है। यह पहले नृत्त-प्रधान था; बाद में गेय प्रधान हो, इसने नृत्य का रूप अपना लिया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.2.0 कुरवंजी

पर प्रो० नेलटूरि० वेंकटरमणय्य उक्त मंतव्य का खण्डन करते हैं। उनका कथन है कि यक्षगान का एक प्रकार ही 'कुरवंजि' है जिसमें 'कुरव' पात्र की प्रधानता रहती है। वास्तव में शब्द का असली रूप 'कुरवंजि' है; न कि 'कुरवंजे' यह तमिल शब्द है। कुरवंजि का अर्थ है कुरव-जाति संबंधी स्त्री। इसका समानार्थी शब्द तेलुगु में 'एरुकत' है। प्राचीन काल में तमिल यक्षगानों में कुरवंजी स्त्रीपात्र का प्रवेश होता था। इनकी प्रधानता से इसका नाम 'कुरवंजी' पड़ा है। 'कुरवंजी' पात्र का जिस यक्षगान में प्रवेश कराया जाता था, वह 'कुरवंजी' कहलाता है।

1.3.0 'कुरवे'

तोलक्कापियर के कथनानुसार कुरिंजि या पर्वत क्षेत्र के लोगों का पूज्य देव 'शेयोन' या षण्मुख है। तमिल प्रांत में 'शेयोन' या 'मुरुगन' की पूजा पर्वतवासियों द्वारा बड़ी धूमधाम से की जाती थी। 'कुरवर' नामक ये पर्वतीय जातियां स्वयं वन्य-प्राणियों को मारकर खाया करती थीं। ये पर्वतवासी अपने प्रिय देवता के सामने मधु, मांस, दाना आदि चढ़ाकर भैंस आदि की बलि भी देते थे। उनके ताजे रक्त में पके चावल को मिलाकर दुंदुभि, घंटा, मृदंग आदि विविध वाद्यों के युगपत् घोष के बीच उसे भगवान मुरुगन को अर्पित कर देते थे। रक्त-सिंचित धान्य, रक्तवर्ण के 'कांदल' पुष्प, पशु-बलि का रक्त-प्रवाह—इन चीजों से आवृत भयंकर वातावरण में पहाड़ी नर-नारी प्रार्थना गीत गाकर, 'कुरव' नामक नृत्य करते थे। सारांश यह है कि 'कुरवे' नामक नृत्य जो करते हैं, वे आदिवासी 'कुरव' कहलाते हैं। 'कुरवंजी' कुरव जाति की स्त्री है। ये लोग पहले नृत्त के रूप में अंग-विक्षेप ही करते थे जो ताल और लय के आश्रित थे। अन्तर इनमें गीत भी जोड़ दिये गये थे। अतः धीरे-धीरे भावानुकूल बन गये। 'कुरवंजी' पात्र का जिस यक्षगान में प्रवेश कराया गया है, वह 'कुरवंजी' कहलाता है। अर्वाचीन तेलुगु यक्षगानों में 'एरुक' (पुरुष), 'एरुकत' (स्त्री) आदिवासी पात्रों का प्रवेश पाया जाता है। इन्हें सिंगडु (पुरुष), सिंगी (स्त्री) भी कहते हैं। यों यक्षगानों एवं कुरवंजियों की रचना-विधा में विशेष अंतर नहीं है। कोरवंजी में 'एककत' पात्र का रहना अनिवार्य है जहां यक्षगानों में यह यादृच्छिक है।

2.0.0 प्रकार

कोरवंजी तीन प्रकार के होते हैं (1) प्रथम प्रकार में कोरव और कोरवंजी का प्रणय-वृत्तांत चलता है। चेंचुलक्ष्मी सिंगी या कोरवंजी की भूमिका लेती है। नृसिंह स्वामी कोरव या सिंगडु बनते हैं। तेलुगु में गरुडाचल माहात्म्य (मु) 'चोडिगानि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलापरमु' इस वर्ग के अंतर्गत हैं। शाहजीकृत 'किरातविलास' यक्षगान में पार्वती परमेश्वर 'एरुक' दंपति बनते हैं। चोडिगाने कलाप (मु) को 'एरुक' कथा भी कहते हैं। इसमें चोडिगाडु के पास एक 'कुटिलक' होता है। यह एक कुटिल लकड़ी है।

(2) द्वितीय प्रकार की कोरवंजियों में नायक 'एरुक' वेश में नायिका से मिलता है। उसकी हस्तरेखाओं की परीक्षा करता है। शीघ्र ही पति के मिलने का भविष्य कहकर उसको सांत्वना देता है। यही नहीं, पूर्वराग प्रदर्शन करता है। तेलुगु में 'रामुलवारि-अलक' 'सीता कल्याण (मु) इस वर्ग के अंतर्गत हैं।

(3) तीसरे प्रकार की वे हैं जिनमें मुख्य-कथा से कोई संबंध न रहने पर भी किसी-न-किसी तरह कथा से संबंध जोड़कर उसके द्वारा नायिका को 'एरुक' (जानकारी) कहना, एरुक जाति राजा का प्रवेश, हास्यपूर्ण वर्णन, एरुक दंपतियों के वाद-विवाद आदि का समावेश होता है। जैसे पार्वती कोरवंजी।

3.0.0 ऐतिहासिक विकास

मैसूर के राजा कंठीरवराजु (1704-1743) की कृति कोरवंजि कट्ले इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। इसमें आंध्र कोरवंजि, कन्नड़ कोरवंजि, प्राकृत कोरवंजि, तमिल कोरवंजि नामक चार कृतियां हैं। गिरिराज कवि (18वीं शताब्दी की कृति) 'राजमोहन कुरवंजि' में सिंगी एवं सिंगडु का प्रवेश है। 'कोरवंजु' नामक 'एरुकता' का प्रवेश अठारहवीं शताब्दी के गिरिराज आदि कवियों की कृतियों से प्रारंभ हुआ। नायक राजाओं की कृतियों में भी 'एरुकत' पात्र का प्रवेश रहा, पर 'कोरवंजी' नाम से व्यवहृत नहीं हुआ। महाराष्ट्र राजाओं के समय में 'एरुकत' पात्र का समावेश अनिवार्य रहा। इष्ट-देवता 'एरुकत' के वेश में आकर 'सौदे' (जानकारी) कहकर समागम का अयोजन करता है। राममोहन कुरवंजी में सिंगी एवं सिगड़ु का प्रवेश है। इस कुरवंजी दरुवु (ध्रुवा) में कुरंजि, सौराष्ट्र, पूरी, द्विजावन्ती, तोडि, नीलाम्बरी आतिराग सम्मिलित हैं। तरिगोंडा वेंकमांबा कृत शिव विलास में लक्ष्मी नारायण क्रमशः सिंगी-सिगड़ु के रूप में अवतरित होते हैं। 'गंगो-गौरी संवाद' में सिंगी-सिंगडु का संवाद मनोहर है। 'पोरिजातापहरण' में सरस्वती-ब्रह्मा कोरवंजी-कोरव का वेश धारण कर सत्यभामा के पास आते हैं। 'चेंचु' नाटक में 'चेंचु' आदिवासियों के कुलाचारों का उल्लेख है। यज्ञगान-कवयित्रियों के यक्षगानों में कोरवंज' संबंधी सोदे' (जानकारी) हृदयावर्जक है।

4.0.0 यक्षगान और कोरवंजी

गीत प्रबंधों का आधार यक्षगान है। यक्षगान में गेय धर्म है। इसमें राग एवं ताल दोनों का समावेश होता है। रेकु, दरुवु (ध्रुवा) पद, कीर्तन, द्विपद, पद्य, वचन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विन्नय (विनय पद), चूर्णिका आदि 'वचन' भेद भी होते हैं। इनमें एला आदि प्रबंधों का समावेश भी होता है। यक्षगानों का इतिवृत्त समाज में प्रचलित लोक-गाथाओं से भी लिया गया है। जैसे आरे मराठी (ळ) कथा, बालनागम्भा कथा, कांभोजराजु कथा आदि।

यक्षगानों एवं कुरवंजियों की रचना-विधा में विशेष अंतर नहीं है। कोरवंजियों में 'एरुकत' पात्र का रहना अनिवार्य है। यों यक्षगान का एक प्रकार ही कुरवंजी है जिसमें 'कुरवंजी' या पात्र की प्रधानता रहती है। जिसमें कोरवंजी 'एरुकत' आती है उसी यक्षगान को 'कोरवंजी' कहते हैं। कोरवंजियों में संवाद-शैली के कारण नाटकीयता अधिक परिलक्षित होती है। इनमें प्रणय-वृत्तांत, पूर्वराग, 'एरुक' (जानकारी) आदि का समावेश है।

एरुक (पुरुष), एरुकत (स्त्री), एनादि (अनादी), कुरुव, कोरव आदि आदिवासी हैं। 'एरुक' दवाएं बेचते हैं और भविष्य भी कहते हैं। ये सुअरों का पालन करते हैं। ढक्की, डवरू, कोय्य, चितारू (लकड़ी-सितार) आदि इनके प्रसिद्ध वाद्य हैं। ये कोल्लापुरम्मा (लक्ष्मी) की पूजा करते हैं। देशी कविता को तेलुगु में 'मधुर कविता कहते हैं। गंधर्व गान मार्गी एवं यक्षगान देशी शैली का है। यक्षगान में समवेत गान की ओर अधिक झुकाव है।

आचार्य (अवकाश प्राप्त)
आंध्र विश्वविद्यालय, वाल्तेर 530003

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड : दो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

पीलीभीत—भौगोलिक, ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक परिचय

पीलीभीत उत्तर प्रदेश के सबसे छोटे जनपदों में से एक है। यह 1879 में जिला बना। इससे पहले इस जनपद का कुछ भाग बरेली में तथा कुछ भाग शाहजहांपुर में शामिल था। इसमें पीलीभीत, पूरनपुर तथा बीसलपुर तीन तहसीलें हैं।

पीलीभीत के पूर्व में खीरी लखीमपुर, पश्चिम में बरेली, उत्तर में नेपाल तथा नैनीताल जनपद और दक्षिण में शाहजहांपुर जनपद हैं। पीलीभीत रुहेलखण्ड मण्डल का सबसे छोटा जनपद है।

नामकरण—लवाना क्षत्रियों अथवा बंजारा इतिहास के अनुसार पीलीभीत कचहरी के रूप में एक गांव था जिसका नाम मुड़िया था। सं० 1659 वि० में हुकुमचन्द लवाना ने पीलीभीत आबाद किया। उनकी उपजाति पीरिया थी। पीरिया बंजारों के सरदार ने चोर-डाकुओं से रक्षा पाने के लिए गांव के उत्तर की ओर एक पीले रंग की दीवार बनवाई। सरदार की उपजाति पीरिया तथा पीली दीवार (भीत) से मिलकर पीरियाभीत, पीरीभीत-पीलीभीत बना। दीवार के चिह्न आजकल भी नकटादाना चौकी के पास मिलते हैं। वह गांव तो नष्ट हो गया। अब जो नगर है, वह व्यवस्थित रूप से बसा हुआ पीलीभीत नगर है। हाफिज रहमत खां जब यहां आये तो यह क्षेत्र आबाद था और यहां देशपत बंजारा राज करता था।

जंगली का जनपद

पीलीभीत का बहुत बड़ा भाग जंगलों से घिरा हुआ है। इसमें 79063 हेक्टेयर में वन हैं।[1] इनमें साल और खैर के वृक्ष पाये जाते हैं। जंगलों में शेर, चीते, हिरण, बारहसिंहा पशु रहते हैं।

---

1. स्मारिका—प्रादेशिक विकास दल द्वारा प्रकाशित—1980

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदियां तथा झीलें

इस जनपद में शारदा, देवहा तथा गोमती तीन मुख्य बड़ी नदियां हैं।

1. **शारदा**—जनपद के पूर्वी-उत्तरी भाग में बहती है।

2. **देवहा**—यह पश्चिमी भाग में उत्तर दक्षिण में बहती है। पीलीभीत नगर इसी के किनारे बसा हुआ है। यही पुराणों की देवहुति है—ऐसा कहा जाता है।

3. **गोमती**—पूरनपुर तहसील में माधोटांडा में इसका उद्गम स्थान फुलहर झील अथवा फुलहरा ताल है। यह स्थान गायों के लिए प्रसिद्ध है। इस कारण इस नदी का नाम गोमती पड़ा। जहां फुलहरा ताल है—वहां से नदी का उद्गम नहीं दिखायी देता। इस कारण कहा जाता है कि यह नदी गुप्ती है, जो आगे चलकर नदी रूप में दिखायी देती है। यह जनपद में 29 किलोमीटर में बहती है।

झीलें

1. **फुलहर**—यह झील माधो टांडा में है।

2. **महादेव झील**—जमुनिया में है। इससे खन्नौत नदी निकली है। खन्नौत खोदकर निकाली गयी थी।

3. **वारी झील**—विहौरा कला है। इससे अमेड़ी नदी निकलती है। जो 22 किलोमीटर बहने के बाद माला नदी से मिल जाती है।

4. **अनवरगंज झील**—विठौरा कलां में है। इससे संडा नदी निकलती है। जो 19 किलोमीटर बहने के बाद देवहा नदी से मिल जाती है।

5. **बालपुर झील**—बालपुर झील से अप्सरा अथवा अपसरहा नदी निकलती है।

जनसंख्या

1981 की जनगणना के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या 10,10,839 है, जिसमें 5,47,209 पुरुष और 4,63,630 स्त्रियां हैं। कुल जनसंख्या की 19 प्रतिशत पुरुष महिलाएं शिक्षित हैं। पीलीभीत नगर की कुल जनसंख्या 88,413 है।

प्राचीन इतिहास

इस जनपद के इतिहास के बारे में अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। जनश्रुतियों के आधार पर यह माना जाता है कि यह जनपद हस्तिनापुर के चंद्रवंशी राजाओं के अधीन था। इसके पश्चात् पांचाल राज्य के अन्तर्गत रहा। श्री कमलेश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र इस जनपद को पांचाल के अन्तर्गत मानते हुए लिखते हैं—'उत्तर प्रदेश के नैनीताल जिले के दक्षिणी भाग और मुरादाबाद, पीलीभीत, बरेली, बदायूं, शाहजहांपुर आदि का पूर्वी भाग तथा इटावा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, एटा का दक्षिणी भाग प्राचीन काल में एक राज्य अथवा प्रदेश था और महाभारत के प्रवर्त्तक द्रुपद इसके सम्राट थे।'[1] अनुश्रुति के अनुसार द्रुपद के भतीजे बसु की गढ़ी पीलीभीत से लगभग 16 किलोमीटर बीसलपुर तहसील के बरखेड़ा में थी।

मध्यकालीन

12वीं शती में यहां कटेहरिया राजपूतों का शासन था। जिस क्षेत्र को अब रुहेलखण्ड कहते हैं और जिसका मुख्यालय बरेली है वह कटेहरिया राजपूतों के राज्य करने के कारण कठेर कहलाता था। इन पर मुस्लिम आक्रमण होते रहे फिर भी 16वीं शती तक कठेरिया का राज्य बना रहा। शेरशाह और सिकन्दर लोदी से इनका संघर्ष हुआ।

कन्धार में मोती बाबा उर्फ महमूद खां[2] रहते थे। इनके पांच लड़कों में से एक का नाम शाहआलम खां था। पिता की मृत्यु के बाद शाहआलम को सम्पत्ति के बंटवारे में दाऊद खां नाम का गुलाम मिला। शाहआलम ने सन्तान न होने के कारण इस गुलाम को बेटे की तरह माना। यह गुलाम मालिक की आज्ञा के बिना भागकर औरंगजेब के बेटे बहादुरशाह के समय भारत आया और कठेर क्षेत्र तक आ गया। बहादुर होने के कारण इसने ख्याति प्राप्त की। इसने बांकोली गांव के एक 7 वर्ष के जाट के लड़के को मुसलमान बनाकर उसका नाम अली मोहम्मद खां रखा।

दाऊद खां की ख्याति से अफगानों का एक संगठन खड़ा हो गया और मालिक शाह आलम खां भी कठेर आ गये। दाऊद खां ने उनका सम्मान किया और फिर स्वदेश वापस भेज दिया। **इसी समय शाह आलम के एक लड़का 1709 में हुआ। जो आगे चलकर हाफिज रहमत खां के नाम से प्रसिद्ध हुआ।** दाऊद खां को कुमायूं के राजा ने विश्वासघात का शक होने के कारण धोखे से कत्ल करा दिया। उस समय अली मोहम्मद खां की आयु 14 वर्ष थी। अफगानों ने कम आयु होने पर भी दाऊद खां की मृत्यु के बाद अली मोहम्मद को अपना सरदार मान लिया। पठानों ने अली मोहम्मद को सरदार तो मान लिया परन्तु हिन्दू से मुसलमान तथा एक गुलाम का दत्तक पुत्र होने के कारण उसका अफगानों पर विशेष प्रभाव नहीं

---

1. बचनेश अभिनन्दन ग्रंथ—पृ० 94
2. इनके पिता का नाम, जो हाफिज रहमत खां के परदादा हुए—शेख शहाबुद्दीन उर्फ कोटा बाबा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इस कारण उसने हाफिज रहमत खां को भारत आने के लिए आमन्त्रित किया। हाफिज साहब हाफिजे कुरान होने के कारण इस समय तक लोकप्रिय भी हो गये थे। वे भारत आये। उन्होंने अली मोहम्मद खां की सेना में वरिष्ठ अधिकारी के रूप में कई लड़ाइयां लड़ीं और अपनी वीरता तथा योग्यता का सिक्का जमा दिया।

इतिहासकारों का मत है कि दाऊद खां अफगानिस्तान के एक पहाड़ी इलाका 'रोह' से चलकर आया था, इस कारण उनके उत्तराधिकारी रोहिल तथा उनके द्वारा अधिकृत क्षेत्र रोहिलखण्ड कहलाया।

कठेर के जागीरदारों ने रोहिलों की शिकायत देहली भेजी। देहली से 1742 में राजा हरनंदन (खत्री) को रोहिलों को दबाने के लिए भेजा गया। इस लड़ाई में हाफिज रहमत खां ने हरनंदन को हरा दिया। अली मुहम्मद ने पायन्दा खां को पीलीभीत भेजा जिसने बंजारा सरदार देशपत को हरा दिया। हाफिज रहमत खां को पीलीभीत का इलाका राजा हरनन्दन को हराने के बदले पुरस्कार में मिला। देहली सरकार ने भी अली मोहम्मद को रुहेलखण्ड के गवर्नर के रूप में मान्यता दे दी। 1748 में अली मुहम्मद का स्वर्गवास हो गया और उसकी सम्पत्ति उसके सबसे छोटे बेटे सादुल्ला खां को मिली क्योंकि उसके दो बड़े बेटे अहमदशाह दुर्रानी द्वारा कैद कर लिये गये थे जो अफगानिस्तान में थे। हाफिज साहब सादुल्ला खां के संरक्षक हो गये!

आगे चलकर पीलीभीत तथा अधिकांश बरेली हाफिज साहब को मिल गयी। उन्होंने पीलीभीत को अपना निवास-स्थान बनाया और बरेली को राजधानी। पीलीभीत का नाम हाफिजाबाद रखा जो प्रचलन में नहीं आ सका। उन्होंने पीलीभीत और बरेली के बीच एक गांव हाफिजगंज बसाया।

हाफिज रहमत[1] खां ने नगर की सुरक्षा हेतु 1762 में चारों ओर ऊंची दीवार बनवाई। यह भी कहा जाता है कि 1762 में अकाल पड़ा। अकाल पीड़ित मेवातियों की सहायतार्थ दीवार बनवाई थी जिससे उन्हें रोजगार का अवसर प्राप्त हो सके। सन् 1770 में दीवार पक्की करायी गई। अपने अच्छे शासन के कारण हाफिज रहमत खां

---

1. हाफिज रहमत खां खानदानी दर्वेश थे। लेखक ने 'हयाते हाफिज रहमत खां' किताब में हाफिज साहब का चित्र देखा है। वे खुदा के ध्यान में मग्न हैं। जामा मस्जिद के इमाम गाजी नूरुलहसन हमें बताते हैं कि हाफिज साहब को शहादत की बात एक फकीर ने बता दी थी। अंग्रेजों से लड़ते समय वे समझ गये कि उनकी शहादत का वक्त आ गया है। बच्चों से कह दिया—मेरे बाद मुकाबला मत करना वरना जुल्मों-सितम के शिकार बनोगे। उनके जब्बा (पहनने का एक प्रकार का वस्त्र) पर कुरान शरीफ लिखा हुआ था।—सं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने विशेष ख्याति प्राप्त की। हाफिज रहमतखां ने 1769 में दिल्ली की जामा मस्जिद की प्रेरणा से पीलीभीत में भी दर्शनीय जामा मस्जिद बनवाई। जिसका विस्तृत वर्णन हमने आगे के पृष्ठों में किया है। हाफिज साहब का बनवाया हुआ हमाम दीवाने आम के स्थान पर वर्तमान रा० ललित हरि आयुर्वेदिक कॉलेज है। जहां आज जिला अस्पताल है वह उनका महलसरा तथा जनाने अस्पताल के स्थान पर दीवान खास था। फौज की छावनी के स्थान पर आज ड्रमंडगंज बाजार है। फीलखाना मोहल्ले में हाफिज साहब के हाथी रखे जाते थे। हाफिज रहमत खां ने खकरा नदी का पुल भी बनवाया।

मरहठों ने 1771 में हाफिज रहमत खां पर चढ़ाई की। हाफिज रहमत खां ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सहायता प्राप्त की। मरहठे पराजित हुए परन्तु हाफिज को नवाब से सहायता के बदले 40 लाख रुपये देने का वचन देना पड़ा जिसे वे पूरा न कर सके। इस कारण नवाब ने अंग्रेजों की सहायता से हाफिज पर आक्रमण कर दिया। हाफिज साहब ने दोनों की सेना का जमकर मुकाबला किया परन्तु 23-4-1774 को हाफिज साहब शाहजहांपुर जिले के मीरानपुर कटरा में लड़ते हुए मारे गए। इसके पश्चात् पीलीभीत का क्षेत्र अवध शासन के अन्तर्गत आ गया। पर अंग्रेजी सेना का खर्च न दे पाने के कारण 1801 में नवाब वाजिद अली शाह ने इस क्षेत्र को यानी पूरे रुहेलखण्ड को अंग्रेजों को दे दिया। 10 नवम्बर 1801 को पीलीभीत ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में आ गया और पीलीभीत की व्यवस्था बरेली के कलक्टर के अधीन हो गयी।

आधुनिक

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने छलकपट से रोहिलखण्ड पर आधिपत्य जमाया था, जनसाधारण ने इसे सहज में स्वीकार नहीं किया। होल्कर के यहां नौकरी करने वाला पिण्डारी सरदार अमीर खां 1805 में जहानाबाद को लूटता हुआ पीलीभीत तक आया था—अंग्रेजी सेनाओं से उसकी टक्कर हुई। वह हारकर लौट गया। इसी समय बीसलपुर के जंघारा राजपूतों ने मानसिंह और मज्जासिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों से लोहा लिया। इसमें दोनों नेता मारे गए। 1816 में बरेली में एक बड़ा उपद्रव हुआ जिसमें पीलीभीत के लोग भी बरेली पहुंचे, परन्तु यह उपद्रव भी कठोरता से दबा दिया गया।

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में भी इस क्षेत्र का योगदान रहा। पीलीभीत के बड़े अधिकारी कार्मिशेल अपने कुछ वफादारों की सहायता से सितारगंज होते हुए हल्द्वानी पहुंच गये। पीलीभीत में अराजकता फैली हुई थी। व्यवस्थित नेतृत्व नहीं था। हाफिज रहमत खां के नाती खान बहादुर खा ने अपने को बरेली का नाजिम घोषित कर दिया था। उन्होंने अंग्रेजों से अन्तिम मुकाबला न्यूरिया हुसेनपुर के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास किया परन्तु सफलता नहीं मिली। परिस्थितियां बदलने पर बरेली में छिपे नाना साहब बीसलपुर (अब पीलीभीत जिले की तहसील) होते हुए अवध पहुंचे। 12 मई 1858 को पीलीभीत पुनः अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

अंग्रेजों ने अपने वफादारों को इनाम दिये और स्वतन्त्रता सेनानियों को फांसी। 'खकरा नदी पुल के पास फांसियों की पुष्टि केवल इस बात से होती है कि 1957 में जब 1857 की क्रांति की शताब्दी मनाई गई थी तो सरकारी तौर पर इस स्थान को मान्यता दी गई थी। यहां शहीदों के नाम पर दीप जलाये गये थे।'[1]

पुरातात्त्विक

बलई खेड़ा—जहानाबाद कस्बा के पास यह कभी दानी असुर राजा बलि का राजमहल था। यहीं पर राजा बलि द्वारा बनवाया हुआ प्रसिद्ध चक्र सरोवर है जो जन-सामान्य में चकर तीर्थ के नाम से जाना जाता है। कहा जाता है कि यहीं भगवान श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र ने जल में समाधि ली थी। यहां एक प्राचीन शिव मंदिर है जिस पर प्रतिवर्ष जेठ के दशहरे पर मेला लगता है।

चक्र सरोवर के निकट ही एक क्विटल भार की मथानी मंदिर में रखी हुई है। विशाल आम वृक्ष के नीचे गाय, बछड़े व सांड़ की खण्डित प्रतिमाएं हैं।

अटा परसुआ—खेड़े के पश्चिम दिशा में 6 कि० मी० पर बलि के गवाध्यक्ष परसुआ ग्वाल की अटारी है जो अटा परसुआ नाम से विख्यात है। यह अटा 1400 फीट लम्बा 300 फीट चौड़ा तथा 35 फीट ऊंचा है। टीले के पूर्वी छोर पर विशाल मंदिर के भग्नावशेष मिलते हैं।

एक गुमनाम नगर—जहानाबाद के ही आगे अमरिया रोड पर बालपुर गांव के नीचे एक गुमनाम नगर दबा हुआ है। युवा पत्रकार **श्री विश्वमित्र टंडन** की रिपोर्ट के अनुसार, 'सरदार सुच्चासिंह को अपने मकान की नींव खोदने में भगवान महावीर की भव्य मूर्ति मिली। यह स्थान सितारगंज चीनी मिल से करीब 5 कि० मी० है।

मूर्ति हल्के भूरे रंग के पत्थर की बनी है। वह 25 इंच ऊंची व 20 इंच चौड़ी है। वजन करीब एक कुन्तल है। मूर्ति के ऊपर छत्र बना है और दायें-बायें देवी-देवता अंकित हैं। नीचे शेर है। मूर्ति दसवीं शताब्दी के आस-पास की लगती है।

बालपुर में पुरावशेष मिलने की यह पहली घटना नहीं है। चार कि० मी० फैले इस क्षेत्र में 12 इंच लम्बी, साढ़े सात इंच चौड़ी व सवा दो इंच मोटी बीते वक्त की ईंट खूब मिलती हैं।···सरदार सुच्चासिंह जहां निर्माण कार्य के लिए नींव

---

1. शिव सुमरन लाल जोहरी, स्वतन्त्रता संग्राम में पीलीभीत का योगदान 21-22।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुदवा रहे हैं वहां दूर नीचे तक पुरानी ईंटों की दीवार दिखायी दे रही है।

गांव में जगह-जगह दीवारें उभरी हुई हैं जो किसी गुजरे जमाने के नगर का आभास देती हैं। एक अन्य सरदार पूरनसिंह के खेत में दस गज व्यास का एक कुआं भी मिला है।'

अमरिया रोड पर ही मेना डांडी के निकट एक प्राचीन ताल के अवशेष भी मिले हैं। बालपुर में कछुआ व त्रिशूल युक्त सिक्के भी मिले बताये जाते हैं।

राजा वेणु का किला

पूरनपुर में शाहगढ़ स्टेशन से लगभग 1 कि० मी० दूर एक टीला है जो राजा वेणु के किले का अवशेष बताया जाता है।

मैनाकोट

पूरनपुर में ही कलीनगर के पास ऐतिहासिक मैनाकोट है। लोकगाथा और लोकजीवन में जीवित रानी मैनरा की गढ़ी यहां है। रानी मैनरा का विवाह जहानाबाद के पास अटा बनाकर रहने वाले प्रसिद्ध परसू ग्वाल से हुआ था। मैनाकोट से जंगल लगा हुआ है। जंगल में रानी का किला है। यहीं कांच का कुआं है। रानी मैनरा 56 हजार गायों के पानी पीने के लिए बनवाया गया सागर ताल खस्ता हालत में है। यह एक एकड़ में था। रानी मैनरा इस ताल के पास ही सती हुई थी। मैनरा जहां सती हुई उस स्थान को सतमाना कहा जाता है। मैनरा की गढ़ी के चारों ओर 40 मीटर की खाई बनी थी।

मैनाकोट के निवासियों ने लेखक को बताया कि यहां चना नहीं होता। किंवदन्ती के अनुसार चने के पौधे में रानी का बिछुआ उलझ गया था। इस कारण रानी ने शाप दे दिया जिससे चना नहीं होता।

लोक जीवन में प्रचलित लोकगाथा के अनुसार थोंदे परसे पेमराजा के लड़के थे। इनके मां-बाप का स्वर्गवास बचपन में हो गया तो वे अपने पिता के आदेशानुसार अपनी मामी सांवरी, जो बांगर में रहती थी, के पास चले गये। मामी सांवरी ने इनका पालन-पोषण किया, लोकगाथा की प्रारम्भिक पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

'दिन औ मुहूरत मेरे राम परसुआ ने कर दओना।
होत सकारे गये बांगर को ना।
एक कंधा अपनी बहिन कौ बैठारो ना।
पकरि उंगरिया थोदियै लै गये ना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जे भूखे पियासे विपति के मारे ना
औ जाय के पहुंच गये ताल फुलहरा[1] ना

परसुआ के 24 रानियां थीं जिनमें एक मैनाकोट की मैनरा भी थी। परसे आल्हा के प्रसिद्ध चरित्र मलखान के मित्रों में से थे। ये अहीर जाति के थे।

मैनरा बड़ी बहादुर थी। परसे से उसका विवाह डलई-डलवे में अर्थात् शिशु अवस्था में ही हो गया था। मैनरा के पिता का नाम धीर पुरविया था। सागर ताल धीर पुरविया ने बनवाया था।

कुछ लोगों ने ईसाई कोट के साथ मैनाकोट की कहानी जोड़ दी है। पर लोकजीवन में और लोकगाथा में ईसाईकोट नहीं है। हमारे विचार से इतिहास के पुरावशेषों तथा लोकगाथा के आधार पर रानी मैनरा का सम्बन्ध ईसाईकोट से नहीं हो सकता। मैनरा कोट साहब की पत्नी थी—इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

ब्रिटिश शासन काल में मैना कोट नवाब अली खां की रियासत थी।

देवल का मन्दिर

बीसलपुर तहसील में द्यौरिया के पास पीलीभीत से दक्षिण पूर्व इलाबांस गांव के पास देवल का मन्दिर है। 'कल्याण' तीर्थांक में इसके बारे में लिखा है, 'पूर्वोत्तर रेलवे की एक शाखा पीलीभीत से शाहजहांपुर गयी है। इस शाखा पर पीलीभीत से 23 मील पर बीसलपुर स्टेशन है। इस स्टेशन से दस मील पूर्वोत्तर गढ़गजना तथा देवल के प्राचीन खण्डहर हैं। इन खण्डहरों से भगवान वराट की एक प्राचीन मूर्ति मिली है जो देवल के मन्दिर में है। कहा जाता है कि महर्षि देवल का आश्रम यहीं था।'[2] इन पंक्तियों का लेखक जब इलाबांस इस मूर्ति को देखने गया तो पता चला कि चोरों का गिरोह उस मूर्ति को रात में खोदकर ले गया जिसका आज तक पता नहीं चला।

मन्दिर में दक्षिण की दीवार में एक शिलालेख लगा हुआ है। इसकी खोज मि० एच० एस० वूडर्सन ने सन् 1829 में की थी। इसका सम्पादन श्री जेम्स पिंसेप ने किया तथा इसका प्रकाशन जनरल कनिंघम ने कराया। इसका सटीक अनुवाद श्री बूहलर ने किया। यह शिलालेख संस्कृत भाषा में है। इसकी लिपि कुटिल है जो 600 से 1000 ई० की है जो गुप्त लिपि से नागरी लिपि तक की जोड़ की कड़ी है। बूहलर के अनुसार—'and this has been written by the son of Vishnuhari, a Gonda clerk called Jakshaditya, who

---

1. माधौटोडा के पास फुलहरा झील जिससे गोमती नदी निकली है।
2. कल्याण तीर्थांक, पृ० 108।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

knows crooked letter. (यह कुटिल लिपि के ज्ञाता गोड़ लिपिक, विष्णुहरि के पुत्र जक्षादित्य के द्वारा लिखी गयी थी।) डॉ० बूहलर के अनुसार इसकी लिपि उत्तर में प्रयुक्त नागरी के समान है। इसकी भाषा उच्च श्रेणी की संस्कृत है जिसमें रूपकों आदि का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण शिला की भाषा पद्यात्मक है जो विभिन्न छन्दों के 27 पदों में लिखी गयी है। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से यह शुद्ध नहीं है, किन्तु इसके रचियता कवि मह शिवरुद्र जो वस्त (Vast) के ब्रह्मचारी गोत्र के हैं, के पुत्र एक नाहिल हैं। नाहिल (Nahila) ने स्वयं को एक अच्छा रचनाकार और छन्दशास्त्र का ज्ञाता सिद्ध किया है।[1]

यह भी कहा जाता है कि शिलालेख का निर्माण च्यवन ऋषि के वंशज सरदार लल्ला और उनकी पत्नी लक्ष्मी ने 1049 वि० में कराया था। इनको मंडलपति कहा जाता था। यह भी कहा जाता है कि यह शिलालेख नाहिल (शाहजहांपुर जनपद का प्रसिद्ध कस्बा) के राजा की प्रशस्ति में लिखा गया था।

डॉ० बूहलर के कथन में शिवरुद्र के पुत्र को नाहिल कहा गया है। हो सकता है कि इस नाहिल का सम्बन्ध नाहिल कस्बा में राज्य करने वाले राजपरिवार से रहा हो। विद्वानों की दृष्टि इस दिशा में विधिवत अध्ययन तथा शोध की ओर जानी चाहिए जिससे इतिहास का एक बड़ा सत्य उजागर हो सके।

देवल में देवी के मन्दिर पर हर अमावस्या को मेला लगता है पर चैत्र में यह मेला देखने योग्य होता है। नैनीताल की तराई में रहने वाले बुक्से चैत के मेले में विशेष रूप से आते हैं। वे देवल की देवी को बहुत मानते हैं।

अन्य महत्त्वपूर्ण स्थल

बीसलपुर तहसील के बिलसंडा कस्बे में **राजा मोरध्वज** का टीला है।

इलाबांस के पास जंगल में राजा वेणु के किले के अवशेष बताए जाते हैं। पीलीभीत गजेटियर के अनुसार राजा वेणु ऐतिहासिक व्यक्तित्व है पर उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं है।[2]

जनश्रुति के अनुसार अमरा करोड़ आल्हा के गुरू अमरा से सम्बन्धित हैं।

1. पीलीभीत गजेटियर, पृ० 148-49।
2. वही, पृ० 148।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलीभीत का प्रसिद्ध ऐतिहासिक कस्बा जहानाबाद

☐ अभीत

जहानाबाद पीलीभीत जनपद का प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण कस्बा है। यहां पहले गांजर का वन था। इसी जंगल में लहा वंश के हरीसिंह वीरसिंह ने बिरियागढ़ का दुर्ग बनाया था। स्वामी अनुभवानन्द के अनुसार बिरियागढ़ ही बलई का खेड़ा है। इनके अनुसार वीर से व बनाकर तथा लहा खानदान से ल लेकर वलई खेड़ा शब्द बना दिया गया है। इससे 11वीं सदी का सिक्का मिला जिसमें वीर शब्द मौजूद है।[1] परन्तु किंवदन्ती के अनुसार 'विलईखेड़ा' प्रसिद्ध असुर दानी राजा बलि का राजमहल था। आल्हा-ऊदल ने इसी विरियागढ़ पर चढ़ाई कर हरीसिंह को हराया।

मुगल शासक जहांगीर नूरजहां के साथ आगरा, मथुरा, कासगंज, बरेली होता हुआ गांजर के जंगल में शिकार खेलने आया। जहांगीर के जफरशाह नाम के कुत्ते को किसी चीते ने मार डाला। इसकी लाश को देखकर नूरजहां ने जंगल काटकर शाही जहान आबाद कराने का हुक्म दिया। नूरजहां के आदेशानुसार शाही जहानाबाद बसाया गया। जो आज जहानाबाद के नाम से प्रसिद्ध है। जहानाबाद में जहांगीर की बनवाई जामा मस्जिद तथा ईदगाह आज भी हैं।

पीलीभीत जिला बनने से पहले जहानाबाद बरेली की तहसील थी। हिन्दुओं ने कस्बे की आवादी के पास ही देवस्थान बनवाये। उत्तर-पश्चिम कोने में मोटिया महादेव का मन्दिर पूर्व-उत्तर कोने में रुखड़ बाबा का मन्दिर बनवाया गया।

1. स्वामी अनुभवानन्द दण्डी—वेदांग विद्यालय गुरुकुल मनुकामना, जहानाबाद का इतिहास, पृ० 8

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुखड़ बाबा बहुत बड़े सिद्ध थे।[1] दक्षिण दिशा में मनुकामना नाम का प्राचीन स्थान है। किंवदन्ती के अनुसार आल्हा-ऊदल यहीं रुके थे और कुछ दिनों यहां रहकर पीलीभीत होते हुए पिथौरागढ़ प्रस्थान किया था।

किसी समय जहानाबाद की शान निराली थी। यहीं दुर्गासहाय सुरूर जैसे महान शायर उत्पन्न हुए जिन्हें साहित्य संसार सुरूर जहानाबादी के नाम से जानता है। अपने ज्योतिष ज्ञान से औरंगजेब को प्रसन्न करने वाले पं० सनेही लाल जी भी यहीं उत्पन्न हुए। जहानाबाद के सैयद मुजफ्फर अली को लखनऊ के नवाबों ने वाह वल्ला का फतवा देकर अपना सिपहसालार बनाया था। फकीर सैयद बदरुल हसन हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रतीक थे। इन्हीं की प्रेरणा से हिन्दू मुसलमानों ने सन् 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा। इसमें अंग्रेज सरदार बटर मारा गया था।[2]

पीलीभीत के जिला बनने पर जहानाबाद का महत्त्व कम होता गया। आज जहानाबाद पुरानी स्मृतियों को संजोए खस्ता हालत में है। स्वामी अनुभवानन्द के प्रयत्न से मनुकामना मन्दिर पर गुरुकुल चल रहा है। यह आचार्य तक मान्यता प्राप्त है।

---

1. इन पंक्तियों के लेखक के परबाबा श्री कन्हईलाल शुक्ल रुखड़ बाबा के भक्त थे। उनके चमत्कारों की अनेक कहानियां प्रसिद्ध हैं।
2. स्वामी अनुभवानन्द—वेदांग विद्यालय गुरुकुल मनुकामना जहानाबाद का इतिहास, पृ० 12

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलीभीत नगर के पुरातात्विक गौरव

□ अभीत

मन्दिरों और मस्जिदों की दृष्टि से पीलीभीत को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। इनमें से अनेक ऐसे हैं जो पुरातात्विक महत्त्व के हैं। पुरातत्त्व विभाग ने विशेष रूप से मन्दिर गौरी शंकर तथा जामा मस्जिद को ले लिया है।

मन्दिर गौरी शंकर

लगभग ढाई सौ वर्ष पुराना मन्दिर है। यह मन्दिर मोहल्ला खकरा में देवहा और खकरा नदी के पास स्थित है। वर्तमान पुजारी पं० हरप्रसाद शर्मा के अनुसार उनके वंशज पं० दिलेराम, जिनकी आठवीं पीढ़ी में हरप्रसाद जी हैं और जिनकी अवस्था लगभग 65 वर्ष है, कुछ साधुओं के साथ मथुरा से घूमते-घामते इधर आये। जहां गौरी शंकर मंदिर है वहां पहले जंगल था। ग्वाला लोग गायें-भैंसें चराया करते थे। यहीं जंगल में रात्रि में सोते समय दिव्य स्वप्न हुआ कि यहां पर शंकर जी हैं। प्रातः उन्होंने दिव्य मूर्ति के दर्शन किए। उन्होंने ग्वालों के साथ मिलकर चबूतरा बना दिया। पूजा प्रारम्भ हो गई। धीरे-धीरे जनता की सहायता से मन्दिर का निर्माण होता रहा।

यहां मुख्य मन्दिर गौरी शंकर जी का है। इसके अतिरिक्त अन्य देवताओं के मन्दिर हैं। जैसा अन्य मन्दिरों में भी होता है कि मुख्य मूर्ति के बाद अन्य देवताओं की भी स्थापना कर दी जाती है। यहां भी हनुमान जी, भैंरों जी, दुर्गा जी, गणेश जी की मूर्तियों की स्थापना हुई।

प्रत्येक वर्ष शिवरात्रि, रक्षाबन्धन और सावन के प्रत्येक सोमवार को मेला लगता है। मेला एक दिन का होता है और नगर के श्रद्धालु आते हैं।

मन्दिर से बाहर का हिस्सा धर्मशाला है। मन्दिर तथा धर्मशाला जिस स्थान पर हैं। वह जमीन द्वारिकादास बंजारे की थी। यह $6\frac{1}{2}$ बीघा है, जिसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारिका दास ने दान दिया था। धर्मशाला के पूरब तथा दक्षिण की ओर दो बड़े-बड़े द्वार हैं। पूरब का गेट और पश्चिम के सात कमरे राजा लालता प्रसाद ने बनवाये थे। दक्षिण का गेट, गेट के पास के 7 कमरे लाला मोहन लाल ने, उत्तर की ओर के साहू राम स्वरूप जी ने बनवाये।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुजारी जी के कथन में सत्य का अंश कहां तक है? कुछ लोगों ने मन्दिर का निर्माणकर्ता हाफिज रहमत खां को माना है। परन्तु उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया है। यदि हाफिज जी ने मन्दिर का निर्माण कराया होता तो जिस प्रकार जामा मस्जिद की निर्माण तिथि आदि का विवरण प्राप्त है उसी प्रकार मन्दिर की निर्माण तिथि आदि का भी विवरण लिखित रूप में प्राप्त होता। परन्तु ऐसा नहीं है। इसके साथ ही एक बात और है—लोक-जीवन में मन्दिर दो प्रकार से जाने जाते हैं—निर्माणकर्ता के नाम से तथा देवता के नाम से—यथा बिड़ला मन्दिर, चुन्ना मियां का मन्दिर, राजा साहब का मन्दिर, खूब चन्द का मन्दिर, अलखनाथ का मन्दिर, बिहारी जी का मन्दिर, काशी विश्वेश्वर नाथ जी का मन्दिर, जय सन्तरी देवी का मन्दिर, गौरी शंकर का मन्दिर आदि-आदि। इसका अर्थ यह हुआ कि जो मन्दिर देवताओं के नाम से प्रसिद्ध हैं, निश्चय ही उन्हें किसी व्यक्ति विशेष ने नहीं बनवाया। वे जनता के सहयोग से बने तथा इस दृष्टि से पुजारी जी के कथन में सत्यांश प्रतीत होता है। दूसरे, मन्दिर का अर्थ चारदीवारी अथवा इमारत नहीं है। मन्दिर देवता का स्थान है अथवा वह स्थान है, जहां देवता की स्थापना हुई अथवा श्रद्धालुओं ने जिस स्थान को इस दृष्टि से श्रद्धा का रूप दिया। आज भी जंगलों में स्थान विशेष पर गाड़ीवान घास, फूस, पत्थर रखकर श्रद्धावनत होते हैं, ऐसी ही खरियाई देवी का मन्दिर मैनाकोट के पास जंगल में मैंने देखा है। यहां किसी प्रकार की इमारत नहीं स्थान है, जहां सभी गाड़ी वाले पूजा करते हैं। हो सकता है ऐसी ही अवस्था काफी समय तक गौरी शंकर मन्दिर की रही हो। ग्वाल-बालों ने चबूतरा बनाया होगा और अपनी श्रद्धा अर्पित की होगी, अपने पशुधन की रक्षा चाही होगी और भगवान शिव जिन्हें जंगल पसन्द है, प्रसन्न हो गये होंगे। अपने अनुकूल पुजारी पाकर स्वप्न में दर्शन दिया होगा कि विधिवत प्रबन्ध करो। अतः इन सम्भावनाओं और उपलब्ध सदृश्यमूलक प्रमाणों के आधार पर हम यह मानने को विवश हैं कि मन्दिर जनता द्वारा बनवाया गया होगा, व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं। जिस प्रकार अन्य सज्जनों ने मन्दिर के विस्तार में योग दिया—उसी प्रकार हाफिज साहब ने भी योगदान किया होगा क्योंकि हाफिज साहब को हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक माना जाता है। उनमें मजहबी संकीर्णता न थी। मन्दिर की प्राचीनता का आभास इमारत से नहीं होता क्योंकि इमारत का विकास विभिन्न समयों पर विभिन्न श्रद्धालुओं द्वारा किया गया, वरन् मूर्ति से होता है। वास्तव में मूर्ति तो हमें 250 वर्ष से भी पुरानी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होती है । इस संदर्भ में विशेष खोज अपेक्षित है ।

जामा मस्जिद

मस्जिदों की दृष्टि से जामा मस्जिद का महत्त्वपूर्ण स्थान है । यह मस्जिद हाफिज रहमत खां ने 1181-82 हिजरी में निर्मित कराई थी । यह दिल्ली की जामा मस्जिद की प्रतिकृति है । इसके निर्माण में तीन लाख कुछ हजार रुपया लगा था । मस्जिद के स्थान पर पहले एक तालाब था । हाफिज साहब के जमाने में इस वर्ष बहुत बड़ा सूखा पड़ा । इस मस्जिद के बनवाने में सूखा-पीड़ितों को रोटी देने का भाव भी था जैसा कि लखनऊ के बड़े इमामबाड़े के बारे में कहा जाता है ।

हाफिज साहब का किला जनाने अस्पताल के पास था । हाफिज साहब का पहले पास में ही मस्जिद बनवाने का विचार था परन्तु इससे पास की बस्ती को उजाड़ना पड़ता । अतः उन्होंने पास की बस्ती को न उजाड़कर तालाब को पटवा कर मस्जिद बनवाई । इस मस्जिद के निर्माण में मजबूती का विशेष ध्यान रखा गया । इसका निर्माण कंघी, ईंट तथा सुर्खी-मसाले से हुआ है ।

इसके पहले इमाम हाफिज नूरुद्दीन गजनवी थे । वे दर्वेश थे । मस्जिद में प्रवेश द्वार से पहले इमाम नूरुद्दीन साहब का मजार है । बायीं तरफ हाफिज साहब ने उतनी ही जगह अपने मजार के लिए छुड़वाई थी । पर नूरुद्दीन साहब ने कहा कि तुम्हें (हाफिज रहमत खां) यहां जगह नहीं मिलेगी । तुम्हें बरेली में जगह मिलेगी । बात सच हुई । हाफिज का मजार बरेली में बना और वह जगह अब तक खाली पड़ी है । मस्जिद में एक धूप घड़ी भी है ।

इस मस्जिद के साथ वक्फ की सम्पत्ति बहुत कम है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलीभीत का साहित्यिक योगदान : हिन्दी साहित्य

प्रसाद स्कूल के समर्थ कथाकार स्व. चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'

☐ अभीत

प्रसाद स्कूल के समर्थ कथाकार हृदयेश जी का जन्म पीलीभीत में सन् 1891 में हुआ था। आपके पिता का नाम लाला शम्भूनाथ स्वर्णकार था। स्वर्गीय हृदयेश जी के एक मात्र पुत्र कृष्णकुमार वर्मा लखनऊ के नरही मोहल्ले में निवास करते हैं।

हृदयेश जी ने लखनऊ विश्वविद्यालय से बी० ए० किया था। उनका हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, मराठी आदि भाषाओं पर अधिकार था। आप बंगला समिति के सदस्य थे और बंगला भाषा-भाषियों से पत्र-व्यवहार बंगला में ही करते थे।

पहले आप 'चन्द्र' उपनाम से लिखते थे। परंतु आपको जब यह पता चला कि पुवांया नरेश भी 'चन्द्र' उपनाम से लिखते हैं तो आपने अपना उपनाम परिवर्तित करना चाहा और निश्चय किया कि 'दुर्गा सप्तशती खोलने पर जो भी पृष्ठ खुले, उसकी प्रथम पंक्ति का प्रथम शब्द ही उपनाम रखा जाये। इसी आधार पर 'हृदयेश' उपनाम रखा।

'हृदयेश' जी सरल, विनोदी तथा मिलनसार व्यक्ति थे। निरभिमानी थे। क्रोध करना तो जानते ही न थे। बड़े-बड़े बाल रखते थे। गर्मियों में कुर्ता-धोती तथा जाड़ों में बंद गले का कोट पहनते थे। मस्तक पर लाल टीका लगाते थे। चेहरे पर चमक थी। स्वास्थ्य बहुत अच्छा तथा कुल मिलाकर आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे। रबड़ी के शौकीन थे। स्व० श्यामलाल मिश्र के अनुसार सेर भर रबड़ी खा जाते थे।

हृदयेश जी धारा-प्रवाह संस्कृत बोलते थे। बहुत अच्छे वक्ता थे। आवाज सुरीली तथा मधुर थी। समाचार-पत्र पढ़ने का शौक था, पत्रिकाएं भी खूब पढ़ते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। सौंदर्य के उपासक थे। देवी के भक्त थे। देवी की कई स्तुतियां संस्कृत में लिखीं। जल्दी-जल्दी लिखते थे। महीन-महीन मोती-सा लेख था। वयोवृद्ध श्री शंकरलाल पांडे कहते हैं कि वे हृदयेश जी के लेख पर मुग्ध थे। हृदयेश जी का घसीट लेख भी बहुत सुन्दर तथा स्पष्ट होता था। वे कलम बिना हटाये अक्षर से अक्षर जोड़ते चले जाते थे और ऊपर की रेखा से अक्षरों को नहीं जोड़ते थे। दो ठो पान खाकर लिखने बैठते थे। पहले ऊपर 'जय जननी' लिखते थे—फिर लिखना प्रारम्भ करते थे।

हृदयेश जी सरस्वती पाठशाला झांसी के हेडमास्टर रहे तथा कुछ दिनों सम्पूर्णानन्दजी के साथ डोगर कॉलेज बीकानेर में अध्यापन कार्य किया। संपूर्णानंद जी के साथ राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित हुए। कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में सम्मिलित हुए तथा गांधीजी के दर्शन करने साबरमती आश्रम पहुंचे। यहां बापू ने आदेश दिया, 'जाओ और नवयुवकों से देश की जेलें भर दो। बस, यही बापू के वास्तविक दर्शन हैं।' इन शब्दों ने जादू-सा काम किया। नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। पीलीभीत आकर पीलीभीत के बमरौली ग्राम में ओजस्वी भाषण दिया परिणामस्वरूप वसंत पंचमी की अर्द्ध रात्रि को बन्दी बना लिये गए। इन्हें चार माह की कैद तथा 50 रु० जुर्माना हुआ। जुर्माना न देने पर एक माह की कैद और थी।[1]

स्वागताध्यक्ष के रूप में झांसी अधिवेशन में आपके भाषण से भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू अत्यधिक प्रभावित हुई थीं। आपको मदनमोहन मालवीय भी बहुत मानते थे।

पीलीभीत में आप स्थानीय ललित हरि चीनी मिल के सहायक प्रबन्धक रहे। स्थानीय ललित हरि आयुर्वेदिक कॉलेज के प्राचार्य का कार्य भी सन् 1924 से करते थे। प्रातः दस से अपराह्न दो बजे तक वे आयुर्वेदिक विद्यालय में रहते थे और दो से सायं पांच तक फैक्ट्री का कार्य देखते थे।

हृदयेश जी यद्यपि कथाकार के रूप में जाने जाते हैं पर वे आशु कवि भी थे। वे ब्रज और खड़ी दोनों में ही कविता करते थे तथा समस्यापूर्ति भी करते थे। पीलीभीत में श्री दुर्गाशंकर शुक्ल द्वारा स्थापित खिलाफत कमेटी के अध्यक्ष भी रहे। पीलीभीत की उस समय की एकमात्र संस्था 'कविमंडल' के सदस्य थे।

---

1. शिव सुमरन लाल जौहरी, स्वतंत्रता संग्राम में पीलीभीत का योगदान, पृ० 51 तथा 238।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयाग से निकलने वाली प्रसिद्ध पत्रिका 'चांद' के सह-सम्पादक भी रहे।[1] 'चांद' के लिए सम्पादकीय टिप्पणियां हृदयेश जी पीलीभीत से भेजते थे।

रचनाएं

'नन्दन निकुंज', वनमाला (कहानी संग्रह), मंगल प्रभात, मनोरमा (उपन्यास) प्रकाशित रचनाएं हैं। नंदन निकुंज हृदयेशजी का पहला कहानी-संग्रह है जो गंगा पुस्तक माला लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। 'वनमाला' अन्तिम प्रकाशित कहानी-संग्रह है। आपकी एक गल्प 'परित्यक्ता' पर अलीगढ़ निवासी सेठ लक्ष्मीनारायणजी की धर्मपत्नी ने स्वर्ण-पदक दिया था।

कालिदास के प्रसिद्ध महाकाव्य 'रघुवंश' का हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद किया था। स्त्रियों के महत्त्व के सम्बन्ध में एक पुस्तक 'मातृ मन्दिर' लिख रहे थे जो अधूरी रह गयी। 'चांद' का सती अंक भी निकालने की योजना बना रहे थे पर उसे भी मृत्यु हो जाने के कारण पूर्ण न कर सके। पीलीभीत से 'मातृ मन्दिर' नाम से मासिक पत्रिका निकालने की इच्छा पूरी न हो सकी।

हृदयेशजी की कविताएं, कहानियां 'चांद' तथा 'माधुरी' में छपती थीं। राधेश्याम प्रेस बरेली से 1922 में एक मासिक पत्र 'भ्रमर' मालवा के प्रसिद्ध विद्वान पं० गोपी वल्लभ उपाध्याय के सम्पादकत्व में निकाला गया। 1922-23 के अंकों में छपने वाले लेखकों में चंडीप्रसाद 'हृदयेश' भी हैं।[2] वे 'Modern Review' के लिए भी लिखते थे।

'मातृ मन्दिर' की पाण्डुलिपि अप्राप्य है। नगर के वयोवृद्ध नागरिक श्री शंकरलाल पांडे के अनुसार एक पुस्तक की पाण्डुलिपि उनके पास थी जो सन् '38 तक उनके पास रही। बंद अलमारी में पानी आ जाने के कारण नष्ट हो गयी। वे इस पुस्तक का नाम न बता सके। मेरे विचार ये वह 'मातृ मन्दिर' की पाण्डुलिपि ही रही होगी।

हृदयेश कृत 'चांद' नवम्बर 1924 के अंक में प्रकाशित 'माता के प्रति' कविता द्रष्टव्य है जिससे उनकी कवित्व शक्ति का पता चलता है—

---

1. 'चांद' प्रकाशन—1923 सम्पादक—रामरखसिंह सहगल तथा चण्डी प्रसाद हृदयेश, स्थान—प्रयाग—डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र
   भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य 2, आद्यन्त-त्रैमासिक—अंक 1
2. सुरेन्द्र मोहन मिश्र—'बरेली की कुछ पुरानी पत्रिकाएं अमर उजाला, दैनिक-बरेली—30 नवम्बर 1986, पृ० 5।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तेरे शुचि सौभाग्य भाल पै आदि कला अविराम हंसै।
तेरे कोमल करुण नैन में अरुण राग अनुराग लसै।
तेरे मञ्जुल अधर कुञ्ज में प्रेम पुहुप प्यारा फूलै।
तेरे कलित कंठ में शिशु की गलबांही माला झूलै।
तेरे पुण्य स्तन्य शैल से निकली मधुर सुधाधारा।
तेरा शीतल शुद्ध-शान्ति मणि मंडित मन मन्दिर प्यारा।
तेरे गोद गगन में शिशु त्यों चन्द्र सरिस शोभा पाता।
तू ही विश्व की आदि शक्ति है जय जय जय प्यारी माता।[1]

कहानीकार

हृदयेश जी की विशेष प्रसिद्धि कथाकार के रूप में ही हुई थी। डॉ० सुरेश सिन्हा ने लिखा है—'वास्तव में यथार्थ घटनाओं का संयोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वे अपने आदर्श की कहानियां स्वयं कहें।'[2] इस कथन के साथ उदाहरण रूप में प्रेमचंद कृत 'बूढ़ी काकी' जयशंकर प्रसाद कृत 'गूदड़साईं' तथा चंडीप्रसाद हृदयेश कृत 'पर्यवसान' को लिया है। इससे स्पष्ट है कि हृदयेश कृत 'पर्यवसान' कहानी में यथार्थ घटनाओं का संयोजन इस प्रकार हुआ है कि वे अपने आदर्श की कहानी स्वयं कहती हैं। वास्तव में हृदयेश जी हिन्दी कहानी के क्षेत्र में क्रान्ति करने वाले अगुआ कहानीकारों में से एक थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हृदयेश जी की कहानियों के संदर्भ में लिखा है—'जो कहानियां कोई मार्मिक परिस्थिति लक्ष्य में रखकर चलेंगी उनमें बाह्य प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप-रंगों के सहित और परिस्थितियों का विशद चित्रण भी बराबर मिलेगा। घटनाएं और कथोपकथन बहुत अल्प रहेंगे। हृदयेश जी की कहानियां प्रायः इसी ढंग की हैं। 'उन्मादिनी' में घटना गतिशील नहीं। 'शांतिनिकेतन' में घटना और कथोपकथन दोनों कुछ नहीं। यह भी कहानी का एक ढंग है, यह हमें मानना पड़ेगा। पाश्चात्य आदर्श का अनुसरण इनमें नहीं है, न सही।'[3] हृदयेश जी की कहानियों में मार्मिक परिस्थितियों की एकता है। इस एकता में कई ऐसी संवेदनाओं का योग रहता है जो मार्मिक परिस्थिति को बहुत ही मार्मिक बना देती हैं। उदाहरण के लिए 'उन्मादिनी' की मार्मिकता में पूरन का सत्वोद्रेक, सौदामिनी का अत्यन्त स्नेह और कालीशंकर की स्तब्धता तीनों का योग है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हृदयेश जी अपनी कहानियों में कथानक, कथानक की गति, घटनाओं और

1. वर्ष 3, खंड 1, संख्या 1, पृ० 1
2. डॉ० सुरेश सिन्हा—हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास, पृ० 230।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 370।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथोपकथन पर ध्यान नहीं देते। उनका ध्यान मुख्य रूप से मार्मिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति पर केन्द्रित रहता है।

हृदयेश जी ने चरित्र-चित्रण में अधिकतर आत्मकथात्मक विधि अपनायी है। 'मौन व्रत' शीर्षक कहानी से एक उदाहरण देखिए—'मैं दिन भर यही सोचता रहा कि कब संध्याकाल होगा, कब उस सुषमा चंद्र का उदय होगा—वह वासंती मलयानिल प्रवाहित होगा···वह सुधा-धारा पतित होगी? दिवस का प्रत्येक क्षण मुझे एक युग के समान प्रतीत होता। किन्तु हाय! सायंकाल का वह एक निमेष··· अंधकारमय जीवन की वह एक क्षणिक रश्मि···कितनी जल्दी समाप्त हो जाती थी···वह मनोहर संयोग, वह पुण्य अवसर, वह शुभ मुहूर्त, हाय! कितनी जल्दी, ऐंद्रजालिक कला की भांति किसी अज्ञेय वस्तु में विलीन हो जाता था।'[1]

पात्रों के चरित्रांकन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए हृदयेश जी ने **भावात्मक कथोपकथन** का सहारा लिया है। एक उदाहरण देखिए: 'सरला बोली—'शैलेंद्र तुम्हारे बिना संसार असार है।'

शैलेंद्र ने कहा—'हां, ठीक; क्योंकि संसार के सार को कौन देखे।' इस बार सरला हारी शैलेंद्र जीते। किन्तु शैलेंद्र, क्या सरला के सरल हास्य से भी जीत सकते हो?'

अब शैलेंद्र खुले। सरला का कर-कमल हाथ में लेकर बोले—'सरले, सरले, तुम्हें नहीं मालूम, तुम्हारे बिना इस हृदय की क्या दशा रहती है।'

सरला बोली—'जानती हूं, अग्नि प्रज्वलित रहती है।'

शैलेंद्र बोले—'क्या इसमें कभी प्रेम की कादंबिनी न बरसेगी?'

सरला बोली—'शैलेंद्र, उन्मत्त न होओ। तुम जानते हो, इस प्रेम का पथ बड़ा कठिन है।'

शैलेंद्र सम्भलकर बोले—'किन्तु अप्राप्य तो नहीं।'

सरला बोली – 'नहीं, किन्तु प्राप्य है, केवल मरण के उपरान्त।'[2]

आलंकारिक काव्यमयी भाषा लिखने में हृदयेश जी सिद्धहस्त हैं। प्रणय 'परिपाटी' कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है: 'कुसुम में कंटक, कलाधर में कलंक, हरिक में हलाहल, विद्युत में वज्र, मंदाकिनी में मकर, इसी प्रकार संसार की समस्त सौन्दर्यमयी वस्तुओं में विपरीत तत्त्व का सम्मिश्रण होता है। प्रजापति और कवि की दृष्टि में इस प्रकार के अनंत उदाहरणों की कमी नहीं। उदाहरण क्यों? यदि विचारपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो इस महान्

1. श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश', 'नंदन निकुंज', पृ० 112
2. वही, पृ० 30।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम का परिचय हमें प्रत्येक वस्तु में परिलक्षित होगा।'[1]

काव्यात्मक शैली का एक उदाहरण 'मौन व्रत' कहानी से देखिए। इसमें प्रकृति की मनोरम पृष्ठभूमि में कोमल कल्पनाएं देखने योग्य हैं—'वर्षा बीत गई। शरद ऋतु आ गई। आकाश में चंद्रदेव, शांत सरिताओं के सरोज सुवासित विमल जल में, अपने परम लावण्य को देखकर हंसने लगे। पृथ्वी के यौवन का प्रथम वेग अब नहीं है। इस समय का सौन्दर्य स्थिर. शांत और अधिकतर स्निग्ध है। यौवन वाटिका में बाल चापल्य का वह उच्च हास्य अब नहीं सुनाई पड़ता, अब सौम्य भाव की केवल मधुर मुस्कान ही समस्त सौन्दर्य वन को अत्युज्ज्वल बनाती है। इस समय पृथ्वी, सलज्जा कुलवधू की भांति, केवल घूंघटपट में ही किंचित् मुस्काती है।'[2]

कभी-कभी कहानियों में वे अपनी कविताएं भी रख देते हैं : यथा—

'आली, चल, तोहि बूझत श्याम।
तू इत दामिनि-सी दुरि बैठी, उत छाये घनश्माम,
वन, उपवन, नव कुंज-पुंज सब, लसत आज अभिराम।
ढूंढ़ फिरे ब्रजराज तोहिं सखि, डगर-बगर ब्रजधाम,
तो बिन, अब 'हृदयेश' विकल इमि, जिमि रति के बिन काम।'[3]

उपन्यासकार

हृदयेश जी कृत 'मंगल प्रभात' एक वृहत् उपन्यास है। इसका कथानक विस्तृत है। इसमें लेखक का दृष्टिकोण आदर्शवादी है। बाबूजी, राजेन्द्र, सुभद्रा, अन्नपूर्णा आदि सभी पात्र आदर्शवादी आग्रहों को लेकर चलते हैं। डॉ० प्रतापनारायण टंडन के अनुसार, 'उनकी प्रतिक्रिया विविध परिस्थितियों के अनुरूप न होकर उनके स्वभाव, आदर्श मान्यता और आदर्श के अनुरूप होती है। उपदेशात्मकता के तत्त्व इसमें बहुलता से मिलते हैं।'[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कथावस्तु के स्वरूप और लक्ष्य के अनुसार वर्तमान उपन्यासों में सात भेद दिखाई पड़ते हैं।[5] घटना वैचित्र्य अर्थात् केवल कुतूहलजनक मनुष्य के अनेक पारस्परिक सम्बन्धों की मार्मिकता पर प्रधान लक्ष्य रखने वाले समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों की परस्पर स्थिति और उनके संस्कार चित्रित करने वाले अंतर्वृत्ति और उसका विकास क्रम

1. श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश'—'नंदन निकुंज', पृ० 48।
2. वही, पृ० 120।
3. 'नंदन निकुंज', 'पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास' सं० गणेशशंकरशुक्ल 'बंधु'।
4. डॉ० प्रताप नारायण टंडन, हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ० 315।
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 369।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंकित करने वाले भिन्न-भिन्न जातियों और मतानुयायियों के बीच मनुष्यता के व्यापक संबंध पर जोर देने वाले समाज के पाखंडपूर्ण कुत्सित पक्षों का उद्‌घाटन करने वाले बाह्य और आभ्यन्तर प्रकृति की रमणीयता का समन्वित रूप में चित्रण करने वाले।

आचार्य शुक्ल ने चंडीप्रसाद हृदयेश का 'मंगल प्रभात' सातवीं कोटि में माना है। यह उपन्यास सुन्दर और अलंकृत विन्यास युक्त है।

'मनोरमा' लघु औपन्यासिक कृति है। यह उपन्यास भी आदर्शवादी है। लेखक का दृष्टिकोण सुधारपरक है। शिल्प की दृष्टि से 'मंगल प्रभात' की अपेक्षा इसे अधिक सफल रचना कहा जा सकता है। पीलीभीत नगर के वयोवृद्ध नागरिक और हृदयेश जी के प्रशंसक श्री शंकरलाल पांडे के अनुसार, 'हृदयेश जी ने इस उपन्यास में गोल्डस्मिथ के 'विकार ऑफ वेकफील्ड' की तरह अपनी ही कहानी कही है।'

एकांकीकार

'चांद' के फरवरी 1925 के अंक वर्ष 3, खंड 2 संख्या 4' के पृ० 397 से पृ० 408 तक 'परित्राण' नामक सामाजिक एकांकी प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल छः दृश्य हैं। इसे एकांकी न लिखकर नाटक लिखा गया है। अप्रैल 1925 के अंक में 'विनाश लीला—(एक सामाजिक नाटक)' पृ० 667 से 679 तक प्रकाशित है। इसमें सात दृश्य हैं। उनके कहानी संग्रह 'वनमाला' में भी ये एकांकी संकलित हैं।

परित्राण में कन्या विवाह और कन्या विक्रय की समस्याएं हैं। लेखक ने कथानक को कुशलता से गढ़ा है। भाषा-शैली अलंकृत है। स्वगत बड़े लम्बे-लम्बे हैं। पात्रों का घात-प्रतिघात भी देखने को मिलता है। अंत चमत्कारपूर्ण तथा नाटकीय है। जब लाला राधेलाल बदला लेने की बात कहता है तो उसकी पुत्री श्यामा समझाती हुई कहती है—'चलिए ! रागद्वेष को तिलांजलि देकर, दिव्य उज्ज्वल सत्य को अपना मार्गदर्शक बनाकर हम इसकी ओर अग्रसर हों। इसी में देश का कल्याण है, समाज का हित है एवं धर्म का मंगल है।'[1]

'विनाश लीला' में बाल विवाह और बाल वैधव्य की समस्याएं चित्रित हैं। यह एक मार्मिक एकांकी है। डॉ० सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में, 'अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए उसने कई पात्रों की मृत्यु कराई है। ऐसी घटनाएं आकस्मिक लगती हैं···

---

1. परित्राण—'चांद' वर्ष 3, खण्ड 1, संख्या 4, पृ० 408।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटकीयता की दृष्टि से परित्राण इससे उच्च कोटि की रचना है।[1]

'चांद' में हृदयेश जी का एक लेख 'साहित्य में शिशु लीला'[2] भी देखने को मिला। लेख समीक्षात्मक होते हुए भी भावात्मक शैली में है। भाषा, आलंकारिक तथा काव्यमयी है। सूक्ति कथन शैली भी द्रष्टव्य है: 'मातृत्व जितना अनादि है, शिशुत्व भी उतना ही अनादि है।' —'शिशु समाज मूर्तिमती कविता का मधुर स्वर है।' आदि। लेखक ने लेख का अंत अपनी काव्य पंक्तियों से शिशु को प्रणाम करते हुए किया है—

'हंसि हेरत छिन भग चलत, गिनत न पितु मनुहार।
धूलि भर्‌यो रमतो फिरत जय-जय नंदकुमार॥'

पीलीभीत के वरिष्ठ पत्रकार स्व० रामवरण मिश्र ने ठीक ही कहा था— उनकी कहानियों में भाषा का लालित्य इतना अधिक होता था कि पाठक उसी लालित्य में इतना खो जाता था कि कथावस्तु का उसे ध्यान ही नहीं रहता था। उनका प्रस्तुतीकरण बहुत ही मौलिक था। स्व० मिश्र ने बताया कि सरकार ने कोई ऐसा कानून बनाया था जो स्त्रियों के विरोध में था। हृदयेश जी प्रतीक्षा करते रहे कि सहगल साहब (चांद के सम्पादक) इस कानून के विरोध में कुछ लिखेंगे। एक माह बीत गया। सहगल साहब ने कुछ नहीं लिखा। हृदयेश जी के पास सहगल साहब का एक पत्र आया कि वे इस कानून के विरोध में कुछ लिखें। हृदययेश जी सोचते रहे—एक माह पुराने विषय पर क्या लिखा जाए? जनता क्या कहेगी? फिर उन्होंने एक ढंग निकाल ही लिया। लेख में लिखा—यह कानून इतना अनौचित्यपूर्ण है कि एक माह तक हम प्रतीक्षा करते रहे कि सरकार इसे स्वयं वापस ले लेगी। परन्तु जब अभी तक वापस न लिया तो हम इसके विरोध में अपने विचार प्रकट कर रहे हैं।

आचार्य क्षेमचंद सुमन ने पीलीभीत के साहित्यकारों की गोष्ठी में बताया कि सुमन जी ने सन् 32 के लगभग हृदयेश जी कृत 'नंदन निकुंज' पढ़ी थी। उसकी आलंकारिक काव्यमयी भाषा से प्रभावित होकर गद्य गीत लिखे।

हृदयेश जी की एक कहानी से प्रकृति का मनोहारी चित्र प्रस्तुत है, 'रजनी का विशाल अंचल तारिकावली से खचित था, शांति की छायामयी कुटीर में मृदुल शीतल समीर के पालने पर प्रकृति देवी आनंद से सो रही थीं।'[3]

स्वर्गवास से पहले उन्हें कुछ उन्माद-सा हो गया था। काम करके आये,

---

1. डॉ० सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, पृ० 177।
2. दिसम्बर 1924, पृ० 131।
3. 'आहुति' 'चांद' नवम्बर 1924, पृ० 49।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंडाई पी। फिर एक चिट्ठी लिखी कि मेरे घर चोर-डाकू आ गए हैं। प्रशंसक और मित्र जब घर आए तो उनसे कुश का आसन बिछवाया। माता का पाठ किया और बोले—'माता के घर जा रहा हूं'। अंतिम यात्रा में हजारों लोग सम्मिलित हुए। प्रसाद स्कूल के इस सशक्त हस्ताक्षर का स्वर्गवास सन् 1927 में **36** वर्ष की अल्पायु में हो गया। हृदयेश जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। अल्पायु में ही उन्होंने हिन्दी साहित्य को वह दिया जो विलक्षण है, महान् है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व. क्षेमानन्द राहत उर्फ श्री भगवान

☐ अभीत

आपका जन्म पीलीभीत जनपद के ग्राम मकतुल में 21-3-1894 में हुआ था। मद्रास विश्वविद्यालय से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त गांधी जी के निर्देश पर 1919 में मद्रास में हिन्दी का प्रचार प्रारम्भ किया। आप देवदास गांधी के हिन्दी शिक्षक रहे। सन् 1920 में मद्रास में ही श्री सनातन धर्म विद्यालय में प्रधानाध्यापक हुए। स्वतंत्रता आन्दोलन में आपकी विशेष रुचि थी। आपका सी० एफ० एन्ड्रूज, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द आदि नेताओं से घनिष्ठ परिचय था। राहत जी विद्यालय में उनके भाषण कराते थे।

आपने मद्रास मे पहली बार हिन्दी में 'भारत तिलक' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला जिसका उद्घाटन सी० राजगोपालाचार्य ने किया था। इसमें आपने कुछ ऐसे लेख प्रकाशित किए जिनके आधार पर ब्रिटिश सरकार ने आप पर 1922-23 में राजद्रोह का मुकदमा चलाया। श्री भगवान को दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई। यहीं कडलूर जेल में रहकर आपने दक्षिण के प्रसिद्ध संत लेखक तिरुवल्लुवर के प्रसिद्ध ग्रंथ 'त्रिक्कुरल' का 'तमिल वेद' नाम से हिन्दी अनुवाद किया।

जेल से छूटने पर श्री जमुनालाल बजाज उन्हें अजमेर ले गए। अजमेर में वे श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा सम्पादित 'त्याग भूमि' में सह-सम्पादक हो गए। यहां रहकर उन्होंने 'राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना की। हिन्दी प्रचार को निमित्त बनाकर राजस्थान के राजा-महाराजाओं से मिले। उनमें देश-भक्ति का भाव भरा। हल्दीघाटी में प्रताप जयन्ती पर मेला लगवाया। जब गांधी जी के निर्देश पर व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन प्रारम्भ हुआ, तो वे डिक्टेटर बने। उन्हें दो वर्ष की सजा हुई। अजमेर जेल में वे कुछ योगियों के सम्पर्क में आए। यहीं उन्हें ईश्वर के साक्षात्कार की आनंदानुभूति हुई और यहीं से वे राजनीति छोड़कर अध्यात्म की ओर मुड़ गए। उन्हें लगा कि ब्रिटिश सरकार की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजय अध्यात्म शक्ति से ही हो सकती है। जेल से छूटते ही सन् 1930 में तपस्या के लिए हिमालय की ओर चल दिए। 8 वर्ष की तपस्या के बाद हंस की अवस्था प्राप्त हुई। इसके बाद एक बार मद्रास गए फिर अपने भाई-गुरुकुल वृन्दावन के कुलपति के पास कुछ दिनों वृन्दावन में रहे। इसके पश्चात् सनातन धर्म मंदिर मंसूरी को अपना स्थायी निवास स्थान बना लिया। यहीं 21-3-74 को आपका स्वर्गवास हो गया।

हंस होने के बाद उनकी बातें बड़ी अटपटी तथा रहस्यपूर्ण होने लगी थीं जिन्हें उनके घनिष्ठ मित्र भी समझने में असमर्थ रहते थे, परन्तु जब वे ही बातें सत्य होती थीं, तो लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। पीलीभीत के वरिष्ठतम पत्रकार स्व० श्री रामवरण मिश्र के अनुसार ताशकंद समझौते से पूर्व श्री भगवान पीलीभीत आए। उन्होंने 'देशभक्त-साप्ताहिक' में अपना मत व्यक्त किया था कि स्व० प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री को ताशकंद नहीं जाना चाहिए। उनके लिए खतरा है। आगे चलकर यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

श्री भगवान आजन्म अविवाहित ब्रह्मचारी रहे। आपका हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, तमिल पर पूरा अधिकार था। आप अत्यन्त जोशीला भाषण देते थे। उस समय अपने भाषण से जनता में प्राण फूंकने वाला मद्रास में हिन्दी भाषियों में आपके सिवा दूसरा नहीं था। आप हिन्दी, उर्दू में बड़ी जोशीली कविताएं लिखते थे। आपकी कुछ रचनाओं में अध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। आपकी गद्य और पद्य की रचनाएं इस प्रकार हैं—

1. तामिल वेद (तिरुवल्लुवर कृत त्रिक्कुरल का हिन्दी अनुवाद)
2. क्या करें
3. जिन्दा लाश
4. अंधेरे में उजाला
5. तलवार की करतूत
6. सूफी संत चरित्र
7. मुस्लिम संत चरित्र
8. जीवन झांकी
9. प्रताप विजय
10. प्रताप शतक
11. वीर शतक
12. भक्ति शतक
13. राम शतक
14. भरत शतक
15. ज्ञान शतक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16. मानव शतक
17. गायत्री शतक
18. विजय शतक
19. अंतरंग शतक
20. इण्डिया कैन विन (अंग्रेजी में)
21. टालस्टाय के सिद्धांत

इनमें कुछ प्रकाशित तथा कुछ अप्रकाशित हैं। भक्ति, ज्ञान और मानव शतक साधना सदन मद्रास से प्रकाशित हुए। 'जीवन झांकी' में उनकी आत्मकथा हैं जो उन्होंने बोलकर लिखाई थी। यह लगभग 700 पृष्ठों की पुस्तक है। इसमें गद्य काव्य का-सा आनन्द आता है। इसकी पाण्डुलिपि पं० शिवनारायण जी उदवपुर वालों के पास सुरक्षित है। अर्थाभाव के कारण प्रकाशित नहीं हो पायी।

भगवान जी सत्य के लिए मर-मिटने वाले निष्काम योगी थे। बहुत से काम स्वयं किए परन्तु नाम दूसरों का दिया। श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त मंसूरी के पत्र दिनांक 22-1-79 के अनुसार—उनके निर्वाण के पश्चात् अमरीका, जर्मनी तथा इंग्लैण्ड में शोक सभाएं हुईं, तथा वहां से उनके शिष्य डॉ० रिजिअन ने 25 हजार रुपये उनकी स्मृति में एक हॉल बनवाने के लिए हमें भेजे हैं। भगवान स्वामी स्मृति हॉल का कार्य भी प्रारम्भ हो गया है।

दोहा छन्द पर आपका विशेष अधिकार था। आपने अपने शतकों की व्याख्याएं स्वयं लिखी हैं। कुछ शतकों की व्याख्याएं हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी प्रस्तुत की हैं। महात्मा भगवान कामना करते हैं कि भारत के लोग जाति, धर्म और प्रान्तीयता की संकीर्ण भावना से ऊपर उठकर राष्ट्र के अनुराग में रंग जावें—

'धर्म जाति विद्वेष तज, प्रान्त भिन्नता त्याग।
प्रबल राष्ट्र, अनुराग की ज्योति उठे अब जाग॥'

(विजय शतक दोहा 64)

विज्ञान के बारे में भी भगवान का विचार है कि जिस विज्ञान ने मानव हित की बात कर अनेक आविष्कार किए, उस विज्ञान ने वास्तव में मौत का ही आह्वान किया है—

'मानव हित की बात कह, लाया काल कराल।
बाल-बाल बचते चलें, यह जी का जंजाल॥'

(वही, दोहा 76)

वर्षा ऋतु में पृथ्वी पर बहुतायत से हरे-हरे अंकुर उगे हैं। इन अंकुरों को देखकर महात्मा भगवान अत्यन्त मनोहारी अध्यात्ममयी अनुभूति करते हैं :

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरित पल्लवित कुशों की, उछली ललित फुहार।
तृप्ता भूमि के हृदय का, यह कृतज्ञता ज्वार॥'

(अंतरंग शतक, दोहा 95)

अन्त में हम एक आलोचक के शब्द रख रहे हैं जिसने महात्मा भगवान कृत 'भक्ति शतक' को देखकर कहा था—जो कहते हैं कि कबीर, सूर, तुलसी के दिन गए उनका उत्तर यहां है। निश्चय ही भगवान के विचार अनूठे हैं पर कला की दृष्टि से विश्व-साहित्य में भगवान के दोहों का अपना ही स्थान है।

निःसंदेह श्री भगवान एक ओजस्वी वक्ता, श्रेष्ठ गद्यकार, सुयोग्य सम्पादक, उच्च कोटि के कवि, प्रेरणादायक राष्ट्र सेवक तथा निष्काम योगी थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. फतहसिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व

□ डॉ० प्रतिभा शुक्ला

पीलीभीत जनपद के भेदंग कन्जा नामक ग्राम के लिए संवत् 1970 की आषाढ़ी पूर्णिमा अपूर्व हर्षोल्लास लेकर आई। सभी ठाकुर जंगीसिंह की धर्मपत्नी श्रीमती फूलमती की जय-जयकार कर रहे थे, क्योंकि उन्हें आषाढ़ी पर्व को 'लौटाने' का श्रेय मिला था। न मालूम कब से यह त्योहार 'खोटा' चल रहा था, क्योंकि इस दिन चौहानों में से किसी की मृत्यु हो गई थी। अतः प्रतीक्षा हो रही थी उस दिन की, जब कोई सौभाग्यवती पुत्र को जन्म दे। वही शुभ दिन आज आया और श्रीमती फूलमती जी ने एक बालक को जन्म दिया। पंडितों ने उसका नाम यथा 'फतहसिंह' यही स्वनाम धन्य आज डॉ० फतहसिंह के नाम से जाने जाते हैं। यहां नाम तथा गुण के अनुसार विद्योपार्जन एवं शिक्षणकार्य में जो फतह (विजय) उन्हें मिली, उससे न केवल अपने देश में, अपितु विदेश में भी उन्हें ख्याति प्राप्त हुई है।

जब डॉ० साहब ने सन् 1969 में सिन्धुलिपि को पढ़कर देश-विदेश में धूम मचा दी, तो सुप्रसिद्ध राष्ट्रकवि दिनकर[1] ने भाव-विभोर होकर पत्रकार श्री गजेन्द्र सिंह सोलंकी से कहा—'डॉ० फतहसिंह वर्तमान युग के ऋषि हैं, जिन्होंने सिन्धु लिपि को क्रमबद्ध पढ़ा, उन्हें इस युग का पाणिनि कहा जाना चाहिए।' प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री और महाकवि डॉ० रामानन्द[2] तिवारी ने इस विद्वान को वर्षों तक निकट से देखा है। उनका कथन है—'डॉ० फतहसिंह का जीवन ऋषियों के समान सात्विक, नैतिक, धर्मपूर्ण और साधनामय रहा है। उन्नत ललाट, दीर्घकाया, स्वस्थ शरीर, गौरवर्ण, गम्भीर मुद्रा, उदात्त स्वर आदि से वे वैदिक ऋषि के अवतार-से जान पड़ते हैं। विद्या, शील, सौहार्द आदि की सात्विक सम्पत्ति उनके

1. डॉ० फतहसिंह : अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० 11
2. वही, पृ० 9

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि-तुल्य रूप को आन्तरिक सार्थकता प्रदान करती है। धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, सामाजिक आदि व्यवहार के सभी रूपों में उनके ऋषि-तुल्य व्यक्तित्व के सहज शील का प्रकाशन होता है। उनके छात्रों, मित्रों, सम्बन्धियों, परिचित अधीनस्थ कर्मचारियों आदि सभी के सामने प्रत्यक्ष व्यवहार में उनका यह ऋषि रूप रूप प्रकट रहा है। जन्मजात और सहज क्षत्रिय तेज के अन्तर्भाव के कारण उनका यह राजर्षि रूप ही प्रकट रहा है, यद्यपि अपने अर्जित ब्रह्मशील के कारण वह ब्रह्मर्षि पद के अत्यन्त निकट रहा है। विद्यानुराग, अध्ययन, अध्यापन और लेखन में प्रकाशित उनकी प्रतिभा एवं प्रज्ञा भी उन्हें ब्रह्मर्षि पद का अधिकारी बनाती है। वेदों का अध्यापन अपनाकर तो वे विधिवत् ब्रह्मर्षि पद के योग्य बन गए।"

ब्रह्मर्षित्व का विकास

सचमुच डॉ० फतहसिंह के जीवन पर दृष्टि डालने से उनमें राजर्षि और ब्रह्मर्षि का व्यक्तित्व समान रूप से मिलता है। आजकल वे वेदानुसंधान के अभूतपूर्व कार्य में लगे हुए हैं। अतः आइए पहले उनके इसी रूप को देखें। यों तो इसका सूत्रपात तभी से समझना चाहिए जब वे पांचवीं कक्षा के विद्यार्थी थे और संस्कृत भाषा का तनिक भी ज्ञान नहीं था। आर्य समाज बीसलपुर के किसी प्रचारक ने स्वामी दयानन्द पर बोलते हुए कहा कि उनके असामयिक निधन से उनका वेदभाष्य अधूरा रह गया। यह सुनकर बालक फतहसिंह ने संकल्प किया कि स्वामी जी के कार्य को 'मैं पूरा करूंगा'। इस संकल्प-पूर्ति के निमित्त गवर्नमेण्ट ड्रमण्ड स्कूल, पीलीभीत (जो आज इण्टर कॉलेज है) में उन्होंने संस्कृत विषय लिया और 1932 में हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करके काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को चुना। वहां से वे सर्वोच्च उपाधि डी० लिट्० के लिए वेद पर शोध-प्रबन्ध तैयार कर लेने के बाद ही 1942 में निकले।

वेदाध्ययन के इस सुअवसर को प्राप्त करने को वे एक ईश्वरीय वरदान ही मानते हैं। जब वे विश्वविद्यालय में पहुंचे तो वहां वेद पढ़ाने वाला कोई नहीं था। सौभाग्य से जब वे बी० ए० ऑनर्स में पहुंचे तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त डॉ० एस० के० बेल्वेल्कर प्रोफेसर होकर आ गए। उनकी प्रेरणा से डॉ० फतहसिंह जी ने जर्मन, फ्रेंच भाषाएं सीखीं तथा 500 पृष्ठ का एम० ए० का शोध-प्रबंध लिखकर शोध-पद्धति को भी अच्छी तरह हृदयंगम किया। डॉ० बेल्वेल्कर वेद-व्याख्या करते समय मैक्सम्यूलर, ओल्डेनबर्ग, ग्रासमैन, गेल्डनर, पिशेल आदि के मतों को उद्धृत करते थे, परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम भी नहीं लेते थे। डॉ० फतहसिंह ने जब दयानन्द भाष्य के लिए आग्रह किया तो उत्तर मिला कि वह सर्वथा अवैज्ञानिक तथा अमान्य है। इसी अन्तराल में उन्होंने लोकमान्य तिलक के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्कटिक होम इन दी वेदाज' एवं 'ओरायन' को पढ़ा और डॉ० वेल्वेल्कर से निवेदन किया, 'मुझे तिलक का मत अच्छा लगता है। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् उसे नहीं मानते,' इस पर उत्तर मिला कि तुम यदि तिलक-मत के समर्थन में प्रमाण जुटा सकते हो, तो वह मान्य हो जायेगा। यह सुनकर उन्होंने कहा, 'मैं दयानन्द के अभिमत को भी प्रमाणों से पुष्ट कर दिखाऊंगा।'

अतः इस अंतराल में प्रकाशित डॉ० फतहसिंह के लेखों से दो बातों की स्पष्ट झलक मिलती है—प्रथम तो आर्यों के आदि देश विषयक तिलक-मत की और दूसरे दयानन्द के एकेश्वरवाद की। इन दोनों मतों को स्वीकार करते हुए भी डॉ० साहब ने अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखा है। लोकमान्य तिलक की मान्यता थी कि ऋग्वेद उत्तरी ध्रुव प्रदेश में लिखा गया, क्योंकि उषाओं और सूर्य आदि का जो वर्णन है वह उत्तरी ध्रुव प्रदेश में ठीक-ठीक संभव है। डॉ० साहब का कहना है कि यही वर्णन ध्यानस्थ व्यक्ति के भीतर दृश्यमान प्रकाश पर भी लागू हो सकता है। दयानन्द का एकेश्वरवाद त्रैतवाद से जुड़ा हुआ है। डॉ० साहब का मत है कि जहां एक दृष्टि से ईश्वर, जीव और प्रकृति की सत्ता निर्विवाद है वहां यह भी सत्य है कि ईश्वर अन्य दो में से सर्वदा व्याप्त है। वेदों के अनेक देवों को वे ईश्वर अथवा आत्मा की विभिन्न शक्तियां अथवा रूप मानते हैं। पूना ओरियण्टलिस्ट के कई अंकों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित 'अग्नि एण्ड सोम' मॉडर्न रिव्यू का 'इंटरप्रिटेशन ऑव इन्द्रमिथ, इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली का 'रुद्र' बी० एच० यू जर्नल का 'यम एण्ड पितर्स' 'ऋभु' नामक एम०ए० का शोध-प्रबंध तथा डी० लिट्० का 'वैदिक क्वेस्ट इंटू दी मिस्ट्रीज ऑव वाक्' जैसी अंग्रेजी रचनाओं को इसी वर्ग में रखा जा सकता है।

उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय (बनारस) में डी० लिट्० के बहुत ही कड़े नियम थे। अतः उस समय तक संस्कृत में कोई डी० लिट्० नहीं कर सका था। जब फतहसिंह जी ने अपने शोध-प्रबंध की रूपरेखा प्रस्तुत की तो उसकी उपयुक्तता को आंकने के लिए तीन विद्वानों को नियुक्त किया गया। म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज, म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य तथा म० म० डॉ० सर गंगानाथ झा में से अंतिम दो ने तो उस रूपरेखा को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया, परन्तु म० म० गोपीनाथ कविराज का कहना था कि वैदिक विचारधारा की तुलना आगमों से की जाए। आगमों से तुलना करने में कार्य का विस्तार तो बहुत करना पड़ा, परन्तु ऐसा करने से शोधकर्ता को एक नयी दिशा मिली और उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वेदार्थ की कुंजी आगमों में ही है। आगमों के आलोक में संहिता ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् से लेकर रामायण, महाभारत एवं पुराण तक एक ही मूलभूत परम्परा का विस्तार दिखाई देने लगा। अतः डॉ० फतहसिंह आज तक म० म० गोपीनाथ के सुझाव को देवी प्रेरणा के रूप में स्मरण करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बीच उन्होंने जस्टिस गंगाप्रसाद को फाउन्टेनहेड ऑव रिलीजन्स तथा डॉ० आनंदकुमार के० स्वामी की न्यू अप्रोच टू दी वेदाज नामक पुस्तकें पढ़ीं। इन दोनों को पढ़ने से उन्हें विभिन्न धर्मग्रंथों के साथ वेदों का तुलनात्मक अध्ययन करने की शैली मिली। इसी का परिणाम है कि डॉ० सिंह ने अपनी 'एशियाई संस्कृतियों को संस्कृत की देन' नामक पुस्तक में यहूदी-ईसाई-इस्लामी परंपरा के आदम, चीन के सियेन, जापान के यम, ईरान और असीरिया के अस्तुर आदि की दार्शनिक पृष्ठभूमि में वेद को मुखरित होता हुआ पाया। वेद एवं बाइबिल के तुलनात्मक अध्ययन पर आश्रित अनेक भाषणों को अमेरिका एवं योरोप में काफी सराहा गया। इस प्रसंग में एक मनोरंजक घटना उल्लेखनीय है। 1974 में जब डॉ० साहब अमेरिका गए तो एक विश्वविद्यालय में उन्हें 'विश्व मानुष' पर बोलना था। वहां जाते समय उनके ज्येष्ठ पुत्र ने कहा, 'पिताजी ! आप वहां वेद-पुराण का नाम न लेना, अमेरिकन पुरानी बातों को पसन्द नहीं करते।' सचमुच पूरे भाषण में उन्होंने वेद-पुराण का एक बार भी नाम नहीं लिया परन्तु उन्होंने कहा कि भारत ने जिस प्रकार अनेक नस्लों, अनेक भाषाओं और अनेक पूजा-पद्धतियों के होते हुए भी अतीत में एक हिन्दू समाज की रचना की, उसी प्रकार आज भी सारे विश्व में एक मानव-समाज का संगठन संभव है। यह सुनकर लोगों ने पूछा कि वे कौन से सिद्धांत हैं जिनके द्वारा यह चमत्कार हो सका और वे किन ग्रंथों में मिल सकते हैं। उत्तर में कहना पड़ा कि वेद, पुराण, रामायण, महाभारतादि अनेक ग्रंथों में जो हिन्दू धर्म के सिद्धांत हैं, वही प्रायः विश्व के अनेक धर्मों में उपलब्ध होते हैं।

1946 में डॉ० साहब जब अपने 'वैदिक दर्शन' को लेकर महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज से मिले तो उन्होंने स्वयं ही उसकी भूमिका लिखने की इच्छा प्रकट की और कहा कि 'मैं तुम्हारा डी० लिट्० शोध-प्रबन्ध का परीक्षक था। तुम्हारे विचार अरविंद के विचारों से मेल खाते हैं। अरविंदाश्रम से सान्याल बाबू आए हुए हैं। वे चाहते हैं कि अरविंद की शैली पर वैदिक शोध हो।' यह कहते हुए उन्होंने श्री अरविंद के वेद-विषयक लेखों की एक टंकित प्रति डॉ० साहब को दी और उसे पढ़कर एक वैदिक अनुसंधान की योजना श्री सान्याल के समक्ष प्रस्तुत करने को कहा। दो-तीन दिन में योजना म० म० गोपीनाथ जी को दे दी गई, परन्तु सान्याल जी तब तक जा चुके थे। अस्तु, इस घटना से डॉ० फतहसिंह जी श्री अरविंद की विचारधारा के सम्पर्क में आये और उनकी शैली पर लिखित कपालिशास्त्री के वेदभाष्य को भी उन्होंने देखा। इसके पश्चात् फ्रेंच मनीषी रेने ग्नेनां की इस उक्ति ने उन्हें आकर्षित किया कि 'मनुष्य जाति की एक ही सार्वभौम एवं समान परम्परा थी और भारत के संस्कृत-ग्रंथों में उसे अब भी खोजा जा सकता है।' यह बात डॉ० साहब की तुलनात्मक दृष्टि से मेल खाती थी। अतः उन्होंने रेने ग्नेनां के अनेक ग्रंथ पढ़ डाले। इनमें से 'इन्ट्रोडक्शन टु हिन्दू डॉक्ट्रिन्स' ने डॉ० फतहसिंह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सर्वाधिक प्रभावित किया। स्वामी दयानन्द के समान ही यह विद्वान् भी मानता है कि षड्दर्शन कोई अलग-अलग स्वतंत्र दर्शन नहीं, अपितु वे वैदिक चिंतन के ही छः दृष्टिकोण हैं। डॉ० आनंद के० कुमार स्वामी के समान उसका यह भी विश्वास है कि वेद का अपना तत्त्वज्ञान है और उसकी उपेक्षा करके वेदभाष्य करने वाला मैक्सम्यूलर सम्प्रदाय बिलकुल गलत रास्ते पर जा रहा है।

यह बात डॉ० साहब को रुची, क्योंकि वे स्वयं स्वामी दयानन्द के समान पाश्चात्य विद्वानों के आलोचक थे। इसी दृष्टि से उन्होंने 1952 में अपना 'वैदिक एटिमॉलॉजी' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में उन्होंने समस्त वैदिक वाङ्मय से लगभग 1600 निर्वचनों को एकत्र करके आधुनिक भाषाविज्ञान के प्रकाश में उनका अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रायः सभी विदेशी विद्वान् और उनके भारतीय चेलों ने इन निर्वचनों को मूर्खतापूर्ण, निरर्थक तथा अवैज्ञानिक कहा था। डॉ० साहब ने वैज्ञानिक पद्धति से सिद्ध किया कि वे सभी सार्थक एवं अत्यन्त उपयोगी हैं। वैदिक विद्वानों ने इस ग्रंथ का अच्छा स्वागत किया। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल तो इतने प्रभावित हुए कि उनसे मिलने कोटा (राजस्थान) पहुंचे और उनके अप्रकाशित डी० लिट्० शोध-प्रबंध का दो दिन तक अध्ययन करते रहे। अंत में उन्होंने डॉ० साहब से आग्रह किया कि आपने अनेक वैदिक परिभाषाओं की जिस प्रकार व्याख्या अपने शोध-प्रबंध में की है वैसी ही व्याख्या सभी वैदिक पारिभाषिक शब्दों की करें।

यद्यपि डॉ० अग्रवाल को उन्होंने यह कार्य यथासमय करने का वचन 1955 में दिया था, परंतु अभी पांच वर्ष पहले ही वह प्रारम्भ हो सका। इस महत्त्वपूर्ण कार्य का श्री गणेश कराने का श्रेय डॉ० अग्रवाल के सुयोग्य शिष्य डॉ० अभयदेव शर्मा को जाता है। वे स्वयं वेद-संस्थान (अजमेर, दिल्ली) के अध्यक्ष हैं। उन्होंने डॉ० फतहसिंह से बार-बार अनुरोध किया कि वे अपने समाज सेवा के अन्य कार्यों से अवकाश ग्रहण करें और अपना शेष जीवन वेदमाता की सेवा में लगावें। इसी आग्रह के फलस्वरूप वेद-संस्थान, दिल्ली में वैदिक परिभाषा कोश का निर्माण भारत सरकार की किंचित् सहायता से चला है। अब तक लगभग 2000 पृष्ठ लिखे जा चुके हैं और उसका प्रथम भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। वैदिक परिभाषा कोश के स्वरूप की कुछ झलक डॉ० साहब के निम्नलिखित ग्रंथों में भी मिल सकती है जिन्हें वेद-संस्थान ने पिछले तीन-चार वर्षों में प्रकाशित किया है—

1. मानवता को वेदों की देन।
2. भावी वेदभाष्य के संदर्भ-सूत्र
3. दयानन्द एवं उनका वेदभाष्य
4. पुरुष सूक्त की व्याख्या (वेदसविता में प्रकाशित 18 लेख)
5. ढाई अक्षर वेद के (वेदसविता में प्रकाशित अब तक 22 लेख)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० साहब के इस अद्यतन प्रकल्प का समुचित मूल्यांकन करने के लिए, उनके सारस्वत प्रयासों की कुछ अन्य विशेषताओं को भी समझना आवश्यक है। उनमें सर्वप्रथम उनकी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में अभिरुचि के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के सनातन मूल्यों में अगाध अनुराग है। उनकी इस विशेषता की झलक हमें निम्नलिखित ग्रंथों में मिलती है—

1. कामायनी सौंदर्य
2. साहित्य और सौंदर्य
3. भारतीय समाज शास्त्र : मूलाधार
4. भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका
5. साहित्य और राष्ट्रीय स्व
6. दिशाबोध
7. आभास और सत्

इन ग्रंथों को पढ़ने से पता चलता है कि लेखक ने आधुनिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र का भी कितना गहन अध्ययन किया है। पिछले दो-तीन वर्षों में उनके जो लेख प्रकाशित हुए उनमें उन्होंने ट्रान्सपर्सनल साइकोलॉजी का भी उल्लेख किया है जो पिछले दस वर्षों में अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों ने विकसित की है।

इसी प्रकार वेदों में प्राप्त विज्ञान को भी वे नयी दिशा दे रहे हैं। सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द ने वेद में आधुनिक विज्ञान होने की बात कही थी। उसके पश्चात् म० म० मधुसूदन ओझा तथा पं० मोतीलाल शास्त्री ने अपने ग्रंथों में उसी बात को अपने ढंग से बड़े जोरदार शब्दों में उठाया। डॉ० सिंह आधुनिक विज्ञान के अधिकारी विद्वानों के अनुसंधानों को वैदिक तत्त्वज्ञान के आलोक में देखने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रसंग में, वे प्रायः अमेरिका के डॉ० फ्रितजॉफ काप्रा, जर्मनी के डॉ० वेनग्रिड पैंट्री तथा साहा इन्स्टीट्यूट ऑव न्यूक्लियर फिजिक्स (कलकत्ता) के डॉ० अर्धेन्दुशेखर चक्रवर्ती जैसे विद्वानों के संदर्भ से कहते हैं कि 20वीं सदी का विज्ञान जिन निष्कर्षों पर पहुंच रहा है, वे वेद के तत्त्वज्ञान में पहले ही विद्यमान हैं। 1984 में जब वे जर्मनी गए तो डॉ० वेनग्रिड पैंट्री ने कहा कि विज्ञान का जो नया युग 20वीं सदी में प्रारम्भ हुआ, वह उपनिषदों से पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ था। यही बात उसने आधुनिक विज्ञान की समीक्षा करते हुए अपने एक लेख में भी कही है। डॉ० चक्रवर्ती का कथन है कि वेदों की सहायता से आधुनिक विज्ञान अपनी सबसे जटिल समस्या को सुलझा सकता है। वह समस्या यह है कि जड़ प्रकृति में प्राणतत्त्व कहां से आ गया।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता जो डॉ० साहब के लेखों में 1969 से निरन्तर बढ़ती हुई दिखाई पड़ रही है, वह सिंधुघाटी सभ्यता के वैदिक आधार को लेकर आई है। डॉ० साहब ने सिंधु लिपि के 45 अक्षरों की खोज करके लगभग 1500

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंधु मुद्राओं को पढ़ा और यह कहकर 1969-70 में सारे विश्व को चौंका दिया कि सिंधु मुद्राओं की लिपि पूर्व-ब्राह्मी है और भाषा वैदिक संस्कृत। उन्होंने सिंधु लिपि में ओम्, उमा, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण आदि वैदिक शब्दों को पढ़ा है और उपनिषदों के अनेक विचारों को सिंधु-मुद्राओं पर चित्रित पाया है। इनमें से सर्वाधिक महत्त्व का वह चित्र है जिसमें अश्वत्थ वृक्ष पर 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' का प्रसंग देखा जा सकता है। इस संदर्भ में उनके निम्नलिखित ग्रंथ तथा लेख विशेष महत्त्व के हैं—

1. सिंधु लिपि में ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतीक
2. सिंधु लिपि रहस्योद्‌घाटनम् (संस्कृत)
3. इंडस सिविलीजेशन इन राजस्थान (इंगलिश)
4. उत्तर दक्षिण की सनातन एकता।
5. भारतीय—(बंगलौर की राष्ट्रोत्थान परिषद् में दी गई अंग्रेजी भाषणमाला, जो कन्नड़ भाषा में अनूदित है) इसी दिशा में उनकी एक शोध-पूर्ण व्याख्यानमाला 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदंति' शीर्षक से दिल्ली में दी गई। उसकी सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि डॉ० साहब ने वेद में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करने के साथ-साथ 'तस्य वाचकः प्रणवः' का समर्थन करते हुए कहा कि ओंकार का प्रयोग सभी वेदों में सहस्राधिक बार हुआ है। यहां चौंकाने वाली बात थी, क्योंकि अभी तक केवल तीन बार यजुर्वेद में और एक बार सामवेद में ही उसका प्रयोग माना जाता था। परन्तु डॉ० सिंह ने कहा कि वेद में जो ह्रस्व उकार आता है, उसे पादपाठकार 'ऊम्' करके लिखता है जो सनातनधर्मी और सिक्ख परम्परा में अभी तक चला आया है। साथ ही उन्होंने गोपथ-ब्राह्मण को उद्धृत करते हुए बताया कि ओम् का उच्चारण चार प्रकार से होता था जिनमें से एक ह्रस्व उकार भी था। यह बहुत बड़ी बात थी क्योंकि अभी तक देशी-विदेशी सभी भाष्यकारों ने ही नहीं, अपितु यास्क ने भी ह्रस्व उकार को केवल पादपूरक ही माना है।

राजर्षित्व

डॉ० फतहसिंह के इस ब्रह्मर्षित्व में उनके राजर्षित्व का सबसे बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने अपने जीवन के लगभग 30 वर्ष विभिन्न महाविद्यालयों में प्राध्यापक वाइस प्रिंसिपल; प्रिंसिपल तथा डायरेक्टर के रूप में बिताए हैं। कोटा, गंगानगर, ब्यावर एवं कालाडेरा के कॉलेजों में अनुशासनहीनता के स्थान पर छात्रों के जीवन में यम-नियम-संयम की जीवनधारा प्रवाहित करने के लिए, उन्होंने जो-जो सफल प्रयोग किए, उनका वर्णन करने के लिए यहां स्थान नहीं है। इतना ही कहना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त होगा कि वे जिस अदम्य उत्साह, निरन्तर अध्यवसाय, निर्भीकतापूर्वक कर्तव्य-पालन, अपार ईश्वर-विश्वास तथा चरित्र की दृढ़ता के साथ प्रशासन संभालते रहे, उसके कारण वे जहां गए वहां जादू का-सा प्रभाव हुआ। एक भूतपूर्व जज तथा राजस्थान के शिक्षा-मंत्री ने गंगानगर के राजकीय कॉलेज में गांधीजी के चित्र का अनावरण करते हुए कहा—'डॉ० फतहसिंह ने तो चमत्कार कर दिया। जहां बात-बात में चाकू-छुरे चलते थे, वहां आज प्रेम और अहिंसा का साम्राज्य है। बिना किसी दबाव के कॉलेज के सभी छात्र-छात्राएं अनिवार्य रूप से सामूहिक व्यायाम में सम्मिलित होते हैं और रविवार को भी दो घंटे सांस्कृतिक व्याख्यान माला में प्रिंसिपल को सुनने के लिए सभी सहर्ष आते हैं।'

इस जादू का कारण डॉ० साहब की मानवता और छात्र-वत्सलता है जो उनके देश-प्रेम एवं ईश्वरभक्ति से अनुप्राणित होने के कारण सबका हृदय जीत लेती है। इसका एक नमूना उनकी निम्नलिखित कविता में देखा जा सकता है जो उन्होंने अपनी एक शोध-छात्रा को पत्र में लिखा था—

बेटी, हरि को भूल न जाना,
जिसने सूरज चांद सितारे व्योम बीच लटकाए।
युग-युग से निज पथ पर चलते कभी नहीं टकराए॥
बुना उसी ने जननि-जठर में जीवन ताना-बाना।
रोम-रोम में रमा राम वह है जाना-पहचाना॥
बेटी, हरि को भूल न जाना,
घट-घट वासी राम निकट अति कण-कण बीच समाया।
राग-द्वेष में जो जन डूबा, उसने जान न पाया॥
शुद्ध-बुद्ध चैतन्य निरञ्जन 'मैं हूं' जिसने जाना।
मर्म सकल ब्रह्मात्मबोध का, उसने ही पहचाना॥

डॉ० साहब का राजर्षित्व उनके अपूर्व राष्ट्रप्रेम की उपज है। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' को अपने दैनंदिन जीवन में अवतरित किया। जब वे शोध के छात्र थे, तो 19 घण्टे प्रतिदिन कार्य करते थे, परन्तु केवल दो मुट्ठी अंकुरित चने, दूध, किशमिश और नींबू का सेवन करते थे। गांधीजी के जीवन-चरित को पढ़कर उन्होंने अनेक वर्षों तक नमक नहीं खाया और स्वतंत्रता प्राप्ति तक खद्दर का ही सेवन करते रहे। काकोरी शहीद राम प्रसाद बिस्मिल से उनकी भेंट बचपन में ही हो गयी थी तब से उनका विचार बन रहा था कि वे क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होकर देश को स्वतंत्र कराने में ही अपना जीवन लगा देंगे। इसलिए वे विवाह करना नहीं चाहते थे। परन्तु वेद-कार्य हेतु कृतसंकल्प होने के कारण वे विश्वविद्यालय को नहीं छोड़ सके और पितृभक्ति के कारण उन्हें विवाह करने के लिए विवश होना पड़ा। विवाहित होने पर, वे श्रीमती श्यामाकुमारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पत्नी रूप में ग्रहण करके एक आदर्श दाम्पत्य-जीवन की ओर अग्रसर हुए और दो सुयोग्य पुत्रों तथा दो विदुषी पुत्रियों को उत्पन्न करके पितृ-ऋण से उऋण हुए।

उनके गार्हस्थ्य जीवन की स्वाभाविक अर्थ-काम-परायणता भी धर्ममोक्ष-परायण होकर चली। इसी का परिणाम है कि उनके चारों बच्चे एवं उनके अनेक शिष्य उनसे सदाचार, त्याग, देशभक्ति तथा उदारता की शिक्षा लेते रहे हैं। राजस्थान के अनेक महाविद्यालयों में प्रोफेसर एवं प्रिंसिपल रहने के पश्चात् जब उन्होंने राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के निदेशक पद से 1969 में अवकाश ग्रहण किया, तो वे विश्व हिन्दू परिषद में आ गये, जहां वे पांच वर्ष तक राजस्थान शाखा के तथा सात वर्ष तक उत्तरप्रदेश के अध्यक्ष रहे। इसी कारण आपत्काल में उन्हें जेल जाना पड़ा, यद्यपि उन पर जो अभियोग लगाया गया था, वह झूठा सिद्ध होने पर उन्हें 10 महीने बाद छोड़ दिया गया।

कुछ वर्षों से वे वेदसंस्थान दिल्ली में शोध-निदेशक हैं। इस कार्य के लिए उन्हें जो मानधन मिलता है उसे वे वेदसंस्थान को ही समर्पित कर देते हैं। आज वे 75 वर्ष की आयु में भी घोर परिश्रम करते हैं। सर्वशक्तिमान परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे चिरायु हों जिससे वे अपने मिशन को पूरा कर दें।

हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सोनीपत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलीभीत की धरती पर साधना करने वाले

कविवर पंकज : एक जीवन

□ देवेन्द्र कुमार 'देव'

'कवि की वाणी पर जन के वैभव का होता अधिकार नहीं।
कवि के लेखनी उठाये बिन हट पाता है भू-भार नहीं।
वैसे तो पक्ष-विपक्ष लिये कवि रहता शासन के समीप।
जग को प्रकाश बांटता चला निज कर में लेकर अमर दीप।
लेकिन अन्तर से कोई कवि सत्ता का दास नहीं होता।
असमर्थ भुजाओं का होना रण से संन्यास नहीं होता।।'

ये पंक्तियां जीवन-संघर्षों के अन्तिम चरण से गुजरते समय पंकज जी ने भौतिक कलापों से बोझिल समाज को दी जिसमें कवि के लोकोपकारी किन्तु दुर्धर्ष मान को रूपायित किया गया है। इससे पूर्व साहित्य जगत के पूर्वापरवर्ती अनेक मनीषियों ने कवि के लौकिक देह-मानस में विद्यमान रहने वाली अलौकिक प्रतिभा और क्षमता को अपने-अपने ढंग ने प्रतिपादित किया। समीक्षक को चाहिए कि वह यह सब तत्त्व केवल कवि में ही देखे, भाषा-साहित्य के अर्थकामी चतुर सुजान में नहीं। कवि वह, जिसके रचनादर्शों और बाह्याचरण में आज जैसी लम्बी-चौड़ी खाई न हो जिसके व्यक्तित्व में कोई दुराव, कृतित्व में कोई प्रपंच न हो।

ऐसे सच्चे कवियों की सीमित शृंखला की एक मजबूत कड़ी के रूप में पीलीभीत जनपद के पंकज का भी एक नाम जुड़ा है जो अतीत की गहराइयों में सुदृढ़ आधार, वर्तमान के धरातल पर प्रखर ज्योतिस्तम्भ और भविष्य की ऊंचाइयों पर उज्ज्वल नक्षत्र से रूप में सर्वदा स्मरण किया जाएगा।

खीरी जनपद की कवि-प्रसूता भूमि के अंचल में स्थित ग्राम सहसपुर के संस्कारनिष्ठ कान्यकुब्ज परिवार में रामभरोसे लाल पाण्डेय ने आषाढ़ संवत् 1970 वि० के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को अपने जन्म से पिता पं० स्वामीदयाल पाण्डेय को गौरव प्रदान किया था। उनके ताऊ पं० भगवतीदीन पाण्डेय संस्कृत के परम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान, संगीतज्ञ और कवि थे जिन्होंने शिक्षा और काव्य के क्षेत्र में पंकज जी को उंगली पकड़कर चलना सिखाया।

कबीर की भांति 'मसि कागद छुयो नहि' वाली वात से कोसों आगे, परन्तु आधुनिक शिक्षा-जगत की उच्चतम उपाधियों से योजनों पीछे पंकज जी सामान्य शिक्षाधीत होकर भी स्वाध्याय के बल पर गहन चिन्तन और परम विद्वता पर अधिकार पाते गये।

इसे संयोग कहा जाए अथवा पीलीभीत जनपद का सौभाग्य कि वह नौकरी के सिलसिले में पूरनपुर आये और यहीं रम गये। नगर के एक सम्पन्न सनाढ्य वंशज श्री राजेन्द्र कुमार मिश्र से उनका सम्पर्क हुआ जो भ्रातृत्व में पलता रहा। इस मणिकांचन-योग ने जहां राजेन्द्र जी को काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर दिया, वहीं पंकज जी के प्रतिभा-प्रकाशन में आने वाले विभिन्न गतिरोधों को दूर किया। शनैः-शनैः कविवर पंकज और राजेन्द्र 'भानु' काव्य-मंचों के साथ-साथ राजनीतिक और सामाजिक-सेवा के क्षेत्रों में सहोदर के रूप में निरन्तर आगे बढ़ते रहे।

यह वह समय था जब पीलीभीत क्षेत्र में हिंदी की अपेक्षा उर्दू अदब की महफिलें अधिक जमती थीं। पंकज जी ने 'पूरनपुर क्षेत्र के बाबू श्रीराम अग्रवाल, सियाराम-आर्य, बाबू शिवस्वरूप वाजपेयी, बाबू शान्तीस्वरूप, कुंवर शिवबख्शसिंह, राजेन्द्र मोहन दीक्षित, कुं० दरबारीसिंह 'माहिर', वकील चंद्रभान सिंह, रामचंद्र लोहिया बृज बिहारीलाल आदि जैसे साथियों को तथा पीलीभीत में पं० रोशनलाल शुक्ला, शिवस्वरूप मिश्र, कुं० पुनीन्द्रपालसिंह, आचार्य गणेश शंकरशुक्ल 'बन्धु', शम्भुशरण अवस्थी सदृश साथियों और शम्भुशरण शुक्ल, इंदुसारस्वत, सुरेन्द्र सक्सेना, राधारमण त्रिवेदी, रमेशपुष्प आदि सहयोगियों को साथ लेकर जनपद में हिंदी की अलख जगाने का कार्यक्रम बनाया जो आजीवन चलता रहा। पीलीभीत जनपद के काव्य-धुरीण और वर्तमान पीढ़ी के श्रम से कण-कण में हिंदी की जो व्यापकता आज दृष्टिगोचर हो रही है, उसका बहुत-कुछ श्रेय पंकज जी को ही जाता है।

जहां तक पंकज जी के अस्तित्व का प्रश्न है, जीवन का ऐसा कोई आयाम शेष न बचा जिसको पंकज जी के संवेदनशील कवित्व ने मार्मिक ढंग से स्पर्श न किया हो। यों तो वे मुख्यतया ओज और वीररस के ही कवि थे परन्तु मानव-जीवन में समय-समय पर घटित होने वाले प्रत्येक रस को उन्होंने अपनी कविता में स्थान दिया। उनका मानना था कि जीवन की सार्थकता समय-समय पर मनुष्य के ऊपर पड़ने वाले दायित्वों के सफल निर्वहन में ही है, इसलिए कविता केवल एक रस से जुड़ी नहीं रहनी चाहिए।

आदि कवि वाल्मीकि की भांति पंकज जी भी अत्याचार के कारण उद्वेलित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुणा को ही कविता का उद्गम मानते हैं—

'जब वसुधा पर अनाचार का शासन होता है।
कवि के प्राण तड़प उठते हैं, गीत निकलते हैं।।'

और प्राण तड़प कर किस प्रकार अपना प्रतिरोध प्रकट करते हैं—

'मुझको डर है कलम कराल कृपाण न बन जाए।
यह करुणा का गीत प्रलय का गान न बन जाए।।'

क्योंकि सिद्धान्तरूप में उन्होंने माना है—

'वध न अगर रावण का करते, पुजते राम नहीं।
बिना शक्ति के सिद्धान्तों का कोई दाम नहीं।।'

इस प्रकार कवि ने जहां अत्याचारियों के प्रति जन-आक्रोश और उस पर विजयिनी शक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वहीं इस दिशा में आगे बढ़कर समाज को बदल डालने के लिए युवकों का भी आह्वान किया है—

'नौजवानो उठो, ओ किसानो उठो, तुम जो संभले तो दुनिया संभल जाएगी।
अन्न की, वस्त्र की, शास्त्र की शस्त्र की, तुम जो टालो मुसीबत तो टल जाएगी।।'

पंकज जी ने केवल कोरे सिद्धान्त ही प्रतिपादित किये हों, ऐसी बात नहीं सामाजिक कुरीतियों राजनैतिक शोषणों और भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्षों में स्वयं को हुत करने की भी उसकी इच्छा रही है—

'पुरन्दर मौन कैसे हो, लिये जल से भरी आंखें।
बनाओ वज्र मेरी अस्थियों से, दान कहता है।।'

आज समग्र देश में सर्वत्र सांप्रदायिक संकीर्णता, देश और समाज को विखंडित करने के भयावह स्वर गूंज रहे हैं। जिनकी लपटों में मानवता जलकर राख हुई जा रही है परन्तु पंकज जी ने अपनी रचनाओं से हमेशा समाज को व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं के समक्ष केवल राष्ट्रीयता के सर्वोपर्य का सन्देश दिया है—

'पूछ रही है भारतमाता लिये अश्रु की धार नयन में,
बलिवेदी पर शीश चढ़ाने, बोलो, पहले कौन चलेगा।'

इसी प्रकार 'वीरों की वन्दना', 'विरोधी-पत्र लिखकर शत्रु', 'निश्चय', 'देश तुमसे मांगता है', 'भारतीय जवान', 'जय जवान-जय किसान' इत्यादि राष्ट्रीय रचनाओं में कवि पंकज ने प्रत्येक भारतीय को प्राण-पण से देशरक्षा-व्रत लेने का दायित्वबोध कराया है।

हुंकार और विद्रोह के कठोरतम सिद्धान्तों का प्रणयन करने वाले कवि के लिए प्रेम-बन्धन अछूते रहे हों, प्रस्तुत रचनाओं से यह बात भी नहीं लगती—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कवि के गीत किसी प्रेमी के उर का प्यार लिये होते हैं'
'प्रिय की निष्ठुर विजय हुई, पर, यह तो मेरी हार नहीं है'
'किसी प्रेयसी के परिरम्भण को ही प्यार कहा जाता है'
'प्रिय का परिचय प्यार बन गया'

इसके अतिरिक्त 'अरुणोदय की उषा', 'विहंगो न घबराओ' आदि रचनाओं में कवि ने संघर्षशील जीवन में साहस और धैर्य के साथ निरन्तर आगे बढ़ते रहने का सन्देश दिया है।

साहित्य में पंकज जी की भाषा सामान्य बोलचाल के अतिरिक्त कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ होकर भी बोधगम्य रही है। उनकी रचनाओं में ओज और प्रसादगुण के दर्शन होते हैं। पिंगल के आचार्य होने के कारण उन्हें घनाक्षरी-सवैया लिखने में विशेष सिद्धहस्तता मिली। उर्दू बहुल समाज में वह हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी-उर्दू का सामंजस्य बनाकर चले।

स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त पंकज जी की उद्धरणीय कृतियों में 'शेर अफगन-मेहरुन्निसा' (शृंगारपरक काव्याख्यान) 'हरिसिंह नवला' (वीरकाव्य) 'युद्धघोष' (गीतसंग्रह) 'गंगावतरण' (खण्डकाव्य) के अतिरिक्त' हिन्दूपति महाराणा प्रताप' (महाकाव्य) है, इनमें 'शेर अफगान-मेहरुन्निसा' ('युद्धघोष') 'गंगावतरण' की पाण्डुलिपियां उनके व्यस्त और अस्वस्थ जीवन-काल में कहीं लुप्त हो गयीं जिनके कतिपय अंश वह कभी-कभी कवि गोष्ठियों और सम्मेलनों में सुनाया करते थे।

अपने जीवन के अन्तिम दशक में पंकज जी प्रज्ञाचक्षु हो गये थे। उनके 'नलवा' और 'प्रताप' काव्य इसी दशक के पूर्वार्द्ध में पूर्ण हुए थे। अर्थाभाव में उनकी सभी रचनाएं अप्रकाशित रहीं। सन् 1967 में उनके नागरिक अभिनन्दन के अवसर पर हिन्दी साहित्य परिषद, पीलीभीत ने 'पंकज की पंखुड़ियां' नामक एक गति-संग्रह प्रकाशित किया था। वह भी अब दुर्लभ है।

जनपद तथा जनपद के बाहर पंकज जी की साहित्यिक सेवाओं के लिए उनके अनेक नागरिक अभिनन्दन आयोजित हुए। सन् 1967 ई० में तत्कालीन राज्यपाल डॉ० बी० गोपाला रेड्डी ने उनकी रचनाओं से प्रभावित होकर उन्हें 'राजकवि' सम्बोधन से अभिषिक्त किया था।

यदि पंकज जी के जीवन का कोई अध्ययन करना चाहे तो प्रताप-काव्य में प्रताप-चरित्र के रूप में उनके आत्मचरित का दिग्दर्शन मिल सकता है जिसे कवि ने अपने सम्पूर्ण मनोयोग से लिखा (साहितियक मनीषियों का मत है कि हरिसिंह नलवा और प्रताप महाकाव्य प्रकाश में आने पर हिन्दी-साहित्य की दुर्लभ निधि बनेंगे।

उनकी अन्तिम वंचना—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम का डेरा तब तक जब तक रवि का आभास नहीं होता,
असमर्थ भुजाओं का होना रण से संन्यास नहीं होता,

अपनी सारगर्भिता और व्यापकता से गीत होकर महाकाव्य-सा महत्त्व रखती है।

पूरनपुर में पंकज जी द्वारा स्थापित परम्परा के अन्तर्गत 42 अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन और मुशायरे सम्पन्न हुए जिनमें भारत-प्रख्यात कवियों और शायरों ने उत्साह के साथ भाग लिया है। इन्हीं आयोजनों में सम्मिलित सन् 1979 में पंकज जी का नागरिक अभिनन्दन भी किया गया जिसकी एक स्मारिका 'पंकज-पराग' प्रकाशित की गयी। इसमें पंकज जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को संग्रहीत किया गया है। अभिनन्दनोत्सवों के क्रम में पूरनपुर जैसे छोटे-से नगर में अवधी सम्राट पं० वंशीधर शुक्ल, सुप्रसिद्ध गीतकार बलबीरसिंह 'रंग' और प्रतिष्ठ मनीषी राजर्षि रणंजयसिंह भी नागरिकों द्वारा सम्मानित किए गए।

29 अगस्त, 1982 की रात्रि में लोक-मानस का यह पंकज सदा-सर्वदा के लिए विशीर्णित हो गया। वह पंकज जिसके बारे में महाकवि शिशुपालसिंह 'शिशु' कहा करते थे—

'शुद्ध सरोवर के तुम पंकज, कैसे 'कहो' तुम्हें पंकज मान लें'

उनके आकस्मिक निधन के पश्चात् कतिपय गतिरोधों और अनावश्यक हस्तक्षेपों के कारण कवि-सम्मेलनों की वह परम्परा भी समाप्तप्राय हो गयी (अभिनन्दन समारोहों की परिपाटी भी उनके न रहने के कारण नहीं रही) यहां तक कि पंकज जी की प्रेरणा से नगरश्रेष्ठि स्व० कन्हैयालाल गुप्ता द्वारा दान में दिए गए 'हिन्दी-भवन' को उनके (सेठ के) वर्तमान वंशजों ने अधिगृहीत कर लिया।

राष्ट्रीय एकता और सर्वधर्म समभाव के प्रतीकस्वरूप पंकज जी ने देवेन्द्र 'देव' (लेखक) शौकत अली 'शौकत' 'अमृतपालसिंह 'अमृत' और चन्द्रशेखर जेम्स 'दास' नामक चार काव्य-शिष्य दिये। हिन्दू की 'हे' मुसलमान की 'मीम' लिये हम 'हम हैं' को मानने वाले पंकज जी कभी भी क्षुद्र साम्प्रदायिकता के शिकार नहीं रहे।

आज वह महाकवि देहरूप में नहीं हैं परन्तु उनका जीवन सदैव जन-मानस को देश और समाज के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देता रहेगा। उनकी प्रणीत परम्पराओं को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है अन्यथा उनके निवास पर टंगा और प्रत्येक आत्मीय के मन में बसा उनका चित्र अपने उत्तराधिकारियों अपने इष्टमित्रों से मानो यह शिकायत करता रहेगा—

'मृत्यु ने मुझको सुलाया तुम मिटाकर ही रहे'

पूरनपुर (पीलीभीत)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू साहित्य का 'बानसीब' शायरी का 'बेनसीब' शायर

'सरूर' जहानाबादी

□ राकेश 'कमल'

जिस उर्दू शायरी की सेवा गालिब, मीर, दाग, इकबाल और फिराक जैसे महान शायरों ने की हो, उस उर्दू शायरी को आप 'बा-नसीब, न कहेंगे तो फिर क्या कहेंगे ? मगर यह एक कटु सत्य है कि इस 'बा-नसीब' शायरी की अथक सेवा करने वाले बहुत से ऐसे 'बे-नसीब' शायर भी हैं जिन्हें समाज ने तो उपेक्षा दी ही, जिन्दगी और खुशी ने भी कभी उनके साथ वफा नहीं की । उर्दू शायरी के एक ऐसे ही धूमिल सितारे का नाम है—'सरूर' जहानाबादी !

'सरूर' साहब उर्दू के माने हुए शायर थे और उर्दू के बड़े-बड़े साहित्यकार एवं शायर उन्हें 'शायरेआजम' का-सा दर्जा देते हैं । 'सरूर' साहब की कई रचनाएं उर्दू साहित्य की ऊंची-ऊंची कक्षाओं के पाठ्यक्रम में हैं, मगर, बहुत कम लोग 'सरूर' साहब को जानते होंगे । और तो और जिस पीलीभीत जनपद में 'सरूर' साहब पैदा हुए उसी पीलीभीत के लोग 'सरुर' साहब का नाम सुनकर आश्चर्य से मुंह खोल देते हैं—'कौन सरूर ?···हम नहीं जानते ! साहित्यकारों का तो यह दुर्भाग्य है ही कि साहित्य की अनन्य सेवा करके भी वह जन-सामान्य की स्मृति में अपना स्थान सुरक्षित न रख सके, साथ ही यह पीलीभीत जनपद का भी दुर्भाग्य है कि जिस शहर ने स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, श्री चण्डी प्रसाद 'हृदयेश' और 'सरूर' जहानाबादी जैसे अनमोल साहित्यकार अपनी माटी से जन्मे, उस पीलीभीत का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहीं नहीं है ।

'सरूर' साहब का पूरा नाम श्री दुर्गा सहाय सक्सेना था । इनके जन्म की कोई सही तिथि तो ज्ञात नहीं हो सकी है, परन्तु इतना निश्चित है कि माह दिसम्बर सन् 1878 में 'सरूर' साहब पीलीभीत जनपद के जहानाबाद नामक कस्बे में पैदा हुए थे । जहानाबाद में 'सरूर' साहब के पूर्वजों का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है । जो भी थोड़ी-बहुत जानकारी मिल सकी है, वह यह है कि पानीपत की तीसरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ाई के समय दिल्ली एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों से लगभग पांच सौ कायस्थ परिवार पलायन करके जहानाबाद आ बसे थे, जो एक ही वंश के थे और संभवतः 'सरूर' साहब का परिवार भी इन्हीं में से एक था। इनके पिता का नाम श्री प्यारे लाल सक्सेना था और यह जमींदार परिवार के थे। उस समय जिला-बोर्ड के सदस्य भी रहे। यह शौकिया हकीमी किया करते थे, अतः उस क्षेत्र के बुजुर्ग अधिकतर 'हकीम प्यारे लाल' के नाम से ही उन्हें जानते हैं।

'सरूर' साहब की वंशावली केवल दो पीढ़ियों की ही मिल सकी है। इनके पिता चार भाई थे—मुंशी रामगुलाम, मंशी लक्ष्मन प्रसाद, मूलचन्द एवं हकीम प्यारे लाल। इन चारों के एक-एक पुत्र था—मु० बलदेव सहाय, मु० दीनानाथ, मिश्रीलाल एवं दुर्गा सहाय। यह दुर्गा सहाय ही बाद में 'सरूर' के नाम से विख्यात हुए। इनके एक पुत्र था—वासुदेव—जो छः वर्ष की अल्पायु में ही काल-कवलित हो गया। 'सरूर' साहब के छोटे भाई श्री मिश्रीलाल जी के सुपुत्र श्री हरीशंकर आज भी जीवित हैं और पीलीभीत में ही हैं। इनके ममता नामक एक पुत्री भी है। बस यही उनके वंश का उपलब्ध संक्षिप्त इतिहास है।

इनका विवाह ग्राम पसियापुर की शंकर देवी के साथ हुआ था। शुरू-शुरू में 'सरूर' 'बहशत' उपनाम से लिखा करते थे और मौलवी सय्यद अली 'बहार' से अपनी रचनाएं ठीक कराया करते थे। अतः इनके उस्ताद के रूप में मौलवी साहब का नाम ही लिया जाता है। सन् 1889-90 से इनकी साहित्य-क्षेत्र में अपनी पहचान बन चुकी थी और उनकी नज्में उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। इसी समय इन्होंने अपना नाम बदलकर 'वहशत' से 'सरूर' रख लिया और यही नाम 'सरूर' साहब के जीवन का पर्याय बन गया क्योंकि इसके बाद वे हमेशा सरूर (नशे) में ही चूर रहे। दुःख के एक के बाद एक आघात उनके जीवन को छलनी करते गये और वे शराब के 'समन्दर' में डूबते चले गये।

'सरूर' साहब की शायरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिस उर्दू शायरी को लोग 'शराब' और 'शबाब' से अलग करके कोई अस्तित्व ही नहीं समझते थे, उसी उर्दू शायरी को 'सरूर' साहब ने छोटी-छोटी-सी वस्तुओं पर लिखी गई श्रेष्ठ नज्में दीं। इस तरह यदि यह कहा जाए कि 'सरूर' साहब ने उर्दू शायरी को एक नयी दिशा दी, तो यह अतिशयोक्ति न होगी। हिन्दी के प्रयोगवादी रचनाकार 1935-36 के आस-पास छोटी-छोटी वस्तुओं तथा घटनाओं को लेकर जैसी रचनाएं लिख रहे थे, वैसी नज्में 'सरूर' साहब बहुत पहले लिख गये थे। अन्तर केवल इतना है कि प्रयोगवादी रचनाओं की भांति उनकी रचनाएं अतुकान्त नहीं थीं, वरन् उर्दू साहित्यशास्त्र की कसौटी पर एकदम खरी उतरती थीं। बानगी के रूप में उनकी नज्मों की एक झलक देखिए। पहाड़ी जंगलों में पाये जाने वाले एक छोटे-से लाल कीड़े पर एक नज्म लिखी थी—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आह ! ओ नन्हें-से कीड़े,
नाजिशे-सहरा है तू ।
दश्त में इक सुर्ख छोटा-सा,
गुले-राना है तू ।।'

इसी तरह एक अन्य उदाहरण देखिए । सांप को देखते ही हम भयाक्रान्त हो उठते हैं। डर के मारे हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, लेकिन 'सरूर' साहब को उसकी लहराती हुई चाल में किसी 'लैला' की जुल्फों के खम नज़र आते हैं। जरा देखें, क्या ही इश्किया अन्दाजे-बयां है—

'आ कलेजे से लगा लूं, तुझको मारे यासमीं ।
हैं किसी गेसू के खम तुझमें, किसी अबरू के चीं ।।
है तेरे हुस्ने-सिया से, दिल को इक दिलबस्तगी ।
कैस हूं मैं और है तू, लैलिये महमिल नशीं ।।'

इसी तरह 'गाय' पर लिखी गयी उनकी एक नज्म उस समय बहुत लोकप्रिय हुई थी।

'सरूर' साहब की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी भाषा-समन्वयता। उनकी बहुत-सी रचनाओं में तो अरबी-फारसी के कठिन शब्द अवश्य मिलते हैं लेकिन उनकी अधिकतर रचनाएं हिन्दी-उर्दू के सामान्य शब्दों के माध्यम से ही रची गयी हैं । एक उदाहरण देखिए। रामचन्द्र जी वन जाने को उद्यत हैं और सीताजी एक आदर्श भारतीय पत्नी की भांति उनके साथ जाने को—

'हमराह अपने वन के मुझे नाथ ले चलो ।
रेखा तुम्हारे चरणों की हूं, साथ ले चलो ।।
नाजुक है मेरा शीशए-दिल, टूट जायेगा ।
छूटा तुम्हारा साथ तो जी, छूट जायेगा ।।
हमराह वन के नाथ। मेरी रूह जायेगी ।
साये की तरह साथ, मेरी रूह जायेगी ।।
घर में जो छोड़ जाओगे, सीता गरीब को ।
पाओगे वन से आके न, जीता गरीब को ।।'

एक भारतीय पत्नी के हृदय की भावनाओं का कितना सीधा-साधा वर्णन है ! कहीं कोई बनावट नहीं ।

'सरूर' साहब के जीवन पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि सुख 'सरूर' को कभी नहीं मिला। विवाह के बाद शीघ्र ही उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, पर उनकी पत्नी उनको यह उपहार देकर सदैव के लिए विलग हो गयीं। इस बज्राघात को 'सरूर' साहब किसी न किसी तरह सह गये । उनकी पत्नी की एक निशानी जो थी उनके पास ! यानि उनका पुत्र वासुदेव । 'सरूर' साहब ने दूसरा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह तो नहीं किया पर 'अंगूर की बेटी' के इश्क में गिरफ्तार हो गये। बस— नशे की अर्द्ध विक्षिप्तावस्था में 'सरूर' साहब अपने पुत्र को सीने से चिपकाये-चिपकाये घूमते रहते। परन्तु, भाग्य को किसने देखा है? छः वर्ष का होते न होते वह भी 'सरूर' साहब से रूठकर सदैव के लिए चला गया। यह आघात 'सरूर' साहब के लिए असह्य था। उनकी हालत अजीब-सी हो गयी। अब वे चौबीसों घंटे शराब के नशे में धुत पड़े रहते थे। उसी नशे की हालत में जो भी लिखते वह यूं ही किसी परचे पर लिखकर अपनी तकिया में घुरेस लिया करते थे। कुछ कहीं भेज दिया तो छप गया, अन्यथा अपने लिखे को कहीं विधिवत संकलित नहीं करते थे। इसी कारण उनका बहुत-सा कलाम उनके शिष्यों ने अपने नाम से छपवा लिया। काशी विश्वविद्यालय के श्री के० सी० नैय्यर, इसकी खोज में जुटे थे और उन्हें इस बात के काफी प्रमाण भी प्राप्त हुए थे। श्री नैय्यर ने उनकी बहुत-सी रचनाओं का एक संकलन भी प्रकाशित किया। नाम रखा—'नवाए-सरूर'।

'सरूर' साहब द्वारा रचित अब तक कुल पन्द्रह पुस्तकें पता चली हैं—खूने-नाहक, नैरंगे-कलक, नश्तरे-मातम, दिश्नये-कलफ, शेवत, अक्सीरे सखुन, जामे-सरूर, खुमखानये-सरूर, खमकहये-सरूर, साजे-फुगां, हंगामये महशर, सोजे जिगर, विसाल-नालये-खूचकां, दुनिया की उजड़ी हुई महफिल आदि।

'सरूर' साहब के शिष्यों के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है लेकिन श्री 'शाकिर' तो उनके शिष्य माने ही जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त पता चला है कि इनके एक अन्य शिष्य श्री प्यारे लाल 'आनन्द' थे जो लुधियाना के रहने वाले थे। इनके समकालीन जहानाबादी शायरों में तीन नाम प्रमुख हैं—'गोया' साहब जहानाबादी, श्री रघुवीर सहाय 'बिटियां' एवं श्री खलील उर्र रहमान 'खलील।' श्री 'खलील' धर्म परिवर्तन करके हिन्दू से मुसलमान हो गये थे।

3 दिसम्बर, 1910 को 'सरूर' साहब इस असार संसार से कूच कर गए। उनकी मृत्यु के समय का एक किस्सा बहुत प्रसिद्ध है। 'सरूर' मृत्यु-शैय्या पर पड़े थे। ऐसे में उन्होंने पीने की लिए मदिरा की मांग की। भला एक हिन्दू परिवार में यह कैसे संभव था कि एक मरणासन्न व्यक्ति को शराब पिला दी जाए! अतः उनकी भाभी ने, यह कहकर कि शराब है, पानी के कुछ घूंट उन्हें पिला दिये। आजन्म और आकण्ठ शराब में डूबे रहने वाले 'सरूर' मृत्यु-शैय्या पर पड़े होने के बावजूद एक ही घूंट में पहचान गए कि यह मदिरा नहीं है। उनके मुंह से निकला—

'बजाय मय के दिया आबे-गिलास मुझे।
समझ लिया मेरे साकी ने बदहवास मुझे।।'

बस···इसके बाद 'सरूर' को बोलते कोई नहीं सुन सका। यही उनका अन्तिम शेर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जो उनकी पुस्तक 'जामे-सरूर' में संग्रहीत है।

जहानाबाद में जहां पर 'सरूर' साहब का मकान था, उसी के पास इन पंक्तियों के लेखक के पूर्वजों का मकान भी था। इन मकानों का अब तक नामो-निशान मिट चुका है। 'सरूर' साहब की यादगार में उनकी जन्म-शताब्दी के अवसर पर वहां 'सरूर' हायर सेकेण्ड्री स्कूल खोल दिया गया है। परन्तु उर्दू-साहित्य के इस अनन्य सेवी के लिए क्या इतना ही पर्याप्त है? यह एक ऐसा प्रश्न-चिह्न है जो अब तक हिन्दी-उर्दू के कई साहित्यकारों के नाम के आगे लग चुका है और जिसका अभी तक कोई समाधान नहीं ढूंढ़ा जा सका है। 'सरूर' साहब का जीवन और साहित्य दोनों अब भी शोध के विषय हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गेंदनलाल 'वेनवा'

□ अभीत

'मेरे दिल की अंगूठी के नगीं सरकार बन जाओ।
मेरी रग-रगमें जम जाओ नफस का तार हो जाओ।।'

'रामचरित मानस' को आधार बनाकर उर्दू में 'रामायण' लिखने वाले श्री गेंदनलाल जी 'वेनवा की केवट प्रसंग' की इन पंक्तियों का मैं छात्र जीवन से ही प्रशंसक रहा हूं। अभी कुछ दिनों पहले पता चला कि श्री वेनवा जी पीलीभीत आए हुए हैं। मैं सारा काम-धाम छोड़ कर उनसे मिलने पहुंच गया। पीलीभीत कोतवाली के पास उनके निवास स्थान पर 84 वर्षीय कवि भाव-विह्वल होकर गले मिले और जो कुछ मैंने जानना चाहा उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से बताया।

श्री वेनवा जी के पूर्वज पीलीभीत के ऐतिहासिक कस्बा जहानाबाद के रहने वाले थे। यहां से वे पीलीभीत की तहसील वीसलपुर चले गये। यहीं मो० दुबे में 5 जून 1903 को स्वनामधन्य शायर श्री वेनवा को माता मूल कुमारी ने जन्म दिया। पिता श्री मुंशी हीरालाल जी के संरक्षण में वेनवा जी ने हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त की और फिर जिला परिषद कार्यालय पीलीभीत में सेवारत हुए। सन् 1964 में जिला परिषद कार्यालय के अधीक्षक पद से अवकाश प्राप्त किया।

शायरी का शौक बचपन से ही था। जिसे गुरु मुंशी हजारी लाल जी 'हजार' बीसलपुर ने और भी बढ़ाया। पीलीभीत के प्रसिद्ध शायर मुहम्मद अब्दुल मजीद साहब भी इनके उस्ताद रहे। श्री गेंदनलाल जी का उर्दू में 'वेनवा' तखल्लुस है और हिन्दी में उपनाम 'मूक' है। 'वेनवा' उपनाम गुरु हजारी लाल 'हजार' ने दिया और 'मूक' उपनाम कवि ने स्वयं चुना।

'रामायण' लिखने की प्रेरणा पत्नी से मिली। वेनवा जी ने 'रामायण' आठ कांडों में लिखी है। इसकी लेखन शैली उर्दू तथा लिपि नागरी है। दिनकर जी से महाभारत से सम्बन्धित रचना सुनने के बाद उर्दू में महाभारत लिखा। अपनी पुत्रवधू से कालिदास कृत 'मेघदूत' सुनकर मेघदूत का उर्दू में अनुवाद किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेनवा जी की अनेक रचनाएं पुरस्कृत हुईं जिनमें 'मेघदूत', 'रानी सारन्धा', 'सुदामा चरित, महाभारत' 'संतोषी माता' प्रमुख हैं। 'सुदामा चरित', 'सारंधा', 'लक्ष्मीबाई झांसी' की लेखन शैली उर्दू और लिपि नागरी है।

'कुरान' का पद्यात्मक अनुवाद भी किया है। इसके अतिरिक्त अनेक फुटकर रचनाएं भी लिखीं। छंद, घनाक्षरी, सवैया लिखे। समस्यापूर्ति भी की। 'तुलसी था बिन्दी भव्य भारत के भाल की'। समस्या पूर्ति विशेष रूप से सराही गयी। शायर वेनवा महाकवि तुलसी की 'कवितावली' की अनुप्रास प्रियता से विशेष रूप से प्रभावित हुए। परिणामस्वरूप 'कवितावली' का उर्दू में अनुवाद किया। साथ ही उसी प्रकार अनुप्रास लाने की चेष्टा की जिसमें शायर सफल रहा। इन पंक्तियों के लेखक को 'बेनवा' जी ने 'कवितावली' के छन्दों के साथ-साथ उर्दू अनुवाद के कई पद सुनाये जिनमें छंद सं० (कवितावली के अनुसार) 183 में अनुप्रास प्रयोग अत्यन्त कलात्मक था। शायर के लेखन का बहुत बड़ा अप्रकाशित भाग बस्तों में बन्द है।

मैंने 'बेनवा' जी से पूछा—उर्दू हिन्दी के भाषागत झगड़े के बारे में आपका विचार क्या है? वेनवा जी बोले—ये सब राजनीतिक है। शायर और कवि इस मसले पर नहीं लड़ते। बहुत से मुसलमान कवियों ने हिन्दी की सेवा की। इसी प्रकार बहुत से हिन्दू शायरों ने उर्दू की भरपूर सेवा की है। फिर झगड़ा कैसा?

मैंने कहा—'नयी पीढ़ी के कवि शायरों को आप कुछ संदेश देना चाहेंगे।' वेनवा जी बोले—'नये कवियों को संस्कृत का ज्ञान होना चाहिए। कवि अथवा शायर जिस भाषा में उर्दू अथवा हिन्दी में साहित्य साधना करें उस पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए तथा अपनी संस्कृति की अधिकतम जानकारी रखनी चाहिए।'

मैंने कहा वेनवा जी—'क्या यह सच है कि शराब पिये बगैर कविता नहीं हो सकती।' वेनवा जी हंसने लगे। बोले—'ऐसी बात नहीं, अनेक कवि और शायर नशा नहीं करते। हां, अधिकतर नशे की उमंग में ही लिखते हैं। पुराने कवि भंग पीते थे और शायर शराब।' फिर उन्होंने अपना एक प्रसिद्ध मुक्तक सुनाया।

'फूल कांटे में रखकर तुलता है।
जख्मे-दिल आंसुओं से धुलता है।
आप कहते शराब नाकिश है।
इसको पीकर दिमाग खुलता है।'

वेनवा जी बेंत के सहारे हमें बैठक से बाहर तक छोड़ने आये। काफी कमजोर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, पर उस कमजोर शरीर में एक जिन्दादिल, उमंग भरी आत्मा का अहसास हमने किया। उन्हें इस बात का दुख था कि पीलीभीत के किसी व्यक्ति ने उनके पास बैठकर उनके साहित्य के, जीवन के बारे में जानने की चेष्टा नहीं की और उन्हें सुख की अनुभूति थी—हमसे मिलने हमसे खुलकर बातचीत करने की। विदाई के समय एक बार फिर वे भावविह्वल हो गये।

Central Library
185472
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिलम गीतकार 'अंजुम'—पीलीभीती : स्मृतियों के दर्पण में

□ बहार पीलीभीती

साहित्य जगत को उत्तर-प्रदेश ने असंख्य प्रतिभाएं दी हैं। फिलम गीतकार 'अंजुम' पीलीभीती भी उन्हीं में से एक हैं। उ० प्र० के जनपद पीलीभीत में जन्मे सुविख्यात फिलम गीतकार मूलरूप से उर्दू शायर थे। परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी से भी उनको बहुत प्यार था। वह हिन्दी में भी लिखते थे। उनकी अधिकांश रचनाएं हिन्दी-उर्दू मिश्रित आम बोलचाल की भाषा में होती थीं। अपनी इस शैली के कारण वह अल्प समय में ही ख्याति के उच्च शिखर पर पहुंच गये थे।

अंजुम पीलीभीती का पारिवारिक नाम पुत्तन खां था। उनकी मां अब्बासी मुजरा करने वाली तवाइफ थीं और पिता पुलिस में सिपाही थे। मोहल्ला मोहम्मद वासिल, पीलीभीत में उनके पिता का निजी मकान था। वहीं अंजुम का बचपन बीता। परिवार और शहर का वातावरण अदबी (साहित्यिक) होने के कारण उन्हें बचपन से ही शायरी का शौक बीमारी की तरह लग गया। उन्होंने अपनी छोटी-सी आयु में ही लिखना शुरू कर दिया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मदरसा बसीरतुल इस्लामिया शाहजी अल्ला हू मियां में हुई थी। फिर वह स्थानीय सिद्दीक नेशनल हाई स्कूल (अब इण्टर कॉलेज) पीलीभीत के छात्र रहे। वहां पहुंचकर 'अंजुम' पीलीभीती ने मुशायरों में भाग लेना शुरू कर दिया। अपने मर्मस्पर्शी गीतों और गजलों के लिए उन्हें प्रसिद्धि मिलनी शुरू हुई और शीघ्र ही उनकी अलग एक पहचान बन गई। साहित्यिक अभिरुचि के कारण पढ़ाई में उनका मन न लगा तो उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में भी अपनी रचनाएं प्रकाशित करायीं। बज्मे अदब पीलीभीत की सभी गोष्ठियों में वह नियमित रूप से सम्मिलित होते थे। तत्कालीन हस्त लिखित पत्रिका 'अक्स' में भी उनकी कई रचनाओं ने स्थान पाया। उनके गीतों की हिन्दी लिपि में एक पुस्तक 'आराम विराम' प्रकाशित हुई थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाम्पत्य के बंधन में बंधने के उपरान्त भी 'अंजुम' पीलीभीती की साहित्यिक गतिविधियों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। वह अपनी पत्नी को लेकर बम्बई चले गये। उनकी ख्याति और लेखनी से प्रभावित होकर अपने समय के सुविख्यात फिल्म निर्माता महबूब ने उन्हें अपनी फिल्मों में गीत लिखने के लिए अनुबंधित कर लिया। इस प्रकार फिल्मी दुनिया में थोड़े से समय में ही एक सफल फिल्म गीतकार के रूप में उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। 'अंजुम' पीलीभीती ने अनमोल घड़ी, रतन, जीनत, बहन, छोटी बहन, नगमा, अनोखी अदा, नजमा तथा नजराना आदि लगभग दो दर्जन से अधिक फिल्मों के लिए गीत लिखे। उनका हर गीत लोकप्रिय हुआ। संगीत-सम्राट नौशाद के संगीत निर्देशन और मलिकाए— तरन्नुम नूर जहां (अब पाकिस्तान में है) के मधुर स्वर में रेकार्ड किया गया फिल्म 'अनमोल घड़ी' का गीत—'क्या मिल गया भगवान मेरे दिल को दुखा के। अरमानों की नगरी में मेरी आग लगा के' सर्वाधिक लोकप्रिय गीत है। यह गीत रेडियो कार्यक्रमों में आज भी प्रसारित होता है।

'अंजुम' पीलीभीती पीलीभीत निवासी उस्तादुल शोराअ 'गोया' जहानाबादी के होनहार शिष्य थे। उस्ताद मौलाना अहमद बख्श रहमानी साहिब से भी उन्होंने काफी समय तक इस्लाह (संशोधन) कराई। बम्बई के नागपाड़ा क्षेत्र में 1953 ई० में एक दुश्मन ने उनके पेट में छुरा मारकर उनका कत्ल कर दिया। अंजुम पीलीभीती के कत्ल के बाद उनकी पत्नी पीलीभीत चली आईं। फिर कुछ समय बाद वह सीतापुर चली गईं और उन्होंने दूसरी शादी कर ली। अंजुम पीलीभीती की मृत्यु के विषय में तरह-तरह की बातें मशहूर हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उनके प्रतिद्वन्द्वी शायर 'शकील' बदायूंनी ने उन्हें मरवाया था। कुछ लोग कहते हैं— 'अंजुम' पीलीभीती निर्माता महबूब के सहायक के० आसिफ की प्रेयसी निगार सुल्ताना से प्रेम करते थे इसलिए के० आसिफ ने 'अंजुम' पीलीभीती को कत्ल कराया लेकिन 'अंजुम' पीलीभीती के कत्ल की दास्तान ही कुछ और है। कई वर्ष तक बम्बई में रहकर मैं अंजुम भाई के कत्ल के बारे में सही बात जानने के लिए दर-दर भटकने के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि पीलीभीत निवासी अंजुम पीलीभीती के एक बहुत खास दोस्त मुल्ला अली जान 'अख्तर', जो खुद भी शायर थे और मोहल्ला फीलखाना में रहते थे, अंजुम के कत्ल के जिम्मेदार हैं। वह अंजुम से मिलने बम्बई गए थे। अंजुम ने उन्हें अपने एक बहुत ही निकटवर्ती परिचित याकूती वाला सेठ से मिलवाया था और कुछ दिन बम्बई रहने के बाद मुल्ला जी सेठ याकूती वाला की दास्ता (रखैल) को लेकर पीलीभीत भाग आये थे। उसी दौरान सेठ के किसी आदमी ने अंजुम का कत्ल कर दिया था।

154 मोहम्मद वासिल
पीलीभीत (उ० प्र०) पिन-262001

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलीभीत की बोली : पीलीभीती

□ डॉ० शम्भुशरण अवस्थी 'शम्भु'

नवम्बर 1879 में अस्तित्व में आये पीलीभीत जनपद की बोली तथा जनपद के निवासियों की संज्ञा पीलीभीती है।

आकृति (रचना) मूलक वर्गीकरण के अनुसार पीलीभीत की बोली वियोगात्मक शिलष्ट योगात्मक भाषा का अंग है। पारिवारिक (ऐतिहासिक) वर्गीकरण में वह पश्चिमी हिन्दी की उपबोली है।

अभी तक तहसीलवार अध्ययन के आधार पर डॉ० ग्रियर्सन के निष्कर्ष ही अन्य भाषा-विज्ञान के विद्वानों के आधार रहे हैं। परन्तु वे जिलाश: भाषा-विज्ञान के अध्ययन से मेल नहीं खाते। कुछ विद्वानों ने पीलीभीत जनपद की बोली को कन्नौजी के अन्तर्गत पीलीभीती, कुछ ने ब्रजी और कुछ ने इस पर सीमावर्ती बोलियों का प्रभाव माना है। डॉ० ग्रियर्सन, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० हरदेवबाहरी तथा डॉ० सुरेशचन्द्र त्रिपाठी द्वारा प्रयुक्त पीलीभीत की बोली के नमूने आज की बोली के सन्दर्भ में खरे नहीं उतरते।

डॉ० उदय नारायण तिवारी ने कन्नौजी का विकास पांचाली अपभ्रंश से माना है। डॉ० भोलानाथ तिवारी आदि कतिपय विद्वानों ने पीलीभीती को कन्नौजी की उपबोली कहा है।

पीलीभीत के उत्तर-पश्चिम में भुक्सा (थारू) लोग रहते हैं। डॉ० शम्भुशरण शुक्ल के अनुसार उनकी बोली में ब्रज, कनउजी और कुमायूंनी का विचित्र संमिश्रण है। पीलीभीत की बोली में भोजपुरी का आंकुस, सिरकटा आदि, बुन्देलखण्डी का तिनुका आदि, मराठी का खाले, हल्ला आदि मिलने पर भी इन बोलियों का प्रभाव पीलीभीती पर नहीं माना जा सकता। नेपाली के खुरपी, फोकट, भुतहा, मुखिया आदि शब्दों की संख्या पीलीभीती में छत्तीसगढ़ी की अपेक्षा बहुत कम है। अवधी के क्षेत्र का एक छोटा-सा कोना पीलीभीत की सीमा का स्पर्श करता है। पूर्वी सीमा पर बहुत दूर तक अवधी और पीलीभीती के बीच कन्नौजी की लम्बी पट्टी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण अवधी का भी प्रभाव पीलीभीत की बोली पर नहीं है। कन्नौजी की मूल प्रवृत्ति भी पीलीभीती में नहीं पायी जाती। ब्रजी के पूर्वी रूप के घेरे में भी पीलीभीती नहीं आ पायी है।

हमने अपने शोध-ग्रंथ—जनपद पीलीभीत की बोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन—में देखा है कि पीलीभीती में प्राकृत और अपभ्रंश के मूल शब्दों की संख्या का प्रतिशत सर्वाधिक है। यहां तक कुछ परसर्ग, क्रिया, पद आदि का विकास इन्हीं भाषाओं से सीधा मिलता है। हिन्दी के वर्तमान रूप को भी पीलीभीती ने यथावत आत्मसात नहीं किया है। जैसे, हिंदी में तुमने और पीलीभीती में तुम्ने।

ध्वनि

पीलीभीती में कुछ ध्वनियों के विकास में ए-ऐ, ओ-औ के ह्रस्व रूप मिलते हैं। संयुक्त स्वरों के विखण्डित रूप—स्वतंत्र स्वरों में अलग-अलग प्रयुक्त होते हैं। जैसे—ए>अय, ऐ>अइ, औ>अउ आदि।

पीलीभीत की बोली में ल्>र (डाल>डार), ल्>न् (डालनो>डान्नो[1]) ल्>द् (डाल्+दओ=डाद्दओ[2]) आदि मिलते हैं।

पीलीभीती में त्>द् (बातचीत>बादचीत), क्>ग् तथा ड्>द् (डाक्टर> डाग्दर), ड़>र् (पड़ी>परी), र्>त् (बरत>बत्त) आदि ध्वनि-परिवर्तन होते हैं।

यद्यपि पीलीभीती में व का ब् मिलता है, तथापि व् से पूर्व यदि उ है, तो 'व' का 'ब' ही रहेगा अन्यथा 'व' का लोप हो जाता है। जैसे, हलवा और हलुआ दोनों रूप पीलीभीती में मिलते हैं। पीलीभीती में तुमार का तुम्आर रूप भी मिलता है।

संज्ञापद

पीलीभीती में संज्ञापद पु० से स्त्री० बनाने में दो प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है— (क) प्रत्यय लगाकर (ख) स्त्री० ज्ञापक शब्द लगाकर।

पीलीभीत की बोली में कुछ संज्ञापद ऐसे हैं, जो केवल पु० (घरजंबाई, पानीदेबा आदि) में अथवा केवल स्त्री० (दाई, छिनार, बांज, बिहाता, चुड़्अयल आदि), तथा पु० व स्त्री० दोनों में (गुइआं, जुड़बा आदि) पाये जाते हैं स्त्री० प्रत्यय ई (घोड़ी), इआ (गुड़िआ), आनी (जिठानी), इन (चमारिन), आइन (ठकुराइन)

1. यहां पर ल् से र् और र् से न् हुआ है।
2. यहां पर भी ल्>र्>द् हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नी (सिंघनी) तथा पु० प्रत्यय आ (राजा), ई (हाती), तथा ऊ (साधू) आदि प्रयुक्त होते हैं।

वचन

पीलीभीती में दो ही वचन मिलते हैं। अनुस्वार (लड़की>लड़िकीं), अन (गइआ>गइअन), न (लत्ता>लत्तन), आदि एकवचन से बहुवचन के रूप बनते हैं।

कारक

पीलीभीती के कारक निम्नवत् हैं—

कारक	कारक-चिह्न	उदाहरण
कर्त्ता	ने नय, नयं	हम्ने, मयनय, हमनयं
कर्म	को, कउ, अय, अयं	तुम्को, तुमकउ, तुमय, तुमयं
करण	से, सय, सयं	तुम्से, तुमसय, तुमसयं
सम्प्रदान	लए, केलए, कयलय, को, कउ, अय, अयं ताई	हमारेलए, उस्केलए, लाउनकयलय, उस्को, इसकउ, उसय, उनयं बैंठनताई
सम्बन्ध	को (का), के, की	राम को जनेऊ, गांव के मनई, राम की दुहाई
अधिकरण	में, मयं, पर पय, पयं,	जिस्में जिसमयं, जिस्पर, जिसपय, जिनपयं
सम्बोधन	हिन्दी के समान	

पीलीभीती में दो या दो से अधिक परसर्ग भी एक साथ प्रयुक्त होते हैं। जैसे, उन्के मयं सय कछू चना लय लेउ।

सर्वनाम

ब्रजी/कन्नौजी का 'हौं' पीलीभीती में मैं या मयं है। ब्रजी, कन्नौजी तथा बुन्देली के बहुत बड़े क्षेत्र में बोले जानेवाले अपभ्रंश के ममेरअ से विकसित रूप मेरो/मोरो पीलीभीती में भी है मोय/मोकउ कर्म तथा सम्प्रदान दोनों में मिलते हैं। अपभ्रंश के हम्ह विकसित हम तथा हमैं रूप पीलीभीती में हम तथा हमैं का हमयं प्रयुक्त होता है। पीलीभीत की बीसलपुर तहसील के क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व में अमेड़ी नदी के उस पार हमार>हम् आर के रूप में प्रचलित है। तुमय/तुमयं/तुइ पर अपभ्रंश का प्रभाव है। बा/बओ/बड़, बाय/उसय/उनय (एकवचन) उन/उन्न/उनन/उनयं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बहुवचन) पीलीभीती में प्रयुक्त होते हैं। उनन कुमायुंनी का माना जा सकता है। जा/जई/जउ/ई/जाय/इसय तथा जिसय/जिनय, किसय/किनयं आदि पर अपभ्रंश का प्रभाव है।

विशेषण

संज्ञाओं से बने स्त्री० ई (हवा > हबाई), इआ (चाची > चाचेंआ), ईली (कलक > कलकीली), पु० ई (दस्त > दस्ती), आई (उतर > उतराई), उआं (पछांह > पछउआं), इआ (पूरब > पुरबिआ) प्रत्यय पीलीभीती में हैं।

विशेषण रूपों में स्त्री० संज्ञाओं के बने प्रत्यय आई (सच > सचाई), इआ (अंधेरी > अंधरिया), पु० के उजरो > उजेरी रूप मिलता है।

सर्वनाम प्रत्यय ई (आपस > आपसी) तथा क्रिया से विशेषण रूप ई (कपट (कन्नो) > कपटी), ओ (पहल (कन्नो) > पहलो) ईलो (चोट (लगनो) > चुटीलो) आदि प्रत्यय हैं।

इत्तो/इत्ती/इत्ते, कित्तो/कित्ती/कित्ते, जित्तो/जित्ती/जित्ते आदि भी पीलीभीती में हैं।

सबा, बढ़िआ, दुखिआ आदि पर ब्रजी के 'ओ' (अन्त्य) का प्रभाव नहीं है।

पीलीभीती में मूल रूप में सामान्य विशेषण रूप ओ (अच्छो, कालो), ए (सच्चे), ई (लम्बी), ओं (वाओं), एं (दाएं), ईं (दाईं) आदि प्रत्यय हैं।

पूर्ण संख्यावाचक विशेषण रूपों पर प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी का प्रभाव पीलीभीती पर है।

क्रिया

पीलीभीत की बोली में तिउन्नती (ग > चलंगे आदि) की अपेक्षा कृदन्ती रूपों का क्षेत्र अधिक व्यापक है। संस्कृत का परम्परागत रूप—राम गच्छति का 'राम जात' मिलता है। पीलीभीती में धातु स्वरों के संधि-नियमों की स्थापना इस प्रकार की जा सकती है—आ > अ, ई—ए > इ, ऊ-ओ > उ, ऐ > इ, औ > उ आदि।

पीलीभीत की बोली क्रियाओं के मुख्य प्रत्यय अ (चल), अउं (चलउं), अयं (चलयं), अय (चलय), त (बोलत/बोल्त), अत (चलत), ए (चले), ई (चली) आदि हैं।

संज्ञा से अगिआ (नो), विशेषण से पका (नो), सर्वनाम से अपना (नो), क्रिया विशेषण से निअरा (नो) आदि रूप पीलीभीती में मिलते हैं। तद्भव और परवर्ती तद्भव संस्कृत की परम्परागत धातुएं भी पीलीभीती में हैं। तद्भव (हस्त > हाथ > हथिआ (नो आदि) तथा संदिग्ध व्युत्पत्तिपरक रूप ठुठिआ (नो) हग (नो) और अनुकरणात्मक रूप फरफरा (नो), थरथरा (नो), मिमिआ (नां) पीलीभीती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रयुक्त होते हैं।

संज्ञा मत्त/मरत में 'त', विशेषण पु० एक० बहितो में 'ओ' स्त्री० बहिती में 'ई', बहु० बहितें में 'ए', क्रिया विशेषण दौड़त में 'त' प्रत्ययों का प्रयोग पीलीभीती में अपूर्ण/वर्तमान कालिक कृदन्तों में होता है। अपूर्ण क्रिया/ पूर्ण भूत कालिक कृदन्त भी पीलीभीती में हैं। अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त रूप में त (चल्त बोल्त), तात्कालिक कृदन्त रूप में त+इ>तइ (तय)>चल्तई/चल्तय प्रत्यय जोड़े जाते हैं। ओ (द्उडो), ई (भगाई) आदि प्रत्यय भी पीलीभीती में प्रयुक्त होते हैं।

पीलीभीती में हउं (हूं), हय (है), हयं (हैं) हिन्दी के विकसित रूप हैं। पीलीभीत की बोली में अहो (था) मूलरूप में, हो पर ब्रजी का थो/रहो पर कन्नौजी का प्रभाव है। ब्रजी में भयो किन्तु पीलीभीत में भओ (हुआ) प्रयुक्त होता है।

पीलीभीत की बोली में अकर्मक से सकर्मक एवं प्रेरणार्थक (मीजनो, मिजउनो मिजबाउनो), सकर्मक से प्रेरणार्थक (खानो), खिलउनो, खिलबाउनो) तथा सकर्मक/प्रेरणार्थक से अकर्मक पीटनो से पिटनो आदि धातु रूप मिलते हैं।

पीलीभीती में लिंग-वचन के अनुसार संज्ञा, विशेषण एवं क्रिया विशेषणों में ओ, ई, ए (दउड़ो, दउड़ी, दउड़े) के प्रत्ययों से पूर्ण भूतकालिक कृदन्त बनते हैं। ओ (चलोगे) के स्थान पर पीलीभीती में 'इहउ' (चलिहउ) रूप मिलता है।

पीलीभीत की बोली में साधारण क्रिया के दो रूप पाए जाते हैं—

1. नो (अन्त्य)=कन्नो/करनो, लेनो, देनो आदि
2. न (अन्त्य)=आउन, लेन, देन, जान आदि

क्रिया विशेषण

संस्कृत के 'हि' के 'ह' का लोप होकर 'ई' पीलीभीती में हिन्दी के 'ही' का अर्थ देता है। मुसलमानों की बोली में 'ई' संयुक्त (मात्रा) रूप में अब्+ई>अबी तथा अन्य लोगों में अबे+ई=अबई का प्रयोग होता है। कभी-कभी>कऊ-कऊ, तभी तभी>तऊ-तऊ, अभी ही>अभइअय, कभी भी>कभउअय, अभी भी>अभऊ आदि कालवाचक विशेषण पीलीभीत में प्रयुक्ती होते हैं। इधर>इतय, उधर> उतय, जिधर>जितय, किधर>कितय, यों>इउं, ज्यों>जिठं, त्यों>तिउं, क्यों >किउं रूप पीलीभीती में प्रचलित है। कल्ल, परसउं, नरसउं, अतरसउं, तुन्त, झहट, अगार-पिछार, जंउरे (निकट), नगीच (नजदीक), निअरे (पास), पल्लंग (उस ओर) आदि का प्रयोग भी पीलीभीत की बोली में होता है। ना, नाही, नाय, इकल्ली, दुकल्ली आदि भी पीलीभीती में प्रयुक्त होते हैं। भउत (बहुत), बेर-बेर (बार-बार), बादमयं (बाद में), पाछूसय (पीछे से) आदि भी पीलीभीती के क्रिया विशेषण रूप हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलीभीत की बोली में सभी प्रकार के क्रिया विशेषण रूप उपलब्ध हैं।

वाक्य

भाषा के वर्गीकरण के अनुसार वाक्य के प्रकारों में पीलीभीती वियोगात्मक बहिर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषा का अंग है। पीलीभीत की बोली में श्लिष्ट योगात्मक वाक्यों का प्रयोग होता है। वाक्य रचना/गठन के आधार पर पीलीभीती में साधारण (सरल), मिश्र (मिश्रित) तथा संयुक्त, तीनों प्रकार के वाक्य पाए जाते हैं। बोलचाल में प्रायः छोटे-छोटे वाक्यों का ही प्रयोग होता है। जैसे, हमउं चल्त हयं (हम भी चलते हैं) किन्तु 'हमऊं चल्तहयं का अर्थ होगा 'हम भी तो चलते हैं।'

सुहागिनय खाय गईं (सुहागिनें खा गयीं)।
कछू नाय हुय गओ (कुछ नहीं हो गया)।
साथय चलन देउ (साथ ही चलने दो)।
ना कहिनो, ना सुन्नो (न कहना, न सुनना)।
काऊ/काहू से कछू मत कहिअउ (किसी से कुछ मत कहना) आदि।

कहावतें (लोकोक्तियां) और मुहावरे

पीलीभीती में अंग्रेजी (एक हातसय तारी नाय बजत[1]), फारसी (एक अनार, सउ बीमार[2]), तुर्की (नाम बड़े अउर दरसन थोरे), पश्तो (मिढ कि अउ नय टांग उठाय दई), संस्कृत (जेते मूं तेती बातें[3]) के अतिरिक्त गद्यात्मक एवं पद्यात्मक कहावतें भी मिलती हैं। एक पद्यात्मक कहावत का उदाहरण प्रस्तुत है—

लगे कनागत फूलयं कांस।
बांभन ऊलयं नउ-नउ बांस॥

पीलीभीत की बोली में परम्परागत देशज तथा गृहीत (आगत) मुहावरे भी मिलते हैं। संस्कृत (नाहीं के बरोबर[4]), पश्तो (टस्ससय मस्स), तुर्की (मूं सय लार टपकनो), फारसी (तारे गिन्नो), अंग्रेजी (करेजो मूं कउ अउनो[5]) के अतिरिक्त देशज (आगी वन्नो, कन्नी काटनो, साउन को अंधो आदि) प्रयोग मिलते हैं।

---

1. इट रिक्वायर्स टू हैण्ड्स क्लेप
2. यक अनार सद बीमार
3. मुण्डे-मुण्डे-मतिर्भिन्ना
4. न इव
5. हैव वंस हर्ट इन वंस माउथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

बाह्य आक्रमणों से त्रस्त होकर भारत के सुदूर प्रान्तों के लोग पीलीभीत के घने जंगलों में बसने आये वे लोग अपने साथ अपनी भाषा भी लाये। लोध राजपूत काफी संख्या में पीलीभीत में हैं। इनमें दो प्रकार के हैं। एक पुरबिया, जो पूर्व से आये; दूसरे पछउआं, जो पश्चिम से आये। कठरिया क्षत्री भी पीलीभीत में काफी हैं। किसानों में हिन्दू-मुसलमानों दोनों वर्गों के लोग हैं। पीलीभीत में बंजारे भी रहते हैं। स्वतन्त्रता के बाद पीलीभीत के क्षेत्र में पंजाबी और बंगाली भी आये हैं। मुसलमान भी पीलीभीत में कम नहीं हैं।

पीलीभीती में ब्रजी, कन्नौजी के प्रयोग तो हैं किन्तु पीलीभीत की बोली अपना विकास अपने अनुसार करने की ओर अग्रसर है। अभी तक नागरिक बोली का प्रभाव गांवों पर नहीं पड़ा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पीलीभीत की बोली का विकासक्रम संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रकाश में देखना चाहिए।

146 सुनगढ़ी,
पीलीभीत, उ० प्र० 262001

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भुत जलतरंग वादक : स्व. श्री मुरारीलाल गोस्वामी

□ श्रीमती मंजुला 'मंजू' शुक्ला

श्री मुरारीलाल गोस्वामी का जन्म सन् 1902 में हुआ था। वे 1916 के आस-पास पीलीभीत आये। गोस्वामी जी के पिता श्री सुन्दरलाल गोस्वामी मनिकापुर रियासत (जिला गोंडा) में राजगुरु थे। पीलीभीत में गोस्वामी जी के नाना श्री ललिता चरण जी रहते थे। गोस्वामी जी ने इन्हीं के पास रहकर शिक्षा ग्रहण की और फिर गोपीनाथ मन्दिर की सेवा का भार ले लिया।

मन्दिर की सेवा के साथ-साथ संगीत का अध्ययन प्रारम्भ किया और अनवरत तथा कठिन-अभ्यास से सितार, वीणा, सरोद, मृदंग, वायलिन, तबला और बांसुरी-वादन में पारंगत हो गए। गोस्वामी जी ने नृत्य में भी विशिष्टता प्राप्त की थी।

सन् 1939 में गोस्वामी जी को उस समय के जिलाधिकारी श्री आर० एन० डे द्वारा संगीत की विशिष्ट सेवा करने के कारण स्वर्णपदक प्रदान किया गया। गोस्वामीजी का केवल वाद्य संगीत पर ही नहीं वरन गायन पर भी विशेष अधिकार था। इसी कारण इसी वर्ष वे गायनाचार्य की उपाधि से भी विभूषित हुए।

अनेक वाद्य-यंत्रों को अधिकार के साथ झंकृत करने वाले संगीताचार्य गोस्वामी जी आज भी अपने अद्भुत जलतरंग वादन के लिए याद किये जाते हैं। जलतरंग में जल से भरे 16 चीनी के प्याले होते हैं। ये प्याले अर्द्धचन्द्राकार फ्रेम पर अवस्थित किए जाते हैं।

स्वरों के आरोह-अवरोह के आधार पर रागों का विशेष ध्यान रखते हुए जल के द्वारा ही इस वाद्य को मिलाया जाता है। जल की तरंग के आधार पर बजाये जाने के कारण इस वाद्य को जलतरंग कहा जाता है। यह वाद्य चंचल प्रकृति का है। द्रुत लय में कुछ विशिष्ट रागों की गतों को ही इस पर बजाया जाता है गोस्वामी जी के पास जलतरंग के दो सेट थे। वे जब जलतरंग पर कुछ विशिष्ट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राग बजाते थे तो श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाते थे ।

वे एक अच्छे संगीत-साधक के साथ-साथ एक सच्चे गुरु भी थे । शिष्यों को अपने ही वाद्यों पर सिखाते थे । गोस्वामी जी ने गुरदयाल जी से मृदंग बजाना सीखा था । वे कुछ गुर इस शर्त पर सिखाने को तैयार थे कि गोस्वामी जी ये गुर किसी को नहीं सिखायेंगे, परन्तु गोस्वामी जी इस शर्त पर सीखने को तैयार नहीं हुए तो गुरु को ही झुकना पड़ा ।

वसन्त पंचमी के उत्सव में गोस्वामी जी के कारण एक बड़ा कलाकार पीलीभीत अवश्य आता था । संगीत मार्तण्ड पं० ओमकारनाथ जी भी पीलीभीत आये थे ।

2 अक्तूबर 1967 को जलतरंग वादक संगीताचार्य मुरारीलाल गोस्वामी की आत्मा ने इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया । उनके स्वर्गवास पर श्री राधेश्याम शर्मा अध्यक्ष योग संस्थान ने कहा था, 'इस दिव्य विभूति को देखने के लिए दिव्य-नेत्रों की आवश्यकता थी ।' श्री रामस्वरूप वर्मा चिकित्साधिकारी बगड़ ने लिखा था—

'सिखा पढ़ा संगीत अनेकों को था विज्ञ बनाया,
भारत भर में शिष्यों ने था, उनका मान बढ़ाया ।'

स्व० मुरारीलाल गोस्वामी हित हरिवंश जी की ग्यारहवीं पीढ़ी में थे ।

वेलावादक स्व० श्री चन्द्रमुकुट बाजपेयी

स्व० श्री चन्द्रमुकुट वाजपेयी संगीत के प्रति समर्पित गुरु मुरारीलाल गोस्वामी के योग्यतम शिष्य थे । आपका जन्म पीलीभीत के मोहल्ला डोरीलाल में 15-10-1906 में हुआ था । आपके पिता का नाम श्री रामेश्वरदीन वाजपेयी था ।

चन्द्रमुकुट वाजपेयी हाई स्कूल करने के उपरान्त पीलीभीत कचहरी में नौकरी करने लगे परन्तु संगीत के प्रति रुचि के कारण गुरु के पास अनवरत अभ्यास करते रहे । आपने संगीत में डिप्लोमा प्राप्त किया था । आपकी विशेष रुचि वाद्य संगीत में थी । वैसे तो अनेक वाद्यों पर आपका अधिकार था पर विशेष रुचि वेला (वायलिन) में होने के कारण आपकी प्रसिद्धि वेला वादक के रूप में हुई ।

दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन (Conference) में वेला वादन में प्रथम पुरस्कार स्वरूप स्वर्ण-पदक प्राप्त किया । इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रतियोगिताओं में भी स्वर्ण-पदक प्राप्त किये थे । सन् 1952 में आपका स्वर्गवास हो गया ।

एक बार लखनऊ में उस्ताद फैयाज खां से संगत की । फैयाज खां उनके वेला वादन से इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने वाजपेयी जी को गले से लगा लिया ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्होंने चन्द्रमुकुट वाजपेयी का वेला वादन सुना है, उनके अनुसार भारत के सर्वं श्रेष्ठ वेला वादक जोग बाबू से वेला वादन में किसी भी प्रकार कम नहीं थे। वे वायलिन में बातचीत तक निकाल लेते थे।

प्राध्यापक निवास
उपाधि महाविश्वविद्यालय परिसर
पीलीभीत (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड तीन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खयाल (लावनी) साहित्य की खोज की योजना

[लावनी का इतिहास लिखने के बाद स्व० स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर' की योजना सारे देश के खयालबाजों पर पुस्तक लिखने की थी। इसके लिए उन्होंने खयाल खोजक मण्डल की भी स्थापना की थी जिसके सर्व श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा, उदयनारायण तिवारी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी', देवेन्द्र सत्यार्थी, नारायण प्रसाद अरोड़ा, श्री नारायण चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', नरेशचन्द्र चतुर्वेदी सदस्य थे और संयोजक थे स्वामी नारायणानन्द सरस्वती (लावनी का इतिहास, पृ० 2)। स्वामी जी की यह योजना उनके स्वर्गवास हो जाने के कारण पूर्ण न हो सकी। इस कार्य हेतु उन्होंने एक पत्रक छपवाया था जिसे हम यहां दे रहे हैं। सं०]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खयाल (लावनी) साहित्य की खोज

खयालबाजों का परिचय तथा उनकी रचनाओं को संगृहीत करने का विशाल आयोजन

सारे देश के खयालबाजों तथा खयालों पर एक पुस्तक लिखने का हमने विचार किया है। लोगों से छिपा नहीं है कि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस विषय की अत्यन्त उपेक्षा हुई है। खयाल साहित्य हिन्दी काव्य धारा का एक प्रमुख अंग है; खड़ी बोली काव्य का मार्ग प्रशस्त करने में खयाल साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है। अतः इन्हीं सब बातों पर विचार करके हमने उपर्युक्त कार्य करना आरम्भ किया है। इस सम्बन्ध में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों तथा शोध कार्य में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की एक कमेटी का निर्माण भी किया है।

इस विषय की जानकारी रखने वालों से हमारी प्रार्थना है कि वे जिन खयालबाजों से परिचित हों, अथवा जिनकी रचनाएं उनके पास हों उसकी सूचना हमारे पास भेज दें। उनका जन्म स्थान, जन्म सम्वत्, उनके जीवन की विविध घटनाएं आदि शीघ्र ही भेज दें। हम उक्त पुस्तक में खयालबाजों के चित्र-चरित्र एवं उनकी रचनाएं प्रकाशित कर उनकी कीर्ति अमर करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है, संबंधित विषय की जानकारी रखने वाले विद्वज्जन तथा सर्व साधारण हमारे इस पुण्य कार्य में हाथ बटाकर अपने कलाकारों की कीर्ति-रक्षा के यश के भागी बनेंगे।

निवेदक—

स्वामी नार ायणानन्द सरस्वती

(अख्तर)

खयाल खोजक मण्डल,

लक्ष्मणदास धर्मशाला लाठी मुहाल,

कानपुर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्वदेशी गान'[1]

जियें तो बदन पर स्वदेशी वसन हो,
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो।
पराया सहारा है अपमान होना,
जरूरी है निज शान का ध्यान होना,
है वाजिब स्वदेशी पे कुरबान होना,
इसी से है सम्भव समुत्थान होना,
लगन में स्वदेशी के हर मर्दाजन हो।
निछावर स्वदेशी पे, कर माल जर दो,
स्वदेशी से भारत का भण्डार भर दो,
रहें चित्र से वह चकाचौंध कर दो,
दिखा पूर्वजों के लहू का असर दो,
स्वदेशी ही सजधज स्वदेशी चलन हो,
चलो इस तरफ अपना चरखा चला दो।
मनो सूत की ढेरियां तुम लगा दो।
बुनो इतने कपड़े मिलों को छका दो,
जमा दो स्वदेशी का सिक्का जमा दो,
स्वदेशी ही गुल और स्वदेशी चमन हो,
करें प्रण कि आजाद होकर रहेंगे।
जहां में कि बरबाद होकर रहेंगे,
सितमगर ही या शाद होकर रहेंगे,
कि हम शादो-आबाद होकर रहेंगे,
स्वदेशी ही 'अख्तर' स्वदेशी कथन हो।

1. डॉ० रामजन्म शर्मा ने इसका शीर्षक 'मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो' दिया है। जब्तशुदा गीत, पृ० 67।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजादी या मौत

अबस जिन्दगी का गुमां है, भरम है,
गुलामी में जीना न मरने से कम है।
सितमगर ने हमको जो गलफत में पाया,
तुरत दामे-फितरत में अपने फंसाया,
कहा और कुछ, और कुछ कर दिखाया,
दिखाकर के अमृत जहर को पिलाया,
न उठने की ताकत, न चलने का दम है।

वो कहते हैं हमसे कि खामोश रहना,
सहो चोटें दिल पर, जुबां से न कहना,
रहे पेट खाली, रहे तन बरहना,
वफादार हो तुम जफाओं को सहना,
खुली गर जुबां, तो वहीं सर कलम है।

दिये जख्म पर जख्म सैयाद तूने,
सुनी बेकसों की न फरियाद तूने,
न रहने दिया हमको आजाद तूने,
किया हर तरह हमको बरबाद तूने,
ये है जुल्म कैसा, ये कैसा सितम है?

तुझे भी कसम है, जो रहने कसर दे,
ये है जख्म ताजे, नमक इनमें भर दे,
उठा अपना खंजर, अभी कत्ल कर दे,
है वाजिब तुझे यह, उड़ा धड़ से सर दे,
किया चाहता तू जो, हम पर करम है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सितमगर है गर ताबो-ताकत पे नाजां,
तो हैं हम भी अपनी सदाकत पे कुरबां,
यही दिल की हसरत, यही दिल में अरमां,
कि आजाद हों या फना होंवे, दे जां,
हटेगा न पीछे, बढ़ा जो कदम है।

जियेंगे तो आजाद होकर रहेंगे,
जहां में कि बरबाद होकर रहेंगे,
सितमगर ही या शाद होकर रहेंगे,
कि हम शाद, आबाद होकर रहेंगे,
खुली अब हैं आंखें, खुला सब भरम है।

हमें गो कि दिक्कत उठानी पड़ेगी,
उन्हें खुद-ब-खुद मुंह की खानी पड़ेगी,
ये आदत पुरानी मिटानी पड़ेगी,
सरे-बज्म गरदन झुकानी पड़ेगी,
हमें नाज बेजा उठाने से रम है।

चमन में न कुछ गैर का कुछ खतर हो,
वतन अपना आजाद हो, औज पर हो,
बुजुर्गों का तुममें अगर कुछ असर हो,
दिखा दो, जमाने में फिर ऊंचा सर हो,
गजब का ये 'अख्तर' का तर्जे-रकम है!

—स्वामी नारायणानन्द 'अख्तर'
सन् 1930

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सन्त-सन्देश में प्रकाशित कविताएं

भटके हैं

सुख मानत ये जगजीव सवै पिये मोहमयी मद के मटके हैं।
मतवारे मतंग की भांति भ्रमैं मन माया मतंगिनि सों अटके हैं।।
फल चाहत स्वादु सुधा से सन्यो विषवृक्ष की डारि गहे लटके हैं।
भगवान ही पार लगावें इन्हें भव में यह भूले भ्रमे भटके हैं।।

कुच कंचन के मद मस्त रहे, नित कामकला के सुने लटके हैं।
नहीं सोंचा कभी मन में अपने जगजीव ये वृक्ष नदी तट के हैं।।
जब आया बुढ़ापा जवानी गई सिर काल ने आनि दिये झटके हैं।
तब तो उनको यह जान पड़ा पथ और ही हैं हम तो भटके हैं।।[1]

---

1. 'सन्त सन्देश' माघ-संख्या 1

बागे दुनिया

तू न फस्ले बहार बहुत कि लगा हुआ सर पे है खौफ खिजां,
जहां आते हैं सैकड़ों फूल नजर वहां होवेंगे खार हजारो अयां।
ये बहार रहेगी न रंगे चमन रूखे शादी व परदये गम हो निहां,
पे नरन्नुमों नगमां रहेंगे कहां तो रहेंगे तो नालओ शोरफुंगां।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुले सुर्ख में जरदी हो गेंदा नमत कोई सम्वुलों पेचा में बल न रहे,
अयां तीरगी हो रूखे चांदनी में ये झलकती झलक झलाझल न रहे।
रहे बेला चमेली न लाला कभी ये जो आज है जलवा सो कल न रहे,
पड़े गद्र चमन में खिजां के सबब ये बहार का हुक्म अदल न रहे।

ये मुकाम है फानी फना हों सभी रहे बाकी हमेशा ये बाग नहीं,
रहे बाकी हमेशा ये बाग नहीं तेरे दिल से मिटेगा ये दाग नहीं।
तेरे दिल से मिटेगा ये दाग नहीं हो मलालो-अलम से फराग नहीं,
हो मलालो-अलम से फराग नहीं कभी पुरहो ये दिल का अयाग नहीं।

दूर करो मद मोह सकल रख राम राम आधार,
वह सुखधाम सहारा कुल का को वासम सुखसार।
अलग करो कल-कल कुल और गलडालो हर्ष का हार,
राम-राम मुख कहा करो हो हरदम सुख आगार।[1]

---

1. 'सन्त सन्देश' माघ सं० 1
[इस कविता में लेखक का नाम नहीं लिखा है। स्वामी जी के शिष्य श्री रामऔतार ब्रह्मचारी के अनुसार यह रचना स्वामी जी की है। नाम छपने से छूट गया था।]

तुलसी-स्तवन

भटके हुए थे लोग भ्रान्ति की विभावरी में,
चारों ओर कदाचार कानन अपार था।
बाये मुख सम्मुख खड़ा था अत्याचारी व्याघ्र,
पुण्य भूमि भारत में मचा हाहाकार था।
सूझता नहीं था मुक्ति पथ मन्द मानवों को,
मोहावृत व्योम तम-तोम का प्रसार था।
ऐसे धर्म संकट में धर्म के उबारने को,
तुलसी गुसाइं तूने लिया अवतार था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचल अखण्ड मारतण्ड-सा प्रताप तेरा,
प्रणव अलाप लै विवेक वीणा बाजा था।
सरल स्वभाव ले के सुकृत समूह साथ,
साहस से सुखद सुरों के साज-साजा था।
भावुक हृदय था भरी थीं भावनाएं भव्य,
स्वात्म निष्ठ सदय विदेह-सा विराजा था।
कर्म करता था पै रहित कर्म बन्धनों से,
तुलसी समस्त साधुओं के मध्य राजा था।

जाति का उद्धारक सुधारक समाज का था,
अग्रसर हुआ भव भीरुता भगाने को।
धर्म के उबारने को पाप के पछारने को,
राम मंत्र फूका हिन्दू जग के जगाने को।
शास्त्र श्रुति सम्मत सरस राम मानस का,
हंस बना आप क्षीर नीर विलगाने को।
दे गया जमाने को कलित काव्य कल्प द्रुम,
भक्त हृदयों को राम रंग में रंगाने को।

तप के प्रभाव से विजेता बना भूतल में,
धाम धाम धाय धाक धर्म की जमा गया।
सब तज राम भज प्रेम का पुजारी बना,
पतितों को पापियों को पुण्य मैं बना गया।
हुलसी सुमति तुलसी के मन मानस में,
राम रस सागर को गागर में ला गया।
धरा पै बहा दी भक्ति रस की धवल धार,
सीताराम नाम की पताका फहरा गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपमा में कवि कालिदास से नहीं था कम,
रुचिरता देख हर्ष रहता अवाक था।
विषय विभाजने में भास के बराबर था,
वाण सम चित्र के चितेरने में ताक था।
अर्थ गुरुताई में था भारवि के समकक्ष,
चहुंधा चलाता निज चातुरी का चाक था।
धाक थी प्रकृति परिशीलन में, पुहुमी पै,
वास्तव में तुलसी कवीश्वरों की नाक था।[1]

1. 'सन्त सन्देश' फाल्गुन-संख्या 2

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावण्यलता से

खयाल रंगत लङ्गड़ी रूपक अलंकार वैराग्य। नम्बर ॥6॥

टे० सुख सुगन्ध लोभी मन मधुकर काम कमल पर जा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फंस कर अपने आप को गवां बैठा॥

चौ० 1 यह संसार सरोवर जिसमें नारि-रूप है नीर अगम।
पुत्र पौत्र परिवार रूप खिल रहे विमल पंकज उत्तम॥
कोई नील कोई अरुण श्वेत छवि भांति-भांति छहरात पद्म।
तिन पर मोहित फिरे मधुप मन प्रिय पराग की चाह अधम॥
मि० यौवन रूपी जलज निरखि घूं-घूं करता तहं जा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फंस कर०··· ॥1॥

चौ० 2 कुटुम्ब इस कमल कोष में मन मिलिन्द पैबस्त हुवा।
तन की सुधि ना रही रमण रज चाखत चाखत मस्त हुवा॥
बुद्धि वासर गया बीत ज्ञान रवि अस्ताचल में अस्त हुवा।
विषय बंध में बंधा ब्रह्म विधा बल सारा पस्त हुवा॥
मि० भोग रूप भ्रम में भूला पुनि आगम आश लगा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फंस कर०··· ॥2॥

चौ० 3 नेह निशा के बीच मगन-मन तृष्णा की हिय उठत तरंग।
स्वाद सुख फिर लहूं प्रात ही उदय होय जब पुण्य पतंग॥
जीव रूप जल पीने जब तक मौत रूप आ गया मतंग।
आयु रूप अरि बिन्दु तोड़ ले गया जमाया अपना रंग॥
मि० मुद मधु हित इस केलि कंज में घुस कर जान खपा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फंस कर०··· ॥3॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौ० 4 काया रूपी कमल काल रूपी कुंजर जब लेवे तोड़।
मूल मनोरथ नष्ट होवें सब भाव भृंग जावें संग छोड़॥
अन्त समय कोई साथ न जावे खिले रहें चाहे कंज करोड़।
प्रभुपद प्रीति पराक्रम कर इस राग रूप रस से मुख मोड़॥
मि० नाता नीरज छेद नारायण राम नाम गुण गा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फंस कर० ॥4॥

खयाल वहरे शकिस्ता—हिदायत नम्बर ॥10॥

टेक मिली है दाता से तुमको दौलत तो तुम न इसको दबा के बैठो।
मिसाल वृक्षों की अपने फल से सबों के मन को छकाके बैठो॥
चौ० 1 मियां अकेले न खाओ हर्गिज कुछ और को भी खिलाके बैठो।
मकान अपना बहिश्त में तुम व फैजे हक से बना के बैठो॥
मिला उसी को दिया है जिसने यह खूब तुम आजमा के बैठो।
मुकामे फानी है दौर दुनिया न इससे दिल को लगाके बैठो॥
मि० मेहर से ईश्वर ने धन दिया है के राहे हक में लुटाके बैठो॥
मिसाल वृक्षों की अपने फल से० ॥1॥

चौ० 2 मजा यही है कि दुनिया में तुम अपना जलवा दिखाके बैठो।
महज न मुमसिक के मिस्ल साहब घमंड में धन के आके बैठो।
मुराद मन की मिलेगी असली जो हाथ ऊंचा उठाके बैठो॥
मुदाम दे दे के दान कर से जगत में दानी कहाके बैठो॥
मि० मगन रहोगे सदा ही प्यारे जो शीश सबको नवा के बैठो।
मिसाल वृक्षों की अपने फल से० ॥2॥

चौ० 3 मरातिब आला को पाके जग जग में न अपने मुंह को छिपा के बैठो।
मिटाके तकलीफ दूसरों की जहां में इज्जत बढ़ा के बैठो॥
मुहाल हो फिर यह वक्त पाना न उसको नाहक गवां के बैठो।
मुवाहवत से मिसाले हातिम तुम अपनी रंगत जमा के बैठो॥
मि० मिले जो आकर गरज से कोई तो आश उसकी प्रजा के बैठो।
मिसाल वृक्षों की अपने फल से० ॥3॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौ० 4 मुखाल्फत मत करो किसी से न तुम किसी को सता के बैठो।
गये मोहब्बत का जाम हर कस को खुशदिली से पिला के बैठो ॥
महक उठे वह जहां में खुशबू के तुम जो नेकी कमा के बैठो।
मुफीद मकसद वर आये गुणियों को मान आदर दिला के बैठो ॥
मि० मिजाज हो खुश सबों का ऐसा सुखन नारायण सुना के बैठो।
मिसालवृक्षों की अपने फल से० ॥4॥

खयाल बहर शकिस्ता—गीता विभूतियों का।
नम्बर—44 ॥

टेक कहा यह अर्जुन से कृष्ण जी ने कि मित्र मम वचन सत्य मानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको सभी में मैं ओत-प्रोत जानो ॥

चौ० 1 मैं ही हूं आदित्यों मध्य विष्णु प्रकाशकों में मैं ही दिवाकर।
मरुद्‌गणों बीच में मरीचि हूं इन्दु नक्षत्रों बिच में सुन्दर ॥
चतुष्वेद मध्य साम हूं मैं और देवताओं में मैं ही पुरन्दर।
वह इन्द्रियों बीच मन मैं ही हूं और प्राण वालों में चेतना धर ॥
मि० मैं रुद्र एकादशों में शंकर उठो गहो चाप तीर तानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ॥1॥

चौ० 2 कुबेर हूं यक्षपति में वसुओं में अग्नि गिरि बिच सुमेर उत्तम।
पुरोहितों में हे पथि मुझको वृहस्पति जान जानूं आगम ॥
मैं सेनापतियों के मध्य षडमुख जलाशयों में समुद्र तन मम।
महर्षियों में भृगु सो मैं हूं पदों में ओंकार व्याप्य विश्वम् ॥
मि० समस्त यज्ञों में ही हूं विवेक दृष्टि से खूब छानो।
प्रतीत होता जा विश्व तुमको० ॥2॥

चौ० 3 अचल पदार्थों के बिच हिमालय समस्त वृक्षों के मध्य पीपल।
मैं देव ऋषियों के बीच नारद हूं गंधर्व चित्ररथ में अचपल ॥
हूं सिद्ध पुरुषों में मैं कपिल मुनि प्रभाव अत्यंत तेज उज्ज्वल।
हयों में उच्चैश्रवा गजेन्द्रों में ऐरावत मुझको जान अति बल ॥
मि० नरों में हूं मैं नरेन्द्र अर्जुन वृथा न सशय हृदय में आनो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको ॥3॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौ० 4 हूं आयुधों में वह वज्र आयुध गऊ में हूं कामधेनु पावन।
प्रजोत्पादक वह काम में हूं भुजंगों में वासुकी सुहावन॥
समूह नागों में शेष मैं हूं जलाधिपों में वरुण सुलक्षण।
करूं मैं पृथ्वी के काज सारे मुझी में है सर्वसिद्धसाधन॥
मि० स्वरूप मित्रों में अर्यमा का मैं ही हूं बस मत विवाद ठानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ॥4॥

चौ० 5 प्रबल हूं मैं दण्ड धारियों में हूं दैत्य प्रह्लाद दैत्य गन में।
करें जो गणना कार्य उनमें मुझे ही तू काल जान मन में॥
मृगों में मुझको मृगेन्द्र समझो और पक्षियों में गरुण सुतन में।
पवित्र करने को वायु चंचल वह शस्त्रधारी में राम रन में॥
मि० मकर हूं मत्स्यों के बीच अर्जुन नदिन में गंगा मुझे बखानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ॥5॥

चौ० 6 हे पार्थ ! सृष्टि है सर्व मुझसे मैं आदि और मध्य अन्त हूं मैं।
मैं ही हूं अध्यात्म ब्रह्म विद्या अकार अक्षर इकन्त हूं मैं॥
हैं जग में जो वाद करने वाले उन्हीं में भी वदवन्त हूं मैं।
सभी समासों में द्वन्द्व मैं हूं विनाशी दाता महन्त हूं मैं॥
मि० हरूं मैं सब के बलों को क्षण में वह मृत्यु भी तुम मुझे पिचानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ॥6॥

चौ० 7 हूं सर्व उत्पत्तियों का उद्भव और स्त्रियों में हू कीत्ति भारी।
तथा च लक्ष्मी वह वाणी स्मृति और बुद्धि धारण की शक्ति सारी
क्षमा मैं ही हूं पवित्र पावन मेरे ही आश्रित हैं प्राणधारी।
बृहतसाम साम गायनों में गायत्री छन्दों में मम उचारी॥
मि० पवित्र मासों में मास अगहन वसन्त ऋतुओं में है समानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ॥7॥

चौ० 8 ले जान छलियों में द्यूत मुझको और तेजधारिन में तेज जय हूं।
हूं सत्वे उद्योग सात्विकों में यदुकुल में वासुदेव अभय हूं॥
वह पाण्डवों मध्य में धनंजय और व्यास मुनियों में वृद्धवय हूं।
समस्त कवियों में शुक्र कवि मैं दमन के कर्तो में दण्डमय हूं॥
मि० विजय की इच्छा जिन्हों की होवे उन्हों में हूं नीति बुद्धि सानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ॥8॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौ० 9 पदार्थ गुह्यो में मौन मैं हूं और ज्ञानियों में हूं ज्ञान भाई।
मैं बी कारण हूं प्राणियों का है जग सो मेरी है सब बड़ाई ।।
अहो परन्तप वह दिव्य हूं मैं कला न मेरी किसी ने पाई।
रमा चराचर में हो के चेतन विभूति किंचित तुझे बताई ।।
मि० समग्र ऐश्वर्य और शोभा मेरे ही तेजोश में दिखानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ।।9।।

चौ० 10 यह आदर्श है विभूतियों का अनन्त पर किस तरह गिनाऊं।
वह विश्व सब व्याप्त करके स्थित हुआ हूं सो मैं तुझे बताऊं ।।
कृपा से गुरुदेव की वह कविता में भाव सुन्दर सुगम सुनाऊं।
पदों में सतगुरु के शीश नाऊं सभा में कथ शुद्ध छन्द गाऊं ।।
मि० ललित नारायण की काव्य रचना श्रवण करो कान दे सयानो।
प्रतीत होता जो विश्व तुमको० ।।10।।

खयाल बहर शकिस्ता शिवजी का नम्बर ।।45।।

टेक कहूं मैं क्या सर्वदेवतों में न कोई शिव सम कृपाल देखा।
खगेशपतियों कहे रमा से कि हरि की आज्ञा में काल देखो ।।

चौ० 1 ग्रीश तनया के संग शोभित बिछाये एक सिंह छाल देखा।
घमंड तोड़ा मदन का क्षण में उधार जब दृग कराल देखा ।।
चमू विनाशी त्रिपुर की सहसा ना कुछ भी करते संभाल देखा।
छकाया असुरों को शिव ने रच रच सुरोंको करते निहाल देखा ।।
शेर जमा घर में न उसके माल देखा।
झटित करते धनी कंगाल देखा ।।
मि० टिका समर में न शत्रु जब देते शिव को डमरू पे ताल देखा।
खगेश पति यों कहें रमा से ।।1।।

चौ० 2 ठुमक धरे पग धरन पे द्युतिमय अनूप कर में कपाल देखा।
डरें दनुज सब सिहाए सज्जन वह रूप उनका विशाल देखा ।।
ढिग उनके रहते पिशाच निशदिन और संग में उनके श्रृगाल देखा।
त्रिनेत्र ग्रीवा में मुंड हखा सुभग जनेऊ का जाल देखा ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेर थिरकते संग में बैताल देखा।
दरश करते हर एक दिगपाल देखा॥
मि० धनद करें प्रार्थना मगन मन वह कर में शुभचिन्दपाल देखा।
खगेशपति यों कहें रमा से।

चौ० 3 नगिन सुभग तन चढ़ी विभूति बंधा जटाओं में व्याल देखा।
पवित्र गंगा जी शीश सोहें और माथे पर इन्दु बाल देखा॥
फणीश करते हैं गुणकथन नित्य न हमने ऐसा दयालु देखा।
विनीत सनकादि भाव राखें वह ऐसा एक चन्द्रभाल देखा॥
शेर भक्त उनका विगत जंजाल देखा।
मगन मन हो बजाते गाल देखा॥
मि० यतीश धरते हैं ध्यान निशिदिन के मन जिन्हों का वहाल देखा।
खगेशपति यों कहें रमा से॥3॥

चौ० 4 रटे जो शिव शिव तो छूटे संकट मिटाते सारी कुचाल देखा।
लिया सवारी में शुभ्र नन्दी कुछ उनका अद्भुत ही हाल देखा॥
वह विष पियें कंठ श्यामताई हृदय ज्यों उत्तम प्रवाल देखा।
शिवा हैं अर्द्धांग गोद गणपति के जिनका सब तन सुढाल देखा॥
शेर षडानन को भी हरके नाल देखा।
सदा निज भक्त का, प्रतिपाल देखा॥
मि० हृदय सुहावन-नारायणानन्द छन्द तेरा रसाल देखा।
खगेशपति यों कहें रमा से॥4॥

लावणी रंगत खड़ी—विलासप्रियता। नवम्बर॥65॥

टेक हो बैठे कंगाल लुटाया हा, हमने कंचन अपना।
विलासप्रियता में फंस कर बन गया देश निर्धन अपना॥
चौ० 1 भूल गये सब लोग आज वह पहला चाल चलन अपना।
पहन कोट पतलून बिसारा सुभग वस्त्र भूषण अपना॥
बनते 'जंटिल मैन' कभी था नाम सुखद सज्जन अपना।
उठा लिया यह कांच हाय, हाथों से फेंक रतन अपना॥
मि० हित न देश का किया, किया धन बिदेश के अर्पन अपना।
विलासप्रियता में फंस कर०॥1॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौ० 2 दश हजार मोटर में गंवाये तज के हय स्यन्दन अपना।
लोहे के बदले में हमने दिया अहो सुवरन अपना।।
ले लो घोड़ा बेच साइकिल सूना किया भवन अपना।
हो सवार चल दिये दिखाने प्लवंग सम दर्शन अपना।।
मि० हंस हंस कर ले गये विदेशी कर सर्वस्व हरन अपना।
विलासप्रियता में फंस कर० ।।2।।

चौ० 3 वाच से शोभित किया सुभग कर तज पवित्र कंगन अपना।
मस्तक पर पाउडर झलकाया त्याग सुहृद चन्दन अपना।।
बिना लविन्डर हो प्रसन्न नहीं किसी इत्र से मन अपना।
पीयर सोप बिना नहीं चमके अब तो मित्र बदन अपना।।
मि० बूट सूट पर मरते हैं वह भूल स्वदेशीपन अपना।
विलासप्रियता में फंस कर० ।।3।।

चौ० 4 चमक दमक पर हो मोहित हम खो बैठे वह फन अपना।
आलस के वश गंवा दिया मित्रों विज्ञान गहन अपना।।
उठा सर्व व्यापार देश का कुम्हला हृदय सुमन अपना।
दश करोड़ को हुआ आज है कठिन पालना तन अपना।।
मि० छुटे तीर्थ व्रत दान श्राद्ध जप संध्या यज्ञ हवन अपना।
विलासप्रियता में फंस कर० ।।4।।

चौ० 5 विदित देश देशों में था वह कभी महर्षि पन अपना।
निपुण कला कौशल में थे हम रहा देश दर्शन अपना।।
धीर वीर योद्धा थे हम, था सत्य पठन-पाठन अपना।
तब तो था सम्पन्न सुरक्षित सुखमय स्वर्ग सदन अपना।।
मि० 'नारायण' है सभी भांति सुन्दर सादा जीवन अपना।
विलासप्रियता में फंस कर० ।।5।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सन्त सन्देश' में प्रकाशित लेख

दशनामी अखाड़े

इस समय साधु समुदाय में 'दशनामी' अखाड़े प्रबल, सम्पतिशाली और अग्रणीय हैं। गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती, तीर्थ, आश्रम, वन, पर्वत, अरण्य, सागर—यह 'दशनाम' हैं। जगद्गुरुस्वामी शंकराचार्य जी ने अपने शिष्यों को—यह नाम, पदवी या उपाधि स्वरूप प्रदान किये थे, ऐसा ऐतिहासिक अन्वेषण से ज्ञात होता है। शंकर दिग्बिजय के अवलोकन करने का सौभाग्य जिसको प्राप्त हुआ है—अथवा जिसने 'शंकर' मठाम्नाय का पाठ किया है, वह इस विषय को भली भांति जान सकता है, कि यह दशनाम (पद) कितने महत्त्वपूर्ण हैं। इन नामों की परिभाषा हमें बताती है कि यह पदवियां गुण-कर्म स्वभावानुसार व्यक्ति विशेषों को दी गई थीं। आज भी उनके अनुयायी अपने को उन्हीं पदवियों से विभूषित करते हैं।

स्वामी शंकराचार्य ने अद्वैत मत के प्रचारार्थं चार दिशाओं में चार मठों की स्थापना की।

1. 'शारदा मठ' द्वारिका जी में। इस मठ के अधीन सिन्धु सौवीर, सौराष्ट्र और महाराष्ट्र आदि देशों का प्रचार कार्य किया। इस मठ का प्रबन्ध उन्होंने अपने योग्य शिष्य स्वरूपाचार्य को सौंपा और उनको शंकराचार्य की पदवी से विभूषित किया। मठ की रक्षार्थ जो अन्य महात्मा सेना के रूप में रखे गये, वे 'तीर्थं' और 'आश्रम' की पदवी से सुशोभित किये गये।

2. 'गोवर्द्धन मठ' जगन्नाथपुरी में यह मठ स्थापित किया। इसके अधिष्ठाता 'पद्मपादाचार्य' बनाये गये। अंग, बंग, कलिंग, उत्कल, बर्बर आदि देश इसके अधीन किये। इसके संरक्षकों को 'वन' और 'आरण्य' की पदवी दी गई।

3. 'ज्योतिर्मठ' (श्रीमठ) यह बद्रिकाश्रम में स्थापित किया। इसके अध्यक्ष 'त्रोटकाचार्य' हुए। कुरू, काश्मीर, काम्बोज, पांचाल आदि देशों का प्रचार इनके सुपुर्द हुआ। इस मठ के अंगरक्षकों को 'गिरि', 'पर्वत' और 'सागर' की पदवी दी गई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. शृंगेरी मठ रामेश्वर में स्थापित किया। इसके अध्यक्ष पृथ्वीधराचार्य हुए। आंध्र, द्रविड़, कर्नाटक, केरल आदि—देशों का प्रचार इनको सौंपा गया। इसके रक्षक या प्रचारकों को 'सरस्वती', 'भारती', 'पुरी', यह पदवियां दी गयीं। वर्तमान समय के दशनामी 4 श्रेणियो में विभाजित हैं।

1. दण्डी संन्यासी—जिनको आचार्य पद प्राप्त है इनमें केवल तीन पद हैं, तीर्थ, आश्रम और सरस्वती। यह ब्राह्मण जाति के अतिरिक्त किसी को दण्ड धारण करने का अधिकार नहीं देते। मुद्रा के सहित दण्ड धारण, काषायवस्त्र और कमण्डलु यही इनके चिह्न विशेष हैं। भस्म और रुद्राक्ष भूषण स्वरूप धारण करते हैं। दशों नाम इनको आचार्य मानते हैं।

2. परमहंस— यह सन्यासी कहलाते हैं प्राय: दण्ड प्राप्त कर इस पद को प्राप्त होते हैं। अथवा यह लोग यो भी शिष्य बनाते हैं, यह दण्ड धारण नहीं करते केवल काषाय वस्त्र और कमण्डलु; भस्म और रुद्राक्ष यही इनके चिह्न विशेष हैं। यह प्राय: विद्याव्यसनी होते हैं बड़े-बड़े विद्वान इनमें पाये जाते हैं। इनमें दशों नाम शामिल हैं। इनका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों को है। इनके अधीन बड़े-बड़े मठ और मन्दिर हैं।

3. 'नागा' (महापुरुष)—ये लोग जटाजूट रखते हैं और भस्म चढ़ाते हैं। इनमें भी बड़े-बड़े करामाती कर्मनिष्ठ पुरुष होते हैं। यही अखाड़मल्ल हैं। इन्हीं के दशनामी अखाड़े हैं। इनमें शूद्र भी शामिल हो सकते हैं। इनमें दत्त की उपासना भी प्रचलित है। यह प्राय: जमात बांध के रहते हैं। जमात का संगठन बड़ा सुन्दर है। अगर इनको 'शंकर' सेना कहा जाए तो अनुचित न होगा। ये लोग भारत-भ्रमण किया करते हैं; कभी अखाड़ों में भी रहते हैं। यह गोला पुजाते हैं एवं स्थान धारियों से कर वसूल करते हैं। एक तरह से मठो और स्थानों पर इनको अधिकार-सा प्राप्त है। इनमें से परमहंस भी बन सकते हैं।

4. 'गुसाईं'—ये स्थानधारी होते हैं और घर-गृहस्थ भी। इनके पास भी बड़े-बड़े मन्दिर और मठ हैं। यह काषाय वस्त्र धारण करना ही पर्याप्त समझते हैं, अपने को संन्यासी कहते हैं। इनमें भी दशों नाम के होते हैं। परन्तु गिरि, पुरी, भारती अधिक हैं। यह भी चेला मूंड़ते हैं। बिना चेला हुए चाहे पुत्र ही क्यों न हो उसकी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। शंकर मत में इनका भी स्थान है।

अब आप समझ गए होगे कि 'दशनामी' क्या हैं। इनकी महत्ता क्यों है। इनके रहन-सहन आचार-व्यवहार आदि के सम्बन्ध में भी हमने साधारण रूप से बतलाने का प्रयत्न किया है। जिसको आप विचार लेंगे।

इनके छह अखाड़े प्रसिद्ध हैं। (1) अटल, (2) आनन्द, (3) निर्वाणी (4) निरंजनी, (5) जूना और (6) आवाहन। इन अखाड़ों के अन्तर्गत उक्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशनाम हैं, और दशनामियों के यह उक्त अखाड़े हैं।

इन अखाड़ों के वैभव और शक्ति-संगठन का पता कुम्भ मेलों में चलता है। जिन्होंने 'कुम्भ' मेलों की शाही निकलते देखी होगी वे इस विषय से भली-भांति परिचित होंगे। दशनामियों के महत्त्व का यह सबसे बड़ा सबूत है कि 'कुम्भ' में सबसे प्रथम स्नान करने का अधिकार इन्हीं को प्राप्त है।

जब साधु समुदाय स्नान को चलता है, उस समय अद्‌भुत दृश्य देखने में आता है। हमने प्रयागराज और हरिद्वार के कुम्भों में देखा है कि सर्वप्रथम दशनामियों की सवारी पर आचार्य एवं मठाधीश उसके पीछे घुड़सवार उनके पीछे पैदल जमात। हाथियों की स्वर्णजटित आम्बारी और उनको कारचोबी काम की झूलें तथा उनके स्वर्णवेष्ठित दांत प्राचीन राजत्वकाल की याद दिलाते हैं। उस समय उस दृश्य की शोभा देखते ही बनती है। जिसका वर्णन सहस्त्र मुख शेष ही कर सकते हैं। हजारों की संख्या में दिगम्बर 'नागाओं' का दर्शन विलक्षण ही होता है। उनमें ऐसी-ऐसी दर्शनीय मूर्तियां होती हैं जिनका दर्शन कर नेत्र अनिमेष हो जाते हैं।

इन अखाड़ों की महत्ता इसी से जान लीजिए कि ऐसे महान अवसर पर यही सबसे आगे होते हैं। शाही निकलने का यही क्रम है। सबसे प्रथम अपने ऐश्वर्य और वैभव की छटा दिखलाते हुए संन्यासी रहते हैं। उनके पीछे 'वैरागियों' वैष्णवों का समारोह। इसके बाद 'उदासी' नानक-पंथियों का समुदाय। पश्चात् 'नाथ' या कनफड़े गोरखपंथी पश्चात् अन्य साधुगण।

यों तो सभी सम्प्रदाय के साधुगण अपने-अपने साज-बाज ठाट-बाट दिखलाते हैं। परन्तु दशनामियों की समता कोई भी नहीं कर सकता।

हां, वैरागी कुछ स्पर्धापूर्वक आगे बढ़ने का इरादा अवश्य करते हैं फिर भी इनकी बराबरी करने में असमर्थ हैं। इसीलिए कभी-कभी ऐसे अवसरों पर 'नागा'-'बैरागी' संघर्ष भी हो जाता है, और वह इतना बढ़ जाता है कि पुलिस को भी संभालते धरते नहीं बनता।

इस समय निर्वाणी, निरंजनी और जूना यही अखाड़े बढ़े-चढ़े हैं। शक्ति में भी और सम्पत्ति में भी। यद्यपि 'अटल' और 'आनन्द' यह पुराने अखाड़े हैं और आचार्यों द्वारा स्थापित हैं तो भी यह इतने शक्तिशाली नहीं हैं। 'निरंजनी' और 'निर्वाणी' 'अटल' आनन्द की शाखा कही जा सकती हैं। क्योंकि निरंजनी से निर्वाणी इससे जूना और जूना से आवाहन ऐसा समझा जाता है।

जमातें—इनमें महन्त, कारवारी, कुठारी, पुजारी और कोतवाल, यह पदाधिकारी रहते हैं। शेष सब महापुरुष होते हैं। इनमें छोटियां भी होते हैं। सबके कार्य बटे रहते हैं। महन्त सब पर शासन करता है। कारबारी सबका प्रबन्धक होता है। पुजारी केवल पूजा का काम सम्पन्न करता है। कुठारी रसोई आदि के इन्तजाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रहता है। कोतवाल सबकी देखभाल रखता है। इस प्रकार संगठित रूप में जमातें भ्रमण किया करती हैं। जो जिस अखाड़े से सम्बन्धित हैं वे उसी की जमात कहाती हैं। कुम्भ मेलों पर इन जमातों की कारगुजारी दिखलाई जाती है और अज सरैनों पदाधिकारियों का चुनाव भी होता है।

पदाधिकारी वही बन सकता है जिसमें सदाचारिता आदि उत्तम गुणों के अलावा आय बढ़ाने की भी क्षमता हो। जो अखाड़े की उन्नति कर सकता हो—आदि।

इसी तरह परमहंस भी जमात रखते हैं जिनको 'मण्डली' कहते हैं। इनके अध्यक्ष मण्डलेश्वर कहलाते हैं। हम पूर्व कह आये हैं कि इनमें वेदान्तवेत्ता अधिक होते हैं। शास्त्र के मर्मज्ञ ऐसे संन्यासियों से ही 'भारत' देश अपनी मान-मर्यादा कायम रख सका है और अपना मस्तक धार्मिक जगत में ऊंचा रखता है।

हमने यथाशक्ति 'दशनामी अखाड़ों' का दिग्दर्शन मात्र कराया है। जिससे जनसाधारण इनके महत्त्व को जान सकें। सम्भव है कि इस विषय को हम पूर्ण-रूपेण वर्णन न कर सके हों अथवा किसी विषय का क्रम ठीक न रख सके हों। इसके लिए 'दशनामी' महात्माओं से क्षमा प्रार्थी हैं। आशा है अन्य विद्वान महात्मा भी इस विषय पर प्रकाश डालने की दया दिखलायेंगे।

(सन्त सन्देश-माघ सं० 1992-वर्ष 1-संख्या-1 में प्रकाशित)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगटा बाबा

—मायाविलक्षण स्वामी[1]

गया धाम में यह बड़े प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। कहा जाता है कि इनकी वाणी सिद्ध थी। जो कुछ जैसा कहते थे वैसा ही हो जाता था। इन महात्मा का योग पटल (नाम) स्वामी रतनगिरि जी था। शरीर इनका पंजाब प्रान्त का था, और गुरुद्वारा 'करणाल' में। प्रथम यह 'लारी' ग्राम में आकर रहे थे। लारी टिकारी राज्य में है। वहां के एक प्रसिद्ध व्यक्ति आदित्यबाबू को इनका कुछ चमत्कार दीख पड़ा। यह तभी से इनके भक्त बन गये। थोड़े ही दिनों में इस तपस्वी का तपोवल तमाम ग्रामवासियों पर विदित होने लगा और लोग काफी सेवा करने लगे यहां तक कि तत्कालीन टिकारी राज्य की अधिष्ठात् दुल्हन साहिबा भी उन महात्मा में श्रद्धा रखने लगी। बहुत से लोग अपने मनोरथों की पूर्ति के लिए महात्मा से प्रार्थना करते थे परन्तु महात्मा ने जिस पर कृपा दृष्टि की उसी का भला हो गया, ऐसा यहां के लोगों का कथन है। कुछ रोज लारी में रहने के बाद यह गया जी चले आये। गया जी में आकर महात्मा ने अपना आसन 'कपिलधारा' पर जमाया। इसी स्थान पर कभी एकनाथ बाबा रहते थे। उन्होंने भी यहां अच्छी ख्याति पाई थी 'लंगटा बाबा' नग्न रहते थे और बड़े कर्मनिष्ठ साधु थे। योग क्रिया में यह बड़े प्रवीण थे यों तो इनको वेदान्त शिक्षा भी मिली थी, परन्तु वे पूरे योगीराज भी थे। उनमें ब्रह्म वर्चस्था तेज था। महान से महान व्यक्ति भी उनके समक्ष नव जाता था। धीरे-धीरे उनकी ख्याति शहर भर में फैल गयी। क्योंकि उनको वह सिद्धि प्राप्त थी। शहर के प्रतिष्ठित लोग उनके भक्त होने लगे और उनकी प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। हाकिम हुक्काम अमीन रईस विद्वान पण्डित सभी उनको मानने लग गये। किन्तु वह बड़े त्यागी महापुरुष थे। उन्होंने कभी किसी बात की परवाह नहीं की। गया जी के पण्डों में भी उनका काफी आदर था। हर समय उन्हें लोग घेरे ही

1. स्वामी जी का छद्म नाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते थे। परन्तु वे अपने भजन-पूजन में मस्त थे। सुनते हैं वे नेती धोती आदि क्रियाएं किया करते थे और समाधि भी लगाते थे। वह कभी किसी से कुछ इच्छा नहीं प्रकट करते थे। बल्कि लोग नाना प्रकार की कामनाओं के लिए उनसे प्रार्थना किया करते थे। उनकी कृपा से बहुतों का भला हो जाता था। लोगों का कहना है कि वह मन की बात जान लेते थे। साथ ही भविष्य वक्ता भी थे। इसीलिए लोगों की श्रद्धा उन पर विशेष थी। खासकर बंगाली उनके परम भक्त थे। बहुत से लोगों की उनकी कृपा का तत्काल फल देख पड़ा। अमीर-गरीब सभी उनके पास आते थे परन्तु वे सबसे समान बर्तते थे। उनके हृदय में दया अधिक थी। इससे गरीब पर शीघ्र ही कृपा करते थे। मारवाड़ी सेठ आते थे फल, मिठाई भेंट चढ़ाते थे। वे उसको तुरंत ही उपस्थित लोगों में बंटवा देते थे। यह भी उनका नियम था कि जो दर्शनार्थी आवे उससे वे कुछ-न-कुछ शारीरिक परिश्रम अवश्य करा लें। योग वाशिष्ठ से उनको बहुत प्रेम था। जिसको वे रोज सुना करते थे। उन्होंने अपने त और त्याग से शहर भर को वशीभूत कर लिया। तथा लोगों ने उनके चमत्कार भी देखे। सबसे बड़ी बात उनमें यही थी कि वे दुखियों के दुख दूर करने के लिए सदा उत्सुक रहते थे। गया जी के पुराने लोग आज भी उनके गुणगान करते हैं। शहर में हमने जहां तक मालूम किया है, लंगटा बाबा के नाम की दुहाई फिरती है। हमने तो केवल उनके फोटो का दर्शन किया है। हम कह सकते हैं कि उनके चेहरे पर जलाल हैं मधुर मुस्कान है जिससे उनकी सरलता और दयालुता टपकती है दूसरों को खिलाकर वे बड़े प्रसन्न होते थे। जो कुछ आ जाता था सब वह दूसरों को खिला दिया करते थे। वह सच्चे साधु थे। उनके सामने शेर भी बकरी हो जाता था। हमने सुना है कि उनके पास एक शेर आया करता था और वे उसे कुछ खिलाया करते थे। इस बात को कई बार लोगों ने जान लिया। जब उनसे पूछा तो उन्होंने कहा यह महात्मा हैं। क्या तुम्हें शेर दिखता है? वे भण्डारे भी अक्सर किया करते थे जिनमें हजारों आदमी जीमते थे। उनके इन चमत्कारों की चर्चा अब भी लोग करते हैं। जब उन्होंने कुआं बनवाने का इरादा किया तो उनके कई बंगाली भक्तों ने कहा कि कुएं में जो खर्चा लगेगा हम देंगे आप काम प्रारम्भ कर दें। महात्मा ने कहा, भाई तुम कहते तो हो कर नहीं सकोगे। उन महाशयों ने फिर कहा नहीं महाराज आपके कहने की बात है। हम इस पुण्य कार्य के करने को अत्यन्त लालायित हैं। तब 'लंगटा बाबा' ने कहा अच्छी बात है। कुआं खुदना प्रारम्भ हुआ और उन सज्जन ने खर्चा देना जारी किया। पहाड़ी स्थान होने के कारण बहुत गहराई तक खोदने पर भी पानी का दर्शन न हुआ। आखिर वे महाशय हताश हो गये और कहने लगे महात्मा से कि यह रुपया यों ही बर्बाद हुआ यह कुआं तैयार हो ही नहीं सकता। क्योंकि लगभग 1000 के उन लोगों ने खर्च किया और पानी का दर्शन हुआ नहीं, फिर उनका निराश होना स्वाभाविक था। 'लंगटा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबा' ने कहा कि हमने तो तुमसे पहले ही कहा था कि तुम इस काम को नहीं कर सकते। वे कुछ लज्जित से होकर कहने लगे हम तो तैयार हैं आप पानी तो बुलाइए। कहते हैं 'लंगटा बाबा तीन दिन तक समाधिस्थ रहे'। चौथे दिन उन लोगों के पास खबर भेजी कि गंगाजी आ गई हैं। दर्शन कर जाओ। कुएं का स्रोत खुल गया था पानी चढ़ता चला आ रहा था। इस बात की तमाम शहर में शोहरत हो गयी। इसी तरह की अनेक करामातें उनमें पाई गयीं। फिर लोगों ने उनके रहने के लिए स्थान भी बनाना आरम्भ कर दिया। जो आज कपिलधारा आश्रम नाम से प्रसिद्ध है।

उनके पास बहुत लोग सेवा में रहने लगे। शुद्धता के वे बड़े पावन्द थे। अपने नित्य कर्म वे समय पर अवश्य करते थे। उसमें एक मिनट का भी हेर-फेर नहीं होने देते थे। स्नान से उन्हें बड़ा प्रेम था। 25 घड़े उनके स्नान में लग जाते थे। जिससे बहुत प्रसन्न होते थे उसी से स्नान के लिए जल मंगाते थे। साथ ही उसकी भक्ति की परीक्षा भी करते थे। 4 सेर दूध 1 सेर बादाम यही उनका भोजन था। दस पांच आदमी क्या बीसों लोग उनके यहां भोजन पाते थे। उनका ऐसा प्रभाव था कि जब वे स्थान बनाने लगे तो उन्होंने महान से महान व्यक्तियों से गारा और ईंट ढुलवाईं। खुशमिजाज तो वे ऐसे थे कि रोते हुए को भी हंसा देते थे। कुछ रोज वाद उनके गुरुभाई स्वामी कृष्णानन्द जी भी उनके पास आ गये और वे भी यहीं रहने लगे। तथा अन्य कई साधु भी रहने लगे। गुरु की कृपा से लंगटा बाबा की बड़ी ख्याति हुई। गया के जितने महात्मा थे वह भी इनको सिद्ध समझने लगे। यहां तक कि बुद्ध गया महन्त भी कभी-कभी दर्शनों को आते थे। कुछ सिद्धि उनको अवश्य प्राप्त थी, जिसके द्वारा उन्होंने नगर में धूम मचा दी। उन्होंने अपने स्थान का नाम 'कपिलधारा' आश्रम रखा। अभ्यागत का सत्कार करना उनका परम कर्तव्य था। इसके वास्ते बहुतों ने बन्धान लगा दिये। अगर वह चाहते तो उस समय स्थान के लिए स्थायी प्रबन्ध कर सकते थे। पर उनको तो इसकी इच्छा ही न थी। एक बार एक सेठ आया और उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की महाराज मेरी इच्छा है कि आपके स्थान के लिए थोड़ी जायदाद खरीदकर ली जाए जिसका रुपया मेरे से ले लिया जाए—आखिर वह एक लाख रुपया देने को तैयार था, किन्तु लंगटा बाबा ने अपनी अनुमति नहीं दी और कह दिया जा भाई कहीं और लगा देना हम फकीरों को इससे क्या काम। इसीसे इनके त्याग का पता चलता है। हमको यह तो पता नहीं है कि, वे गया जी कब आये और कितनी अवस्था में आये। लेकिन यह हमने जरूर सुना कि वे 120 वर्ष की अवस्था तक जीवित रहे। अब उनको निर्वाण प्राप्त किये 25 वर्ष के करीब हुए होंगे। उनका जो फोटो हमने देखा है उससे तो यही मालूम होता है कि वे अपने अन्त समय तक काफी हृष्टपुष्ट और बलवान बने रहे। बहुत से उनके भक्त आज भी उसी प्रकार स्थान की सेवा कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। उनके सेवकों का कहना है कि हम तो आज भी 'लंगटा बाबा' का ध्यान करते हैं और हमारे बड़े काम निकल जाते हैं। इस समय कपिलधारा आश्रम गया जी में अपनी शान का एक ही स्थान है। इस समय आश्रम के अधिष्ठाता स्वामी आत्मानन्द जी हैं जो 'लंगटा बाबा के' प्रिय शिष्य हैं। एक शिष्य उनके और भी स्वामी जगदीशानन्द जी जो आजकल यहां नहीं रहते हैं। मौजूदा स्वामी आत्मानन्द बड़े सहृदय महात्मा हैं। आत्मानन्द के द्वारा आश्रम की काफी उन्नति हुई। यह बंगाली हैं। अंग्रेजीदां हैं। रईस खानदान के हैं। बड़े प्रेमी हैं और पुरुषार्थी। इन पर गुरु की कृपा है। स्थान पर जो मूर्ति आ जाते हैं उनका सत्कार करने की इनको लगन है। साथ ही साम्य के उपासक हैं। अन्य महन्तों की तरह 'प्राइवेट' ढंग उन्हें पसन्द नहीं। थोड़ा या बहुत जो हो और जैसा हो वह उपस्थित लोगों में बराबर बांट कर खाया जाता है। आश्रम बहुत रमणीक है, सुन्दर है। पर्वतमाला से वेष्ठित इस स्थान की शोभा श्रावण-भादों में देखते ही बनती है। स्थान बहुत बड़ा है अन्दर बहुत से विशाल कमरे हैं बहुत बड़ा मैदान है, फुलवाड़ी है। नीचे एक धर्मशाला है। वहीं शिवजी का मन्दिर है। इसी जगह लंगटा बाबा की और उनके गुरुभाई कृष्णानन्द जी की समाधियां हैं। एक बड़ा सुन्दर और विशाल कुआं है और चबूतरा इतना बड़ा जिस पर हजारों आदमी बैठ सकते हैं। शहर के लोग समाधि पर मानता मानने आते हैं। बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उनकी पूजा करते हैं।

(सन्त सन्देश—माघ-सं० 1992 वर्ष 1
संख्या 1 में प्रकाशित)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर-सन्त सुन्दरदास जी

यह महात्मा सन्त-दादूदयाल जी के शिष्य थे। इनका जन्म सम्वत् 1653 विक्रमी में 'वसर' गोत्री खण्डेलवाल वैश्यकुल में हुआ था। इनकी माता का नाम सती और पिता का नाम साह परमानन्द था। द्यौसा नगर जहां पहले जयपुर राज्य की राजधानी थी वही इनकी जन्म भूमि थी। उस समय उस प्रान्त में सन्त 'दादूदयाल' एक पहुंचे हुए महात्मा थे तथा उनका सर्व साधारण पर बड़ा प्रभाव था। कहते हैं कि सम्वत् 1659 में जब उक्त महात्मा द्यौसा नगर में पधारे तो सुन्दर दास के पिता ने अपने पुत्र की शुभकामना से प्रेरित होकर उन्हें सन्त 'दादूदयाल' के चरणों में डाल दिया। उन्होंने इनके सर पर हाथ धर कर कहा कि यह बालक तो बड़ा सुन्दर है। बस, यही मानों इनका नामकरण संस्कार हुआ और इनका नाम सुन्दर हो गया। साथ ही उनका दर्शन पाने और सर पर हाथ फिरने से इनकी बुद्धि चमत्कृत हो उठी और यह उसी दिन महात्मा दादूदयाल के साथ हो लिये। यद्यपि इनकी अवस्था उस समय केवल सात-आठ साल से अधिक न थी तो भी कुछ पूर्व संस्कारों के प्रभाव एवं गुरु की महती कृपा के प्रताप से इनमें उसी समय कवित्य शक्ति का प्रादुर्भाव हो गया। इन्होंने थोड़े ही दिन गुरु-सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया फिर भी अपनी पैनी दृष्टि और तीव्र बुद्धि के द्वारा यथाशीघ्र ही आत्म तत्त्व को पहचान गये। महात्मा दादूदयाल जी विशेष रूप मे 'नारायणा' में रहते थे और वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। गुरु महाराज का स्वर्गवास होने पर यह 'नारायणा' से चलकर साधु प्रागदास के पास 'डीडबाण' में आ गये। कुछ रोज वहां रहकर फिर सन्त 'जगजीवन दास जी' के साथ अपने माता-पिता के पास द्यौसा नगर चले आये। इनका हृदय तो आत्म तत्त्व का खोजी बन चुका था वहां यह केवल भजन-पूजन, पठन-पाठन सत्संग में ही समय बिताते थे। साधु जगजीवन जी संस्कृत के धुरन्धर विद्वान थे, उनके द्वारा सुन्दर दास के हृदय में संस्कृत के संस्कार स्थापित हुए और वे उन्हीं के साथ संस्कृत पढ़ने की इच्छा मे काशी जी चले गये। यहां रहकर उन्होंने 30 वर्ष की अवस्था तक खूब विद्याध्ययन किया। काशी जी में महात्माओं का सत्संग भी प्राप्त हुआ और यह उच्चकोटि के विद्वान महात्मा बन गये। यद्यपि इन्होंने वेद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदांगों का अध्ययन किया था फिर भी जो शिक्षा इन्हें अपने गुरु 'दादूदयाल जी' से प्राप्त हुई थी उसके संस्कार इनमें प्रबल रहे। अतएव इन्होंने वेदान्त की प्रधानता को स्वीकार किया और आत्मानुभव प्राप्त करने की अभिलाषा इनमें जाग उठी, जिसके लिए वे अनेक साधु-महात्माओं का सत्संग करने लगे।

थोड़े ही दिनों में यह एक मानवीय महात्मा समझे जाने लगे और यह काशी जी से अपने देश शेखावाटी लौट आये। वहां आकर सन्त 'दादूदयाल' की वाणियों का स्वाध्याय और मनन कर उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चलना इन्होंने पसन्द किया। कवित्व शक्ति तो इनमें पूर्व ही विद्यमान थी, अब यह संस्कृत के पूर्ण विद्वान भी हो चुके थे। अस्तु! इन्होंने वेदान्त के भावों को अपनी कविता में प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। उसी जमाने में महात्मा रज्जब जी वेदान्त के परम अनुयायी और दादूमतावलम्बी थे उनके साथ इनका सत्संग होने लगा। यह अपनी प्रतिभा और विद्या के बल से शीघ्र ही शेखावाटी देश में पहुंचे हुए महात्मा कहलाने लगे। कुछ रोज बाद इनका विचार देशाटन करने का हुआ तब इन्होंने उत्तरी भारत और राजपूताना, पंजाब, गुजरात, मध्य प्रदेश, यू० पी० आदि प्रदेशों एवं भारत के सभी मुख्य-मुख्य शहरों का भ्रमण किया। हम पूर्व कह आये हैं कि यह छोटी अवस्था में ही कविता करने में निपुण हो गये थे और वह कवित्व शक्ति इनमें उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। फलतः इन्होंने गूढ़ से गूढ़ वेदान्त तत्त्वों को बोलचाल की भाषा में प्रकट किया और अपने भ्रमणकाल में उसका खूब प्रचार भी किया। यह जहां जाते थे वहीं कथा वार्ता सत्संग आदि का प्रबन्ध कर अपने मनोभावों को जन-साधारण में फैलाते थे, इसीलिए जनता इनका काफी मान करती थी। यह किसी सम्प्रदाय का पक्षपात नहीं रखते थे, किन्तु आत्म तत्त्व निरूपण करना ही इनका मुख्य उद्देश्य था, अतएव क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी इन पर श्रद्धा रखते थे और उस समय के बड़े-बड़े नवाब भी इनको 'मर्दे खुदा' कहा करते थे। जिस प्रकार इनके गुरु सन्त 'दादूदयाल' का मान था, उसी प्रकार इनकी लोकप्रियता भी खूब बढ़ गई। इन्होंने बहुत से ग्रंथों की रचना की है जिनमें कई तो प्रकाशित हो चुके हैं। उनके नाम हैं—(1) ज्ञान समुद्र, (2) सुन्दर विलास, (3)सर्वांगयोग, (4) साखी (5) पदावली, (6) चौबोला गूढ़ार्थ आदि। ग्रंथये समय-समय पर लिखे गए अथवा संग्रह किये गये प्रतीत होते हैं। उनके सभी ग्रंथों में वेदान्त मत की छाप पाई जाती है। बहुत से छन्द तो भी 108 स्वामी शंकराचार्य के छंदों का अनुवाद मात्र हैं। तथा बहुत से भावानुवाद छायानुवाद के रूप में पाये जाते हैं। महात्मा सुन्दरदास जैसे विद्वान और कवि थे वैसे ही संयमी भी थे आचार विचार के बड़े पक्षपाती थे। यह उनकी रचनाओं मे प्रकट होता है। स्वच्छता को वे बहुत पसंद करते थे। गंदगी से उन्हें घृणा थी। इसीलिए उन्होंने अपने भ्रमण में देश-देश के आचार व्यवहार की तीव्र शब्दों में आलोचना करते हुए अनेक रचनाएं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हैं। जिनका दिग्दर्शन आगे इसी लेख में कराया जायेगा।

महात्मा सुंदरदास जी का शरीर बड़ा सुडौल और सुंदर था, रंग गोरा और कद ऊंचा था, चेहरा तेजस्वी और मस्तक चौड़ा था। भाषा उनकी बड़ी मधुर थी और भाषा पर उनको पूर्ण अधिकार प्राप्त था। स्वभाव सरल और मितभाषी था। विचार उग्र थे अपने अभिप्राय को प्रकट करने में जरा भी संकोच नहीं करते थे। सभाओं में बेधड़क बोलते थे, साथ ही बड़े विनोदी भी थे। भगवद् भक्ति में प्रायः निमग्न रहते थे अथवा काव्यकला में समय बिताते थे। वे एक मस्त फकीर थे। बालब्रह्मचारी थे। स्त्री-चर्चा उनको पसंद न थी कविता में शृंगार रस से उन्हें चिढ़-सी थी। इसीलिए उन्होंने एक कुण्डलियां में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है—

रसिक प्रिया रस मंजरी और शृंगारहि जान।
चतुराई कर बहुत विधि विषय बनाई आन॥
विषय बनाई आन लगत विषयिन कूं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहै नखशिख नारी॥
ज्यों रोगी मिष्टान्न खाइ रोगहि विस्तारै।
सुंदर यह गति होय जोइ रसिक प्रिया धारै॥

'रसिक प्रिया' केशव कवि का बड़ा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है इसमें नायिका भेद का वर्णन है, भला सुन्दरदास क्यों न इसकी इन शब्दों में आलोचना करते, जबकि वे बालब्रह्मचारी और त्यागी थे। वे आशु कवि थे जो बात जैसी होती या उनकी समझ में आती थी उसको तुरन्त छंदोबद्ध कर देते थे। एक बार कोई ढूसर वैश्य शास्त्रीय प्रसंग पर उनसे वादविवाद करने पर उतारू हो गया, उन्होंने अपनी सहज कवित्व शक्ति से उसको तत्काल प्रभावित कर अपना अनुयायी बना लिया उन्होंने उससे कहा कि—

'घूसर कहै तू सुन हो ढूसर वादविवाद न करना।
यह दुनिया तेरी नहिं, मेरी नाहक क्यों अड़ मरना॥'

इसी प्रकार उन्होंने अपने बड़े गुरु भाई 'गरीबदास' के स्पर्धायुक्त वचनों को सुनकर कहा कि—

'क्या दुनिया असतूत करेगी क्या दुनिया के रूसे से।
साहिब सेती रहो सुर्खरू आतम बखसे ऊसे से॥
क्या किरपन मूंजी की माया नाव न होय नपूंसे से।
कूडा वचन जिन्होंने भाषा बिल्ली मरे न मूंसे से॥
जन सुन्दर अलमस्त दिवाना शब्द सुनाया घूंसे से।
मानो तो नरजाद रहेगी नहीं मानो तो घूंसे से॥'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बचन से पता लगता है कि वे स्वाभाविक कवि थे उनकी रचनाशैली बड़ी परिमार्जित और मुहावरेदार होती थी। कहते हैं 'गरीबदास' ने भण्डारे के अवसर पर बहुत से साधुओं के मध्य में 'सुन्दरदास' को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए स्पर्धापूर्वक उनके लिए कुछ अनुचित बचन कह दिया जिस पर उन्होंने उपरोक्त पद्य रचा—जिसमें चेतावनी के साथ अपनी आत्मदृढ़ता का भी परिचय दिया है। 'तुल्यंनिन्दात्मसंस्तुति' इस गीता के बचन को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए बतलाया कि साहिब के सामने अर्थात् परमात्मा के समक्ष सुर्खरू रहना या उसका प्रिय बनना ही पर्याप्त है, दुनिया चाहे स्तुति करे अथवा निन्दा करे। फिर 'गरीबदास' पर एक चुटकी भी कसी जिसको किरपन की पूंजी तथा मूंजी की माया कहकर यह भी बतलाया कि नपुंसक से नाव नहीं होता अर्थात् गुरु का नाम उजागर तुमसे नहीं हो सकता चाहे तुम कितना ही बढ़ के बातें करो और जो तुमने हम पर रोष प्रकट किया इसके लिए 'बिल्ली मरे न मूंसे से' कहकर उनको लज्जित कर दिया। साथ ही शिक्षा दी कि हम तुम्हारे छोटे गुरुभाई अवश्य हैं पर हैं अलमस्त और दीवाने। अगर हमें मानोगे तो गुरु परम्परा की मरजाद कायम रहेगी, और तुम नहीं मानोगे तो 'घूसे से' इसकी हमको परवाह नहीं है। हम तो गुरु भक्ति में अलमस्त हैं और गुरु चरणों के दीवाने हैं एवं उनकी कीर्ति उज्ज्वल करने वाने अधिकारी हमी हैं।

भ्रमणकाल में भी उन्होंने कुछ आलोचनात्मक रचनाएं की हैं, जरा उन पर भी ध्यान दीजिए। कैसे व्यंग्य कसे हैं।

पूर्व देश के खानपान तथा आचार पर उन्होंने लिखा है—ब्राह्मण क्षत्रिय वैशरू शूद्रर चार्यहि वरन के मांछ वद्यारत। दक्षिण देश के सम्बन्ध में—'रांघतप्याज बधारत नाज न आवत लाज करै सब भक्षण।' मारवाड पर लिखा है—'वृक्ष न नीर न उत्तम चीर सुदेशन में गत देश है मारू।' गुजरात के विषय में, 'आभड़ छोत अतीत सौं, कीजिए बिलाइ रू कूकर चाटत हांड़ी।' फतेहपुर की स्त्रियों पर छींटा कसते हुए लिखते हैं—'फूहर नार फतेहपुर की' इसी तरह जो देश उनको पसन्द थे उनके विषय में भी उन्होंने लिखा है जैसे—'जोग करन को भलो देश उत्तर', अथवा 'मालवी देश भलो सबहीं तें' इत्यादि उन्होंने सभी देशों पर अपना मत प्रकट किया है और सभी देशों में भ्रमण किया है परन्तु अधिक समय वे शेखावाटी के इर्द-गिर्द ही रहे और वही देश उन्हें पसन्द था, यह उनके एक छंद से पता चलता है जैसे—

'पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण देश विदेश फिरे सब जानें।
केतक द्यौस फतेहपुर मांहि औ केतक द्यौस रहें डिडवाणे॥
केतक द्यौस रहे गुजरातहू दाऊ कछू नहि आयो है ठाने।
सोच विचार के सुन्दरदास जू याहीतें अनरहे 'कुरसाने'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त 'रचनाएं' उनकी अभिरुचि की परिचायक ही नहीं किन्तु प्रत्येक देश के तत्कालीन रस्म रिवाज पर भी काफी प्रकाश डालती हैं।

अब हम पाठकों को महात्मा सुंदरदास की कुछ वाणियों का दिग्दर्शन करायेंगे जिस पर उनके विचारों की छाप है अथवा जो उनका अनुभव है या सिद्धांत है।

ईश्वर कहां है

कोऊ तो कहत बह्म नाभि के कमल मध्य।
कोऊ तो कहत ब्रह्म हृदय में प्रकाश है।।
कोऊ तो कहत कंठ नासिका के अग्रभाग।
कोऊ तो कहत ब्रह्म भृकुटि में वास है।।
कोऊ तो कहत ब्रह्म दशवें दुवार बीच।
कोऊ तो कहत भौंर गुफा में निवास है।।
पिंड में ब्रह्माण्ड में निरंतर बिराजै ब्रह्म।
'सुंदर' अखंड जैसे व्यापक अकाश है।।

इस छंद में 'सुंदरदास' जी ने ईश्वर के संबंध में अनेक प्रकार के विचारों पर प्रकाश डाला है। क्या वैदिक क्या दार्शिनक क्या पौराणिक सभी विचारों का समावेश इसमें पाया जाता है—जैसे कोई उसे नाभी कमल में मानते हैं तो कोई दशवें द्वार पर तो कोई भ्रमर गुफा में कोई नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाने से उसकी प्राप्ति बतलाते हैं कोई हृदय में उसका निवास स्वीकार करते हैं परंतु यह सब विचार एकदेशीय है अतएव 'संत सुंदरदास' कहते हैं कि, ईश्वर क्या पिण्ड क्या ब्रह्माण्ड सभी में ओतप्रोत है। जैसे आकाश सर्वस्त्र व्यापक है उसी प्रकार ब्रह्म परमात्मा आकाश के समान व्यापक है। यह मत उनका मनगढ़ंत नहीं है किन्तु श्रुति का मत है, जैसे—'ओइम् खं ब्रंह्म इतिच्छुतिः।'

यहां प्रश्न होता है कि फिर अन्य मत क्यों और कैसे प्रचलित हुए, इसके उत्तर में वे एक दृष्टांत के रूप में बतलाते हैं।

पांव जिन गह्यो सो तो कहत है ऊखर सों।
पुच्छ जिन गह्यो तिन लांव सो सुनायो है।।
सूड जिन गह्यो तिन दगले की बांह कही।
दंत जिन गह्यो तिन मूसर दिखायो है।।
कान जिन गह्यो तिन सूप सों बनाय कह्यो।
पीठ जिन गह्यो तिन बिठौरा बतायो है।
जैसो है तैसो ही ताहि 'सुंदर' सुअक्षि जानै।।
आंधरो ने हाथी देखि झगरो मचायो है।।

इस दृष्टांत से उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि ईश्वर संबंधी विचार इसी भांति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलित हैं, जिस भांति अंधों ने हाथी को स्पर्श कर उसके स्वरूप का अनुमान किया था।

अर्थात् जिस अंधे ने हाथी का पांव पकड़ लिया उसने तो कहा हाथी स्तम्भ सा है, दूसरे ने पूंछ पकड़कर कहा नहीं लाठी-सा या बढ़नी-सा है, तीसरे ने सूड पकड़कर कहा यह तो दगले (लवादा) की बांह जैसा है, और जिसके हाथ में हाथी का कान आ गया उसने कहा ऐसा नहीं हाथी तो सूप-सा है। दांत पकड़ने वाले ने उसको मूसल-सा बतलाया एवं जिसने पीठ पर हाथ फेरा उसने कहा तुम सब गलत कहते हो हाथी तो बिठौरा (उपलों का ढेर) जैसा है। ठीक़ इसी प्रकार ईश्वर के विषय में लोग अनुमान करते हैं, परंतु जिन पर गुरु की कृपा हुई है, जो दिव्य दृष्टि वाले हैं उन्हीं को ईवर का यथार्थ स्वरूप ज्ञात होता है अन्यों को नहीं इसी विषय को और भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने यह छंद लिखा है। देखिए—

न्याय शास्त्र कहत है प्रघट ईशुर वाद।
मीमांसादि शास्त्र मांहि कर्मवाद कह्यो है॥
वैशैशिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध।
पातंजलि शास्त्र माहिं योगवाद लह्यो है॥
सांख्य शास्त्र माहिं पुनि पुरुष प्रकृतिवाद।
वेदांत जु शास्त्र तिन ब्रह्म बाद गह्यो है॥
सुंदर कहत षट्शास्त्र माहिं भयो वाद।
जाके अनुभव ज्ञान वाद में न वह्यो है॥

इससे साबित होता है कि वे आत्मानुभव को ही मुख्य मानते थे और शास्त्रीय विवाद में पड़ना नहीं चाहते थे, इसके लिए भी उन्होंने एक छंद में स्पष्ट लिखा है—

प्रज्ञानमानंद ब्रह्म ऐसे ऋग्वेद कहै।
अहं ब्रह्म अस्मि इति यजुर्वेद यों कहै॥
तत्वमसि इति सामवेद यों बखानत है।
अयमात्मा ब्रह्म कह सामवेद यों लहै॥
एक-एक बचन में तीन पद हैं प्रसिद्द।
तिनको विचान कर अर्थ तत्त्व कूं गहै॥
चारि वेद भिन्न भिन्न मनको सिद्धांत एक।
'सुन्दर' समुझि कर चुपचाप ह्वै रहै॥

वेद के चारों महावाक्यों का समावेश इस छंद में कैसी उत्तमता से किया गया है, किन्तु यह भिन्न-भिन्न विचार भी उन्हें पसंद नहीं हैं, इसलिए वे इस भिन्नता को तत्त्वतः एक ही सिद्ध करते हैं और इसके अर्थ द्वारा तत्त्व को समझने की सिफारिश करते हुए चुपचाप रहने की सलाह देते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना न होगा कि संत सुंदरदास मतमतांतरों में न पड़कर सब समन्वय चाहते थे और आत्म तत्त्व का निरूपण अपनी कविता द्वारा करते थे।

लेख बढ़ जाने के भय से अब कतिपय पद्य उनके लिखकर ही संतोष करेंगे। आशा है पाठक इतने ही से उनके विचारों को भली-भांति जान लेंगे—

एक कहूं तो अनेक सो दीखत,
एक अनेक नहीं कछु ऐसो।
आदि कहूं तहां अंतहु आवत,
आदि न अंत न मध्य सो कैसो॥
गोप्य कहूं तो अगोप्य कहां,
यह गोप्य अगोप्य न उभो न वैसो।
जोइ कहूं सोइ है नहीं सुन्दर,
है तो सही पर जैसे को तैसो॥

है दिल में दिलदार सही,
अंखियां उलटी कर ताहि चितैये।
आब में खाक में बाद में आतश,
जान में 'सुन्दर' जानि जनैये॥
नूर में नूर है तेज में तेजहि,
ज्योति में ज्योति मिले मिल जैये।
क्या कहिए कहते न बने कुछ,
जो कहिए कहते हि लजैये॥

होत विनोदजितो अभि अंतर,
सो सुख आप में आप ही पैये।
बाहिर कूं उमस्यों पुनि आवत,
कंठ ते 'सुन्दर' फेर पठैये॥
स्वाद निवेर निवेरो न जात,
सुमानहुं गुड़ गूंगों नित खैये।
क्या कहिए कहते न बनं कछु,
जो कहिए कहते हि लजैये॥

व्योम को व्योम अनन्त अखंडित,
आदि न अंत सुमध्य कहा है।
को परिमान करै परिपूरण,
द्वैत अद्वैत कछू न जहां है॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण कारज भेद नहीं कछु,
आप में आपहिं आप तहां है।
'सुन्दर' दीसत सुन्दर मांहि,
सुसुन्दरता कहि कौन उहां है।

प्रीति की रीति नहीं कछु राखत,
जाति न पांति नहीं कुलगारो।
प्रेमकु नेम कहूं नहिं दीसत,
लाज न कान लग्यो सब खारो॥
लीन भयो हरिसूं अभि अंतर,
आठहुं याम रहे मतवारो।
'सुन्दर' कोउक जान सकै यह,
गोकुल गांव को पैंड़ोहि न्यारो॥

एक अखण्डित जो नभ व्यापक,
बाहर भीतर है इक सारो।
दृष्टि न मुष्टि न रूप न रेख न,
श्वेत न पीत नं रक्त न कारो॥
चक्रित होइ रहै अनुभौ बिनु,
जौ लगि नाहिन ज्ञान उजारो।
'सुन्दर' कोतुक जानि सकै यह,
गोकुल गांव को पैंड़ोहि न्यारो॥

जोई जोई छूटने को करत उपाय अज्ञ,
सोई सोई दृढ़ करि बंधन परतु है।
जोग जज्ञ जप तप तीरथ, व्रतादि और,
झंझाबात लेत जाह हिमाले गरतु है।
कानहूं कराइ पुनि केसहु लूचाई अंग,
विभूति लगाई सिर जटाहूं धरतु हैं।
बिना ज्ञान पाये नहि छूटत हृदय ग्रंथी,
कुन्दर कहत यूं ही भ्रम के मरतु हैं।

द्वैत करि देख जब द्वैतहि दिखाई देत,
एक करि देखे तब उहै एक अंग है।
सूरज कूं देखै के जब सूरज प्रकाश हुयो,
किरण कूं देखै तो किरण नाना रंग है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रम जब भयो तब माया ऐसा नाम धय्यो,
भ्रम को मिटेते एक ब्रह्म सर वंग है।
सुन्दर कहत याकी दृष्टिहू को फैर भयो,
ब्रह्म और माया के तो माथे नहि शृंग है।

यह रचनाएं उनके विचारों की द्योतक और परिचायक है वे मनखवी थे, आत्मरत थे, विद्वान सन्त थे, महात्मा थे, 93 वर्ष जीवित रहकर वे जीवन मुक्त का आनन्द लेते रहे और संसार को अपने अनुभव ज्ञान का रसास्वादन कराते रहे भेदभाव का भाव उनमें नहीं था वे 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति' को ही चरितार्थ करते रहे। यद्यपि उनकी कविता रूखी-सूखी-सी प्रतीत होती है। परन्तु उसमें सार है सत्यता है वे अमरलोक के वासी संसार में अपनी अमरवाणी का प्रचार कर अमर हो गये।

('सन्त सन्देश' फाल्गुन सं० 1992
वर्ष 1-संख्या 2 में प्रकाशित)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

लावनी का इतिहास

स्वामी जी कृत 'लावनी का इतिहास' लावनी विधा की प्रसिद्ध पुस्तक है। इसे स्वामी जी के मित्र श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ने ज्ञान मन्दिर—पटकापुर-कानपुर से सितम्बर 1953 में प्रकाशित किया था। इस पुस्तक के भूमिका भाग को जो मूल पुस्तक में पृ० 15 से 96 तक है, हमने उन्हीं के शब्दों में संक्षिप्त रूप में दिया है। सं०)

'खयाल', 'मरैठी', 'लावनी'—इन तीन नामों से यह गाना प्रसिद्ध है। दूसरे शब्दों में लावनीबाजी, मरैठीबाजी, खयालबाजी कह लीजिए। लावनी गानेवाले लावनीबाज या खयालबाज कहलाते हैं। खयालों के साथ चंग बजाया जाता है। प्रत्येक गानेवाला अपना चंग रखता है और अपने चंग की इज्जत करता है। जब बहुत से चंग एक साथ ताल सुर से बजते हैं, तब बड़ा आनन्द आता है। चंग एक गोल घेरा होता है जो चमड़े से मढ़ा रहता है। यह एक हाथ से बजाया जाता है जिस हाथ में घेरा होता है उसमें छल्ले पहने जाते हैं जो घेरे पर बजते हैं। तो यह बाजा पुराना है किन्तु लावनी से इसका सम्बन्ध खास तौर पर हो गया है। क्योंकि लावनी के प्रवर्तक या मूजिद सन्त महात्मा माने जाते हैं, अतः इसके साथ यह बाजा उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त हुआ, इसलिए कि इस बाजे के साथ किसी दूसरे बाजे की आवश्यकता नहीं होती, यानी बिना किसी की अपेक्षा के अपने आनन्द के लिए साधु-सन्तों ने इसको ही पसन्द किया। किन्तु यह गाना फकीरों, साधु-सन्तों और महात्माओं का होते हुए भी सभी को आनन्दप्रद है, इसलिए जन साधारण में इसका खूब प्रचार हुआ, जो लगभग 200 वर्ष तक कायम रहा।

लावनीबाजों के मुख्यतया दो थोक माने जाते हैं—1. तुर्रा और 2. कलगी। 'तुर्रे' वाले अपने को शिव का उपासक मानते हैं और 'कलगी' वाले शक्ति के उपासक होने का दम भरते हैं। 'तुर्रे' वाले अपने को बड़ा बताते हैं एवं 'कलगी' वाले अपने को बड़ा कहते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने पक्ष के समर्थन में हजारों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनी लिखी हैं जो बड़ी तर्कयुक्त (मुदल्लिल) और दिलचस्प हैं। अपने मत के समर्थन में जो दलीलें पेश की जाती हैं, प्रतिद्वन्दी उनका तर्क द्वारा खण्डन करता है तथा अपने पक्ष का मण्डन। कहना न होगा कि इस खण्डन-मण्डन में ही लावनी का महत्त्व निहित है और लावनी साहित्य का भण्डार भरा गया है।

'तुर्रा सम्प्रदाय' के प्रवर्तक महात्मा तुकनगिरिजी और 'कलगी' के प्रवर्तक सन्त शाहअली जी माने जाते हैं। ये दोनों महात्मा परस्पर मित्र और सूफी खयाल के थे, जिनको हम वेदान्तवादी कह सकते हैं। सुनते हैं कि इन उभय महात्माओं ने इस गान कला को महाराष्ट्र प्रान्त से हासिल किया था। इसीलिए इस गान कला का नाम मरैठी भी है। एक बार यह उभय महात्मा भ्रमण करते हुए किसी मराठा दरबार में गए और वहाँ जाकर इन्होंने अपनी इस गान कला का परिचय दिया, जिसको दरबार ने बहुत पसन्द किया। उपहारस्वरूप महात्मा 'तुकनगिरिजी' को एक वशकीमती 'तुर्रा' और महात्मा शाहअली को बहुमूल्य 'कलगी' बड़े सम्मानपूर्वक दरबार की तरफ से प्रदान किए गए जिनको दोनों ने अपने-अपने चंगों पर चढ़ाकर कृतज्ञता प्रकट की। बस, तभी से यह तुर्रे वाले 'तुकनगिरि जी' और 'शाह अली' 'कलगी' वाले मशहूर हुए। तुकनगिरिजी दस नामी सन्यासी थे और सन्त 'शाह अली' मुसलमान फकीर थे। इन्हीं दोनों महापुरुषों को इस गान कला को ईजाद करने का एवं उत्तर भारत में लाने का श्रेय प्राप्त है। इनका समय सन् 1700 के लगभग अनुमान किया जाता है। सम्भवतः उस समय ये नौजवान रहे होंगे। यद्यपि यह उभय महापुरुष उत्तर भारत के निवासी थे किन्तु मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर में बहुधा रहा करते थे। अब से सौ-सवा सौ वर्ष पूर्व एक बार 'लावनी' की लहर भारत के कोने-कोने में दौड़ गई थी। 'हिन्दू-मुस्लिम' दोनों के द्वारा इस साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ इसलिए मुसलमानों ने भी इसको अपनाया और उन्होंने इस 'लावनी' को 'खयाल' नाम दिया।

यों तो 'लावनी' छन्द शास्त्रानुसार एक छन्द का नाम है जो बाईस (22) मात्रा का होता है जिसे राधा छन्द भी कहते हैं किन्तु जिस 'लावनी' के सम्बन्ध में ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं; उस लावनी में शतशः छन्दों का समावेश पाया जाता है। हिन्दी के छन्द तो हैं हां, साथ ही उर्दू, फारसी के छन्दों की भी बहुतायत है। यदि हम विचारपूर्वक देखें तो मालूम होगा कि, कुछ पुरानी रंगत या बहर ऐसी इसमें है जिनको हम महाराष्ट्र से आई हुई कह सकते हैं। कुछ रंगत वजन ऐसे हैं जो हिन्दी से आए हैं लेकिन कुछ वजन ऐसे भी हैं जो केवल 'संगीत' से सम्बन्ध रखते हैं। आखिरश हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि 'लावनी' के अन्दर सभी वजन और छंद एवं रागों का समावेश है। उनमें कुछ रंगतें तो ऐसी हैं जिनके नाम हैं और कुछ ऐसी हैं जो बची हुई या नयी रंगत के नाम से पुकारी जाती हैं, किन्तु 'लावनी' वालों ने भी अपना एक खास तरीका या सिद्धान्त अथवा लक्षण या माप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोख-हिसाब रखा है, जिसके द्वारा उन्होंने हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि के सभी वजनों को एवं राग-रागिनियों को अपनाया है और उनमें अपनेपन की छाप लगा दी है वह यह है—

खयाल की परिभाषा

खयाल या लावनी वालों ने एक खयाल के चार चौक माने हैं। खयाल के प्रथम और द्वितीय मिसरे या कड़ी को 'टेक' कहते हैं। गजल वाले जिसको मतला कहते हैं खयाल की परिभाषा में इसको 'टेक' या 'धुर्पदे' कहेंगे। इसके बाद के चार मिसरों को 'चौक' कहते हैं और पांचवा मिसरा 'उड़ान' 'मिलान' कहलाता है जिसके साथ 'टेक' का दूसरा या 'कड़ी' मिला दिया जाता है। ऐसे ही चार चौक जिसमें हों उसे 'लावनी' या 'खयाल' कहते हैं। यानी एक लावनी में कम-से-कम चार चौक माने गए हैं। रहा 'चौक' चार कड़ी का भी होता है और कम ज्यादा का भी होता है। कुछ रंगतें ऐसी भी हैं जिनमें 3 कड़ी, 5 कड़ी भी रह सकती हैं 6 मिसरे, 8 मिसरे भी हो सकते हैं, किन्तु चार चौक होना हर हालत में अनिवार्य है। यों तो माननीय महात्मा 'अनन्त गिरिजी' ने 360 रंगतों के खयाल लिखे हैं तथा अन्य उस्तादों ने भी बहुतेरी, रंगतें लिखी हैं; परन्तु हम यहां मुख्य रंगतों के उदाहरण पेश करते हैं।

सर्वप्रथम 'लावनी' छन्द जो बाईस मात्रा का है—

टेक — आजा आजा ओ प्रबल शक्ति मां आजा ॥
अपने भक्तों को भक्ति भाव से भाजा।

—मैथिलीशरण गुप्त

खयाल वाले इसको छोटी रंगत कहते हैं—

टेक — मम मन वांछित फलदाता शमन क्लेशम्।
मम मंगल कुरु-कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम्।

चौक — मम मति पावन कुरु पावन परम् परेणम्।
मम मलिन चित्त कुरु शुद्ध अमल अद्देशम्।
मम मिथ्या मद निर्वारण कुरु विश्वेशम्।
मम मोहकप तम हरु शिव अज अखिलेशम्।

उड़ान — मम महादेव पदबन्दत राम रमेशम्।
मम मंगल कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम्।

चौक — मम मात तात सुत भ्रात मित्र सर्वेशम्।
मम मुदित हृदय तब ध्यान कृतं शुभवेशम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मम माया तरणिम् त्रिभुवन पति अवधेशम् ।
मम मूकं वाचालं कुरु प्रभु अवशेषम् ।

उड़ान
मम मूल तत्त्व निर्वाण अगम अग्रेशम् ।
मम मंगल कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम् ।

चौक
मम छन्द बुद्धि कुरु श्रेष्ठ अजर अमरेशम् ।
मम महा कष्ट दूरी करणं भूतेशम् ।
मम मंजुल कृत उर भावं विभु भुवनेशम् ।
मम बन्द मुचित कुरु मदनान्तमक अनिवेशम् ।

उड़ान
मम मधुर मृदुल रसना कुरु-कुरु गिरजेशम् ।
मम मंगल कुरु-कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम् ।

चौक
मम मोद महत पद पंकज बद अवधेशम् ।
मम मानस पूजा स्वीकृत हर मुख्येशम् ।
मम मर्यादा पति लम्बोदर विघ्नेशम् ।
मम मगन चित गुरुवर 'अनन्त' मुनिवेषम् ।

उड़ान
मम मुक्त कृतं 'नारायण' सत् उपदेशम् ।
मम मंगल कुरु-कुरु त्र्यंबक त्रिगुण महेशम् ।

—स्वामी नारायणानन्द

ये उदाहरण छोटी रंगत या लावनी के हैं लेकिन लावनी वाले मात्राओं का शुमार करने नहीं बैठते, वे तो अपनी ध्वनि में लिखते हैं ।

उर्दू का एक तरीका है जिसमें स्वरों को गिराकर पढ़ना जायज है । चुनांचे लावनी वाले गिरा के पढ़ते हैं जिससे मात्राओं का हिसाब भी ठीक हो जाता है जैसे—

अय गुलों जहां में दो दिन की बस्ती है ।
किस हस्ती पर हंसते हो खिजा हंसती है ।।

इसके दूसरे मिसरे में यदि मात्राएं देखी जायं तो 23 होंगी, किन्तु उर्दू कायदे से हो, के स्वर को गिरा के पढ़िए और उसकी एक मात्रा मानिए तो ठीक बाईस मात्राएं होंगी । रंगतों का विस्तृत वर्णन अगले पृष्ठों में देखिए ।

खयालबाजों के अखाड़े

अखाड़ा एक संगठन विशेष का नाम है । लावनीवाजों ने उसी संगठन का नाम अखाड़ा रखा । प्रत्येक अखाड़े में एक उस्ताद, एक खलीफा अवश्य होते थे जिनको

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शागिर्द लोग मिठाई, पगड़ी आदि भेंट स्वरूप देकर सम्मानित करते थे।

अखाड़े के 'खलीफा' का चुनाव अखाड़े वाले स्वयं करते थे—लेकिन उसके लिए एक खास जलसा दंगल किया जाता था जिसमें अन्य सभी अखाड़ों के प्रतिष्ठित पुरुषों का उपस्थित होना जरूरी होता था। जिसको खलीफा चुना जाता था उसके सर पर एक पगड़ी यानी साफा बांधा जाता था। प्रायः उसके बांधते वक्त अन्य अखाड़ों के प्रतिष्ठित पुरुष भी साफे में हाथ लगाते थे और खलीफा को आशीर्वाद देते थे। यही खलीफा को भेंट देना या सम्मानित करना था।

अनुशासन

अनुशासन अखाड़े की जान समझा जाता था और इसका काफी ध्यान रखा जाता था। यदि किसी शागिर्द ने जरा भी अनुशासन की उपेक्षा की या भंग किया, तो अखाड़े के उस्ताद अथवा खलीफा उसको उचित दण्ड देते थे।

दण्ड

खयालबाजों की परम्परानुसार दण्ड दो रूप में दिया जाता था। साधारण दण्ड मिठाई के रूप में अथवा पगड़ी के रूप में लिया जाता रहा है अथवा विशेष अपराध पर गाना बन्द कर दिया जाता था। जिस शागिर्द का गाना बन्द किया जाता था वह किसी भी अखाड़े या दंगल में नहीं गा सकता था जब तक कि वह उसका दूसरे रूप में दण्ड देकर क्षमाप्रार्थी न हो। अखाड़े का संगठन परस्पर प्रेम और मोहब्बत के बल पर होता था। उस्ताद शागिर्दों पर प्रेम और शागिर्द उस्तादों पर अत्यन्त श्रद्धा रखते थे।

शागिर्द

किसी नवीन शागिर्द बनाने के लिए भी खास तौर पर दंगल बुलाया जाता था। शागिर्द मिठाई, पगड़ी, दक्षिणा आदि से उस्ताद को सम्मानित करता था। मिठाई उस्ताद लोग अन्य अखाड़े वालों को भी उचित भाग में देते थे। जैसे उस्ताद के पांच हिस्से, खलीफा का डबल हिस्सा आदि।

चंग पूजा

शागिर्द से सर्वप्रथम चंग का पूजन कराया जाता और निशान तुर्रा या कलगी चढ़ाया जाता था। क्रमशः दूध-कपूर या लोहबान आदि सुलगाये जाते, पुष्प मालाएं आदि मंगाई जातीं जो शागिर्द द्वारा उस्ताद को पहनाकर सम्मानित किया जाता तत्पश्चात् उस्ताद शागिर्द का बड़े प्रेमपूर्वक मुंह भरते हैं यानी मिठाई खिलाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंगल

जिस जगह खयाल गाने का जमाव हो उसको दंगल कहते हैं क्योंकि जिस भाषा में अखाड़े हैं वहां अखाड़े के साथ दंगल भी जरूरी हो जाता है। इसके लिए खासतौर पर सूचना दी जाती है कि आज फलां स्थान या अमुक के स्थान पर दंगल होगा जहां नियत समय पर या आगे-पीछे सभी अखाड़ों के गाने वाले जमा हो जाते हैं।

बड़े दंगल

कभी-कभी बड़े दंगल भी हुआ करते थे, जिनमें दूर-दूर के गाने वाले जमा होते थे। ऐसे दंगल दो हालतों में हुआ करते थे। एक तो यह कि किसी खास अवसर पर या उत्सव पर जैसे अब भी आगरे में वसन्तोत्सव मनाया जाता है जो कचहरी घाट जमुना किनारे वसन्त के दूसरे रोज होता है जिसमें मथुरा, अलीगढ़, हाथरस, फीरोजाबाद, शिकोहाबाद के अतिरिक्त मेरठ, देहली आदि के गाने वाले भी आते हैं।

जब कभी किसी से बढ़ा हुआ गाना होता तब वह अन्य शहरों से लोगों को बुलाते थे। यह भी रिवाज था कि अपने सम्प्रदाय वाले लोगों को कुमक के तौर पर बाहर से बुला लिया जाता था।

कभी-कभी गाने वाले स्वयं भी भ्रमणार्थ निकलते थे। जहां पहुंचते थे वहीं दंगल होते थे : कानपुर के गौरीशंकर जी हाफिज, चुन्नी गुरु आदि प्रायः देहली, कलकत्ता, बीकानेर आदि भ्रमणार्थ जाया करते थे।

निमंत्रण

दंगल की सूचना के रूप में इलायची बांटने का तरीका रखा गया था। एक आदमी थोड़ी छोटी इलायची लेकर उनको प्रत्येक अखाड़े और प्रत्येक गाने वालों में ले जाकर सामने कर देता था और स्थान का पता दे देता था। कभी-कभी कोई अखाड़ा या गाने वाला नहीं आना चाहता तो इलायची नहीं लेता था वर्ना इलायची ले ली तो स्वीकृति समझी जाती थी।

अखाड़ों का परस्पर व्यवहार

प्रत्येक अखाड़े के शागिर्दों का कर्त्तव्य होता था कि जितनी इज्जत अपने उस्ताद या खलीफा की करते हैं उतनी ही इज्जत अन्य उस्तादों और खलीफाओं की करें अन्यथा वे अशिष्ट समझे जाते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशान चढ़ाना

तुर्रे का भगवा रंग और कलगी का हरे रंग का निशान होता है। निशान वह चीज है जिसको झंडा कह सकते हैं अथवा पहचान। यह निशान प्रायः चंगों पर चढ़ाये जाते थे अथवा कभी किसी उत्सव विशेष या दंगल फते करने पर निशान चढ़ाने का रिवाज था।

खयालों के सम्प्रदाय

मुख्य सम्प्रदाय तो दो हैं जो प्राचीन और प्रारम्भिक माने जाते हैं (1) तुर्रा और (2) कलगी। पश्चात् अन्य सम्प्रदाय भी खड़े हो गये जैसे (1) सेहरा (2) डुंडा (3) तोड़ा (4) मुकुट (5) छत्र (6) अनगढ़ (7) निर्गुण आदि।

दंगलों की बैठक

प्रायः दंगलों में अपने-अपने थोक के गाने वाले पृथक्-पृथक् स्थानों पर बैठते हैं। जैसे एक तरफ तुर्रे वाले सब बैठेंगे तो दूसरी तरफ सब कलगी वाले बैठेंगे। आमने-सामने बैठक में उन लोगों का ध्यान रखा जाता था जो सीनियर या प्रतिष्ठित होते थे उस्ताद या खलीफाओं का आसन अग्र भाग में होता था—पश्चात् शागिर्दों का नम्बर आता था।

चंग

इस बाजे को खयाल गाने वाले बजाते हैं। यह एक गोल घेरा लकड़ी या पीतल का होता है जो चमड़े से मढा जाता है। यह एक हाथ से बजाया जाता है। जिस हाथ में चंग होता है उसमें दो छल्ले उंगलियों में पहने जाते हैं जो घेरे के ऊपर बजाये जाते हैं सब लोग एक साथ चंग बजाना शुरू करते हैं इसकी ताल भी अपना अलहदा रंग रखती है।

गाने का प्रारम्भ

सर्वप्रथम किसी प्रतिष्ठित गाने वाले को कहा जाता है। वह किसी दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति से कहता है; यानी शिष्टाचार के साथ गाना किसी योग्य व्यक्ति द्वारा प्रारम्भ होता है।

मंगलाचरण

खयाल गाने वाले इसको सखी दौड़ कहते हैं। इस शब्द पर यदि विचार किया जाय तो इसका महत्त्व समझ में आता है। 'सखी-दौड़' को कुछ लोग 'दौड़ साखी' भी कहते हैं लेकिन इसका शुद्ध रूप दौरे—साकी मालूम होता है। दौरे साकी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर प्रायः किसी देवता विशेष की स्तुति, प्रार्थना और कुछ अपने अखाड़े का परिचय साथ ही गर्वोक्ति के साथ मुखालिफ पर छींटेकशी होती है। इससे साबित होता है कि 'दौड़-साखी' भी कुछ खास मानी में कही जा सकती है यानी दौड़ साखी का अर्थ अपनी साक्षी देना हो सकता है। यहां हम उदाहरण स्वरूप 'सखी-दौड़' लिखते हैं—

सखी-दौड़ गणेश वन्दना

सखी

लाडले गिरजा के दीजे आन संकट टाल जी,
लाज रख लीजे गजानन गन्न शंकर लाल जी।
लाल चन्दन का तिलक यक दन्त जड़ रहे लाल जी,
लाल रंग है अंग जिनका नाचते दे ताल जी।

इतना हिस्सा तो 'सखी' कहा जाता है।

लाल गिरजा के करे निहाल, लगा है चन्दन शीश रसाल
लचकती चले गभ जी चाल, लिया हीरन का हार गल डाल
लिये कर खाढ़ा एकी ढाल, लालसा सिद्ध करे तत्काल
लाडले गिरजा के लाल
लाज रख जड़ दीजे ताल जी,

यह सखी दौड़ भी प्रायः अनेक रंगतों की होती हैं जिसको गजल की रंगत कह सकते हैं।

नोट—यह रचना 'ल' से शुरू है और अन्त में भी 'ल' आता है अतः इसे लाम का दुअंग कहेंगे। साथ ही यह अधर भी है। इसके गाने में होंठ नहीं लगता। अब जरा गर्वोक्ति और छींटेकशी का आनन्द लीजिए।

सखी

दर्द हो दुश्मन के जब जंगल में मेरा छंद हो।
दुम दबा भागे अदू मुंह बन्द हो, मुंह बन्द हो।
दर्ज सीने हो कड़ी हैरान मति का मन्द हो;
दम में ही नथ जाय नादां दूर सब फरफन्द हो।
दाग दिल पर हो कड़ा वादी के, तब आनन्द हो;
दाद दिल की मिले हो बाहार मिसरा कन्द हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौड़

दिया दर्शन आके ब्रजचन्द, दानपुन होने लगा दुचन्द।
द्रव्य को लुटा रहे हैं नन्द, देखि जिनका यकबाल बुलन्द।
ढाल की गाओं कोई सनन्द, दुरगे तुझे गुरु की सौगन्द।
दिल की हो पूरी तेरी मुराद,
दगा तज कर परभू को याद।

—आदि

गर्वोक्तियां

खयाल गाना शुरू होने से पहले सखी दौड़ कही जाती है--जिसके उदाहरण हम पूर्व दे आये उन्हीं में प्राय: दौड़ में गर्वोक्ति कहते हैं जैसे—

अखाड़ा है रंग लालों का,'
बजे चंग तुर्रे वालों का।

+

कलगी गाना शाहाना है,
तुर्रा फक्कड़ों का बाना है

—आदि

कुछ खयाल भी ऐसे होते हैं, जिनमें गर्वोक्ति होती है, नमूना देखिए—

आगे आये बढ़के तुममें से गाने वाला कौन-सा है,
बस बारीकी मेरे सखुन की पाने वाला कौन-सा है।

—'नत्थासिंह'

छाप

खयाल के अन्तिम चौक को छाप कहते हैं; जिसमें लेखक गुरु परम्परा का परिचय देते हुए गर्वोक्ति के साथ नाम लिखता है। इसमें कभी-कभी मुखालिफीन पर छींटाकशी भी की जाती है नमूना देखिए—

देवी शुकल की सानी वशर पैदा न चर्ख चम्बर के तले हो;
शायर गो वरतर हो एक से एक पर उस शायर के तले हो।

+ + +

हीरालाल रामसिंह का हासिद दबा गम के पत्थर के तले हो। कलगी वाले कहते हैं—-

'कानपुर के कलगी वालों का सदा दिल शेर है।'

—आदि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाप में नाम अधिक क्यों ?

खयाल लिखने वाले प्रथम अपने मुर्शदे आला या अपने सम्प्रदाय के सर्वमान्य पुरुष का नाम लिखेंगे और अदब के साथ लिखेंगे पश्चात् अपने गुरु उस्ताद का नाम लिखेंगे। फिर अपने अखाड़े के अपने से सीनियर लोगों के या गुरु-भाईयों (पीरभाईयों) के नाम लिखेंगे; तब कहीं अपना नाम लायेंगे। इसमें शागिर्दों के नाम भी लाना जरूरी होता है अन्तिम चौक के प्रायः नाम ही रहते हैं क्या तुर्रे वाले और क्या कलगी वाले इसी प्रकार लिखते रहे हैं और लिखते हैं।

अगर कोई शायर सिर्फ अपने नाम से खयाल लिखकर गावे तो लोग उसको निगुरा कहते हैं अतः प्रत्येक शायर इस परम्परा को निभाने को बाध्य था।

इस प्रथा से लाभ तो यह है कि छाप सुनते ही गाने वाले के सम्प्रदाय एवं अखाड़े का पता या परिचय मिल जाता है किन्तु इससे हानि भी हुई है वह यह कि परवर्ती या सर्वसाधारण को यह मालूम करना मुश्किल हो जाता है कि इसका वास्तविक लेखक कौन है ? जैसे इस छाप में—

'रिसालगिरि' उस्ताद 'ब्यालचन्द' की ये राहें बतलाई,
'बादल' 'अब्दुल गफूर' ने मतलब की बात उनसे पाई।
'कादिरबख्श' का वचन सवाया, 'एजब खां' ने यों फरमाया।
'मोहम्मद हादी' ने बतलाया, 'राम गुलाम' 'मोहम्मद' गाया।
कहे 'तजम्मुल' हाथ उठा।

शायर

अखाड़े के अन्दर सभी शायर नहीं होते थे, कुछ शायर थे तो कुछ गाने वाले भी होते थे। यह भी जरूरी नहीं था कि जो शायर हों वे ही उस्ताद माने जाएं। ऐसे भी बहुत उस्ताद हुए हैं जो खुद शायर नहीं थे, लेकिन उनके शिष्य शायर थे। हां, अखाड़े के अन्दर कुछ शायर जरूर रहते थे, और वह छाप में इसी प्रकार नाम लिखते थे, जिसमें अखाड़े के सभी लोगों को प्रोत्साहन मिले और उनका नाम रौशन हो। मिसाल के लिए कानपुर के प्रसिद्ध लावनीबाज पं० गौरीशंकर जी कोई बड़े शायर नहीं थे किन्तु उनके शिष्य 'आनन्दी', 'मणिलाल', 'काशीदीन' आदि अच्छे शायर हो गए हैं।

कुछ लोग ऐसे भी थे जो शायर तो नहीं थे किन्तु काट-छांट निपुणता से कर सकते थे, यानी खयाल को देखकर खयाल तैयार कर लेते थे। उनको जोतू कहते थे। जैसे 'तेगासिंह' थे; यह स्वयं तो शायर नहीं थे किन्तु उनका हाफ्जा ऐसा दुरुस्त था कि खयाल को सुनकर फौरन उलट देते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खयालों में फटकेबाजी

खयालों में फटके का खास स्थान रहा है फटका उसको कहते हैं, जिसमें विपक्षी या मुखालिफीन पर फवती या व्यंग्य कसा जाता है। हिन्दी कवियों ने इसी को भड़ौआ नाम दिया है।

एक साहब बुलबुलों का बड़ा शौक रखते थे। हजारों बुलबुलें उनके यहां पलती थीं। शायद उनका नाम बंशीबाबू था। किसी ने उन पर फवती कसते हुए एक खयाल गाया—

आखिर एक दिन पड़े सख्त सैयाद के तू पाले बुलबुल,
और चार दिन हवा गुलजार की तू खाले बुलबुल।

इसको सुनकर बाबूजी बहुत प्रभावित हुए और अपनी पली हुई बुलबुलें उड़ा दीं तथा बुलबुलों का शौक हमेशा के लिए छोड़ दिया।

बाबा बनारसीदास, जिनका नाम काशीगिरि भी था, बड़े नामी-गरामी गाने वाले हो गए हैं। 'मियां बादल' जो तुर्रे वालो की परम्परा में थे, इनका अखाड़ा भी मशहूर था; बाबा बनारसी एक बार उनके यहां गाने को आये, दंगल जमा हुआ, गाने वालों ने गाना प्रारम्भ किया, समा बंधने लगा; इतने में मियां बादल ने बाबा बनारसी को लक्ष्य करके कहा—

यह किधर से आई घटा किधर से पानी,
दो जबाब इसका आप जो हो गुरु ज्ञानी।

इसका जवाब बाबा ने ऐसा दिया कि तमाम महफिल खुश हो गई, कहकहा मच गया; वाह बाबा, वाह बाबा के नारे चारों तरफ से बुलन्द होने लगे। मियां बादल जवाब सुनकर दंग ही नहीं हो गए, मात खा गए। बाबाजी के जवाब की टेक यह थी—

पढ़-पढ़ के फाजिल हुए राह ना जानी;
बादल की··············बरसता पानी।

सुनते हैं उसी वक्त किसी ने बादल पर भी यही व्यंग्य कसा था—

निशान बादल का मिट गया है फलक पे तारे निकल रहे हैं। बस, यही व्यंग्य फटका कहलाता है, जिसमें हास्य रस की प्रधानता रहती है।

जाहिल भी लगे करने शायरी भूल अपनी बुनियाद गए;
मसल है सच मर गए चूतिया छोड़ अपनी औलाद गए।

—'नत्थासिंह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाने की तेरे हर जगह से बन्दी कर दूं,
झूमर न दिखा नहिं झूमझूम के धर दूं।

—'पन्नालाल'

गाने के नियम

जिस समय गाना शुरू होता है तो शागिर्द लोग उस्तादों से इजाजत लेते हैं, और उस्ताद लोग या बड़े लोग आशीर्वाद के साथ उनको इजाजत देते हैं। एक खयाल किसी ने शुरू किया तो जब वह अपना प्रथम चौक पूरा कर लेता है, तो दूसरे गाने वाले उस पर उसी रंगत की या उसी रदीफ की टेक कहते हैं। कभी-कभी तो खयाल गाने वाले को टेकों के मारे परेशानी में पड़ जाना पड़ता है यानी उसको चौक कहने का मौका नहीं मिलने पाता और टेकें लड़ती रहती हैं। लेकिन टेकों के लड़ने में बड़ा मजा आता है। अगर खयाल कहने वाला शातिर है तो वह सबकी टेकों का जवाब देता है और अपना चौक भी गाता है। दूसरे खयाल से खयाल भी मिलाकर चौक से चौक भिड़ाकर भी गाया जाता है।

जवाबी गाने के उदाहरण

टेक
हर हर करता जाय रावना चला है जोगी बनकर के,
सीता हर के, चोर सठ बनाये हैं लक्षन खरके।

—चुन्नी गुरु

जवाब
बहुत हुए हैरान किए सौ सौ चक्कर तेरे दर के,
मगर निकर के, न तुमने दरस दिये अखियां भर के।

—पीरामल

रंगत और रदीफ काफिया तो इसमें मिल गया मगर सनअत नहीं मिली। तब उसने दूसरा खयाल कहा—

रावत आज्ञा पाय निशाचर बना कपट मृग छल करके;
राम सुमर के, मरा मारीच नीच लागत सर के।

—चुन्नी गुरु

करुनानिधि भक्तन हितकारी प्रकटे मानुष तन धर के;
केश पकर के, कंस को हना बीच में पल भर के।

—पं० प्रभूदयाल

नमूने के तौर पर जो टेकें हमने लिखी हैं, इनमें—

1. उलटा-सीधा ककहरा बंधा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. सादा है और मजमून अच्छा है।
3. 'र' का दुअंग है यानी शुरू में 'र' और आखिर में 'र' है
4. दोनों तरफ 'क' आता है यह सनअत कहलाती है,

पिलाये गैरों को जाम सहवाये नाव आधी गुलाब आया,
हमेशा देता है साकिया क्यों तुराब आधी सुराब आधा।
—महेश चन्द

मेरी हालते गैर बयानी का अभी पूरा फिसाना कहा न गया;
लगा कातिब रोने सुना न गया एक हर्फ़तलक तो लिखा न गया।
—मा० प्यारेलाल

यहां हमने सिर्फ काफिया रदीफ मिलाकर जो जवाबी खयाल कहे जाते हैं, सिर्फ उनके ही नमूने पेश किए हैं, किन्तु जवाबी के बहुत भेद हैं। जिनका जिक्र संक्षेप में किया जाता है—

सुनेगा जो भगवे का भेद तो बहुत दिनों तक रोवेगा,
कहा मान कलगी वाले क्यों नाहक हुर्मत खोवेगा।

लड़ीबन्द गाना या लड़ीलड़ाना—

एक ही जमीन या रदीफ काफिए पर अनेक खयाल गाये जाएं, उसी को लड़ी लड़ाना कहते हैं। प्रायः दंगलों में इसी प्रकार गाना होता है। जिसके पास ज्यादा खयाल जिस लड़ी के होते हैं प्रायः गाने वाले अपनी उसी लड़ी को गाते हैं मुखालिफ पार्टी वाले जवाब देते हैं मिसाल के तौर पर देखिए—

सना में जुल्फे मुअम्बरी के जवां कलम है कलम है बिन सर,
खिजल है सबुल औ खुश्क पेचां ख्वार है अफई औ सुस्त अज दर।
सफाई दन्दा में उस परी के सदफ लुटाती है सिल्क गौहर,
सिफत में सुरखी लबों पे, हैरत से खूं उगलता है लाल अहमर।

संक्षेप में लड़ीबन्द का उदाहरण यह है, इसी तरह के कितने ही खयाल हो सकते हैं।

खयालों की रंगतें (बहरें)

'लावनी' या खयालों में शतशः छन्दों का समावेश पाया जाता है, जो हिन्दी, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं से आये हैं, यहां हम 'लावनी' की उन मुख्य रंगतों का जिक्र करेंगे जो इसकी अपनी हैं तथा महाराष्ट्र देश से आई हैं—

रंगत छोटी—

यह हिन्दी का 'लावनी' छन्द है जो 22 मात्रा का होता है, जिसे राधा छन्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कहते हैं। इसे वशीकरण भी कहते हैं—

'क्या श्याम गौर गुलबदन मदन का जोड़ा,
जिन शिव शंकर का कठिन शरासन तोड़ा।

—गणेशप्रसाद

खड़ी रंगत—

'ताटंक' छन्द है जो तीस मात्रा का होता है। 31 मात्रा का छन्द भी इसके अन्तर्गत है जिसे आल्हा छन्द कहते हैं।

रंगत खड़ी—

एक सखी राधा से कहे चलु तोहि बुलावत नन्दकिशोर,
सब आये फरियाद श्याम पर तू जिनको धनलाई चोर।

—पं० प्रभु दयाल

अहो लाल दृग लाल लाल नहिं तिलक है भाल जगे कहं रात,
खड़े उनीदे नींद के माते बिखरे बाल जगे कहं रात।

—पं० गोपीनाथ

रंगत लगंड़ी—

इसमें पहली कड़ी में 30 मात्रा 'ताटंक' दूसरी लाइन में 80 मात्रा पर विराम होता है, 27 मात्रा होती हैं।

मेरी आह का तीर तोड़ गर्दू को गया ला मकां तलक,
तीर तो क्या है, फरिश्ते भी नहीं पहुंचे वहां तलक।

—बाबा बनारसी

रंगत महाराज की—

इसका कई छन्दों से संगठन हुआ है—'नागर तन नटखट ले गया मन झट-पट से, म० सुना करके वंशी की तान,

गश्ता अम बे जान गर्चे भी दारम दरतन जान।

—उ० नत्थासिंह

नोट—म० चिह्न की जगह 'महाराज' कहना चाहिए।

इसी प्रकार इसी छन्द में 'महाराज' की जगह 'मेरी जान' भी होती। वह रंगत 'मेरी जान' की कहलाती है।

रंगत मेरी जानकी—

इस एकी खयाल में कई रंगतें आ जाती हैं। उदाहरण देखिए—

शोभा सरसावन कलिमय भय दुख हरनी, मे० पतित पावन,
सब सुख दातार, वरणूं प्रथम चरित्र भागवत लीला सह विस्तार।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगत डिढखमी—

याद खुदाये पाक रोजो शव साजद दानिशमन्द,
कदाचित नहि व्यापै दुख द्वन्द्व जी।

सन्त सपेरे वने धरे मुख पर विद्या के बीन,
तुरत मन भुजंग वश [कर लीन जी।

रंगत बची—

अगड़वम भोला शिव आप जती,
चढ़े अक्षत पुष्प बेल पती।

—अनन्तगिरि जी

उठाकर बुरका रुख से अय यार,
दिखला दे दीदार।

—उ० नत्थासिंह

रंगत तिकड़िया—

दिल है फिगार आंख अश्कवार नहिं है करार मुझको यक पल,
दीदार यार दे एक बार हूं इन्तजार से मैं वेकल।

—गौहर

रंगत संगीत—

अलिफ आई सखी बरसात नहीं वर साथ जतन क्या कीजै,
वे बिन पिया मेरा वाला जोवना छीजै।

—वख्तावर सिंह

रंगत संगीत लंगड़ी—

कर दर्शन की आस छोड़ा शिवजी ने कैलास,
पहुंचे जसुधा जी के पास धर रूप जती,
हंस-हंस पुकारें, द्वार शिव खड़े भीख दो पुत्रवती।

—पं० गोपीनाथ

रंगत लंगड़ी संगीत टुकड़िया—

निरख निहाल नयी अधर संगीत चाल,
नन्द जी के लाल लगे निरत करन।
नाचत अहीर री अधीर सखी कालिन्दी के तीर लगे आनंद झरन।

—बाबा रंगनाथ जी

नोट—इस खयाल के दोनों मिसरों में संगीत का रंग है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगत खड़ी संगीत-चौताला—

नीके सभी साज सभी अजूबा अन्दाज सज रंग की समाज सब ब्रजबाला।
बरसाने में धूम लिये संग में हुजूम होली खेलें झूमझूम सखि नंदलाला।

—स्वा० नारायणानन्द

रंगत राग देश—

यह एक प्रकार की रागनी है जो 'लावनी' में बंधी है।

टेक

कोई जाय कहो बादर से, घर आवे कन्त तब बरसे।

चौक

उमड़ घुमड़ कर कारे बदरवा, बरसन लागे मोरे मन्दरवा,
मेहा झड़ी लगाई, बिन पिया मोहि न सुहाई,
कूकत मोर शोर करें दादुर, बोलत पपीहा जिया भयातुर,
पिया निकस गये घर से—घर आवे कंत तब बरसे।

—उ० नत्थासिंह

रंगत बेनजीर—

यह मोतीदाम छन्द कहा जा सकता है।

बजाकर प्रेम भरी बसरी, श्याम मोहि कर गया बेबस री।

—रामसिंह

रंगत नवेली—

काहे तू अकेली फिरे, अली गोकुल गलीन अलबेली।

रंगत शीतल—

लहराय जटन में गंग, गौरि संग अर्धंग, अंग लिपटे
भुजंग, शिव पिये भंग।

—चुन्नी गुरु

रंगत विरहनी—

मत गुलाल कुमकुम रोली, गेरो मुझ पर बोली,
हमें नहिं भावे, बिन पी वसन्त होली।

— उ० प्रेमसुख

रंगत छँकड़िया

टेक—

चढ़ देखा सखी अटा है, इन्दर दल साज डटा है।
चपला कर रही पता है।
रिमझिम वरसे पानी, घर में न आया दिलजानी,
घिर आई श्याम घटा है।

—पं० प्रभुदयाल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगत नैरंग—

दवा से मेरा दर्द सर जाता नहीं, लगाना सन्दल आता नहीं।

—लालालाल

रंगत हक्कानी—

दुई में जुदा नजर आवे, दुई को कर दो दूर तो खुद में खुदा नजर आवे,

लावनी में सैकड़ों रंगत हैं जिनके उदाहरण दिये जाएं तो एक अलहदा पोथी तैयार हो सकती है। जितनी रंगतें हमने दिखलाई हैं उन सबके खयाल मौजूद हैं। विस्तार भय से अधिक न लिखकर सिर्फ प्रसिद्ध दो-चार अन्य रंगतों के उदाहरण देकर ही संतोष करेंगे—

रंगत शिकस्ता—यह उर्दू बहर है

लगा है नावुक किसी सनम की निगह का अपने जिगर के ऊपर,
फड़कते हैं वक्ते मर्ग बिस्मिल भी जिसकी खूबी नजर के ऊपर।

—पं० गोपीनाथ

इसकी तकतीअ फऊल फेलन फऊल फेलन फऊल फेलन फऊल फेलन।

रंगत तवील—

यह भी उर्दू से आई है मफऊल फऊलन फायलातुन।

करुणा निधि टेरत हौं तुमको मेरी टेर सुनो कैह देर करी,
भवसागर बीच भंवर में पड़ी मेरी नैया को पार लगा दे हरी।

—पं० रूपकिशोर

रंगत तवील—
मुखफ्फा—

यह हिन्दी के सवैया का वज्न है।

दिल गिरफ्तार की तरह हुआ मालूम नहीं क्यों करके छुटे,
जीते जी छुटे या मर के छुटे या दिन हिसाब मशहर के छुटे।

रंगत नवेली—

कण्ठ काग बुद्धी उलूक जिठा मेढ़क सानी,
सब तुमको जैवा है चाहे जैसी बोलो बानी।

—भौरोंसिह

रंगत सोहनी—

ओ महरु चल सैरे चमन को, खिली है क्या पुरनूर चांदनी,
आज खस्ता खातिरों पे रखती है मरहम काफूर चांदनी।

—नत्थासिंह

कहां तक लिखें, आप समझ लें हमने सिर्फ मुख्य,
रंगतें लिखना ही पर्याप्त समझा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लावनी' में सनअत—

'सनअत' के लफ्जी माने कारीगरी समझना चाहिए किन्तु यहां सनअत के मानी यदि हम अलङ्कार मान लें तो अनुचित नहीं है। 'लावनी' वालों ने इसको बहुत महत्त्व दिया है। 'सनअतें' भी बहुत प्रकार की हैं, वे कुछ हिन्दी से आई हैं, कुछ उर्दू से। यहां हम कुछ मुख्य सनअतों का जिक्र करेंगे। सर्वप्रथम है, 'तलाजमा' जिसको लावनी वाले जिला जवानी कहते हैं। उसके कुछ नमूने देखिए—

पशुओं का जिला—

हाथी हाथा कासिद ने खत पहुंचाया,
दिल शेर हुआ जब पिया मेरा घर आया।

—पं० प्रभुदयाल

शहरों का जिला—

दिल लिया अदा दिखला कर के अब दम बतलाते हो साहब,
किये किसने कानपुर आपके जो ये सितम दिखाते हो साहब।

—उस्ताद नत्थासिंह

तीन जिले एक साथ—

जेवर, कपड़ा, तरकारी।

पाबन्दी है जब से जुल्फ जान के अन्दर, मे० लगा है गाढ़ा दाग दिल पर,
दर्द आलूदा हुआ मेरा दिल यारों वे दिलवर।

—उ० नत्थासिंह

इसको अर्थालंकार के अन्दर श्लेषालंकार माना जा सकता है। यानी जुमानी शब्दों की बन्दिश की जाती है किन्तु हिन्दी में यह मुद्रालंकार माना गया है।

तिसहर्फी—

अलिफ से ये तक की बन्दिश को कहते हैं।

अय आली जिस दिन से तज के गोकुल वो श्याम मथुरा में बस गया है,
विरह में व्याकुल हैं सारी गोपी दरस को जियरा तरस गया है।

—म० अनन्तगिरि जी

ककहरा —

'क' से लेकर 'ह' तक की बन्दिश।

किसी का भी मन रहा नहीं स्थिर समस्त ध्यानिन के ध्यान छूटे,
खुली अचानक समाधि शिव की वो तीक्ष्ण मन्मथ के बान छूटे।

—स्वा० नारायणानन्द

ककहरा और तिसहर्फी उल्टे भी बांधे जाते हैं अर्थात् बजाय 'क' से शुरू करने के 'ह' से शुरू करते हैं, और तिसहर्फी बजाय अलिफ के ये से शुरू किया जाता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्टी तिसहर्फ़ी—

यह मन मेरा अय अलीरी जब से अलक में मोहन की फंस गया है,
ला हासिल जग के हैं काज सारे कहूं क्या विषधर-सा डस गया है।

—अख़्तर

प्रहार क्या कोई करे इस पे जो कृपा दृष्टि हरि हर के तले हो,
प्रसन्न मन उस पुरुष का हर क्षण निशा तथा वासर के तले हो।

—स्वा० नारायणानन्द

दुअंग—

वह कहलाता है जिसमें 'दोनों तरफ़' वही हर्फ़ हो।

जैसे—

फ़ायक है वही वशर जिसका हो हिर्सोहविस से सीना साफ़,
फ़ौरन दीखे, अक्स जाना का गर हो आईना साफ़।

—उ० नत्थासिंह

खयालों में अलिफ से लेकर ये तक दुअंग, चौ अंग,
छै अंग, अठंग तक सभी शायरों ने लिखे हैं एवं,

क से लेकर ह तक के बल्कि ज्ञ तक के लिखे गये हैं—

अठंग

रमा है ररँ का रूप डर में विकार सारे किये निछावर
रखा रुचिर द्वार नौ के पुर में मकार के नर किवार लाकर।

—महेशचन्द

इसी प्रकार ककहरा और तिसहर्फ़ी भी अठंग तक लिखे हैं।

अधर—

वह कहलाता है जिसके पढ़ने में होठ न लगे—

न जाने आली हरी ने कैसी कलह कठिनता हिये ठनी हैं,
निरास करके तजी है दासी की चाह चेरी की चित घनी है।

—पं० रूपकिशोर

अमात्र—

उसको कहते हैं जिसमें मात्रा न आवें—

तज कर असत ग्रहण कर सतपथ मगन रहत मन सर धर रज,
रज धर चरण गहत मन हर्षत कहत मसल सब तज हर भज।

—स्वा० नारायणानन्द

मात्रादार—

जिसका प्रत्येक वर्ण मात्रा वाला हो—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाली भोली तो तेरी पेशानी है,
तू ख़ूबी खासा ख़ूर्वा लासानी है।

—पन्नालाल

वेनुकत—

जिसमें कोई हरफ ऐसा न हो जिसमें नुकता लगता हो—

मलाल हो दूर दिल का सारा अगर दमे वस्त्र आइयेगा,
मुराद का गुल हरा हमारा अदा दिखाकर खिलाइयेगा।

—स्वा० नारायणनन्द

नुक्तेचीन—

जिसमें सब हरफ नुक्ते वाले हों।

नित ज़न्नत जीते ते जीते जीत जीत जच जीन,
निज शेखी शेखी तज शेखी चेत चेत तन चीन।

सिंहावलोकन—

लो ईद है आलम में आज सब कहें कि रोजे सईद है,
सईद है दिन आज का तुम भी मिलो तो क्या कुछ बईद है।

—उ० नत्थासिंह

जंजीरेवन्द—

लटक रही जुल्फें जुल्फों में लट लट में उलझी बिल्कुल,
बिल्कुल सर में बाल-बाल में जाल-जाल में जिसके जुल।

—भौरोंसिंह

लोम विलोम—

वह है जिसमें एक ही मिसरे को उलटकर दूसरा मिसरा बन जाए।

नचै बस गान बजै बन बैंन
न बैन बजै वन गा सब चैन

—दुबे रामप्रसाद

गतागत—

वह है जिसमें उलट के पढ़ने पर भी वही मिसरा वन जाये।

रस रास रचो वन में नव चोर सरा सर,
रच राच रहें नतजे तन हेर चरा चर।

चित्रकाव्य—

इसके उदाहरण देने में ब्लाक बनवाने पड़ेंगे इसलिए नहीं दिये गये हैं। कुछ और सनअतों के नमूने देखिए—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पर'—

इर दोनों तरफ 'पर' निकलता है—

परवर्दिगार को भूल गये हम खेल गये अपनी जां पर,
परवाना नमत दिल जला दिया! नाहक तुज शमये सोजां पर।

—भौरोंसिह

लल—

ललचत लख सखि नन्दलाल लट नागिन सी लट के दरतलल,
ललतादिक नागर रसाल ला सना रही देख नै जिलल।

इसी प्रकार तर, दर, सर आदि भी लिखे गये हैं। कहां तक कहें लावनी में लोगों ने बड़ी दिमागसोजी की है। विस्तार भय से बतौर नमूने के हम इतना ही लिखना पर्याप्त समझते हैं।

लावनी में भाषा समक—

यानी आधी फारसी आधी हिन्दी।

'रकम हम्द रब गश्त वर कलम फर्जवस्फ कर पैगम्बर
रक्षक जनमन भक्षक खल बन अचल कष्ट तन अजर अमर।

—भौरोंसिह

यह भाषा समक भी खूब लिखा गया है। प्रायः सभी शायरों ने लिखा है और बहरें भी इसमें लिखी गई होंगी।

चार जबान—

माई डियर तोबिया शोक भंजन हुण सानूं, कुल अल हम,
मोर जियरवा इकड़े झाला चपो वखद सारकी सनम।

—भौरोंसिह

यहां हम एक खयाल कई जबानों का पूरा लिखते हैं,
हाल गदाये जोशे खावर, गश्ता अजबस गश्ता अबतर,
गुमांरूखतचूं माह मुनव्वर, बवद मरीजद गरददबेहतर।
दर इश्कम दिलदार शुदम बीमार जिवस लाचार,
बल्कि अजवस लाचार, शुदम व हिजरत ख्वार।

हिन्दी—

दयाल तू भय भंजन सुख सागर, निज जन जान कृपा कर,
गये हैं तब सरोज पद जन आकर, कृपासिंधु करुणा कर।
हे जगदीश्वर हे जगदीश्वर हे अघ हारिन जगत उजागर,
दलन खलन दल सकल निशाचर, जगदाता त्राता नट नागर।
मैं अनाथ तुम नाथ गाऊं गुण गाथ,
नाथ तब हाथ रहे नित सुयश अपार, शुदम ब हिजरत ख्वार।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी—

कैन यू गैमे इज यू डोण्ट, नियर, देयर इज माइ डियर,
मिस्ट विसट्र सी यूज सीक्रटो सियर, आर यू माई डीयर।
आई डोण्ट यू मी वी हीयर, नोट मिस्ट ही यू मी नीयर,
माई डियर टू यू लू फीयर, कम हीयर सर माड डीयर।
आई यू लो माई फ्रेण्ड एण्ड यू आर फ्राम मी वेरी फार।।
शुदम व हिजरत ख्वार।
विसादर मुफारिकत से हूं मुजतर, मुजतर हाले बदतर,
परीशां हूं मैं हुआ है हाल वतर, मौत न आवे नजर।
जुल्म न कर इस कदर सितमगर, हिश्र में तेरे ऐ महपैकर।
तंग हूं आया हाल है अवतर, रहम चाहिए करना दिलवर।
जिल्लत अज वस जार जीना दुश्वार तेरे बीमार—
का ऐ बारे गमख्वार शुदम व हिजरत ख्वार।।

इसी प्रकार हफ्त जबान लिखने वालों ने अनेक रंगत खयाल लिखे हैं। हफ्त जवान (1) हिन्दी (2) अंग्रेजी (3) फारसी (4) अरबी (5) पंजाबी (6) बंगाली (7) मराठी आदि हैं किसी-किसी ने गुजराती, पूर्वी वगैरा मिलाकर 9 जवानें तक लिखी हैं। सभी अखाड़ों में प्रायः ऐसे खयाल लिखे गये हैं।

रीति ग्रंथों में हिन्दी कवियों द्वारा यह विषय विस्तारपूर्वक लिखा गया है। इसी प्रकार लावनी वालों ने भी लिखा है—

अरी सहेली धरे हैं सूजे पिरात मम उर के ठाम दो हैं।

—नारायण

यह अज्ञातयौवना का उदाहरण है।

लावनी में ऋतुवर्णन—

कमल कुन्द कचनार केतड़ी केवड़ा कोकाबेलिन में,
बगरों विकट वसन्त विपिन वन वन में हाट हवेलिन में।

—चुन्नी गुरु

लावनी में रूपक—

रूपक भी लावनी वालों ने काफी लिखे हैं। खास कर आध्यात्मिक रूपक लिखने में लावनीबाज किसी से कम न थे। हम यहां दो चार उदाहरण पेश करते हैं—

सन्त सपेरे बने धरे मुख पर विद्या के बीन,
तुरत मन भुजंग वस कर लीन जी।

—म० अनन्तगिरि

लतापक्ष—

एक तरह से भाषा कूट कह सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारिजात रिपु वहे व्योम सुत औशिव के शत्रु ने तनको तायो,
सिंधु सुता पति के बिन अलीरी लतान रिपुगण ने आ सतायो।

—रामप्रसाद 'दुबे'

पहेली—

अबलख गर्रा समन्द सुर्खा सब्जा नहिं जिसकी पासंग,
बेशक देखा सात रंग का पूंछ नदारद चपल तुरन्त।

—भौरोंसिंह

दो अक्षरी—

कलू काल की काल—कालका काली
काली काली।
रोम रोम रमा मुरारी, रमा मेरे मैं मैं राम
लाग लगा गल लाल, लगाली लाली,
लीला लग लाल।

—नारायण

इस तरह के मजमून एक प्रकार का कौतूहल उत्पन्न करते थे। यद्यपि जो आनन्द सादा खयाल में आता है वह इस प्रकार के खयालों में नहीं मिलता, फिर भी अपनी कारीगरी वड़प्पन दिखाने के लिए खासतौर पर ऐसी रचनाएं की गईं थीं।

जबानी गाना—

शुरू में जबानी गाने का रिवाज था। उस समय सिर्फ रंगत से रंगत मिलाकर गाने में ही बड़ा महत्त्व समझते थे। मान लीजिए किसी शख्स को एक रंगत के पच्चीस खयाल जबानी याद हैं वह बहुत बड़ा गाने वाला माना जाता था। लुत्फ तो जबानी गाने में था। गाने वाले का ध्यान लयदारी और स्वर के उतार-चढ़ाव पर रहता था, सिर्फ अपनी स्मरण शक्ति को जागृत रखना ही पर्याप्त था परन्तु पढ़े लिखे लोगों की महत्त्वाकांक्षा बढ़ने पर किताबी गाना शुरू हुआ। किताबी गाने शुरू होने पर रंगत के बजाय रदीफ काफिया लड़ाया जाने लगा लेकिन पहले-पहल किताबी गाने का विरोध भी हुआ।

किताबी गाना

जब से किताबें खोलकर गाने का रिवाज हुआ गाने का मजा ही जाता रहा सिर्फ मजमून पढ़ना रह गया। जिससे कुछ लाभ तो अवश्य हुआ। लाभ यह हुआ कि एक ही जमीन पर अनेकों खयाल लिखे जाने लगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनी में खायतें—

सेज बिछाकर फूलों की गुल रुखों लिया है क्या सोना;
चुभेंगे ऐसे खार अंजामकार होगा रोना।

—उस्ताद नत्थासिंह

इस खयाल में मुल्क बलख के बादशाह की खायत है जो रोज सवा मन फूल अपने बिस्तर पर बिछवाता था। बांदी के व्यंग्य कसने पर अन्त में शाही छोड़कर गदाई पर माइल हुआ।

आज ईद का दिन है हमें तुम अपने पर कुर्बान करो,
कुछ सवाब लो आप इसका कुछ बंदे पर एहसान करो।

—उस्ताद बादल

इस खयाल में हजरत इब्राहीम का जिक्र है एवं जब से कुर्बानी की प्रथा चली उसका पूरा वर्णन है। यानी हजरत इब्राहीम ने आस्तिकता और भावुकता से अपने प्यारे लड़के इस्माइल को कुर्बान करना कुबूल किया था। किन्तु खुदा के हुक्म से फरिश्ते ने इस्माइल की जगह एक दुम्बा ला रखा।

इश्क मार्फत और लावनी—

यह विषय तो लावनी की जान है। हजारों खयाल इश्क मार्फत के लिखे गए हैं। यहां हम बतौर नमूने के कुछ टेकें लिखते हैं—

आपका आशिक आशिक असला परी का है ना हूर का है,
बन्दापर्वर, ये बन्दा तालिब फकत हुजूर का है।

—कविवर 'तालिब'

आंख लगी फिर नींद कहां और सब जाने ये सोते हैं;
मुंह पर अपने डाल दुपट्टा चुपके-चुपके रोते हैं।

× × ×

कभी इश्क में नींद न आवे कभी बेखबर सोते हैं,
मस्तानों का हाल यही कभी हंसते हैं और कभी रोते हैं,

—स्वा० नारायणानन्द

लावनी और वेदान्त—

अखण्ड अद्वैत आत्मा हूं न जीव तिरगुण के जाल का हूं,
न काल जीते न जन्म धारूं मैं ऐसे जोगी का बालका हूं।

—पं० पन्नालाल

तेरे इश्क की मैं से ऐ जानां जिस दिन से ये दिल मसरूर हुआ,
नित इशरत फरहत राहत है कुल रंजोंअलम गम दूर हुआ।

—स्वा० नारायणानन्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावनी का प्रथम दौर—

जब लावनी लिखना शुरू हुआ तो देवताओं की स्तुति, प्रार्थना विशेष रूप से लिखी गई। जैसे—गणेश वन्दना, शिव स्तुति, महावीर स्तुति, राम स्तुति, कृष्ण स्तुति एवं गंगा, यमुना, सरस्वती, दुर्गा, गौरी, महाकाली आदि की स्तुति। इसी तरह से मुस्लिम शायरों ने पैगम्बरों, पीरों, औलियाओं की प्रार्थनाएं, स्तुतियां लिखीं। नमूने देखिए—

अगर बशर अपनी मुक्ति चाहे जबां पे हरदम ये लफ्ज लाए,
नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय।

—गौहर

दूसरा दौर—

इसमें पौराणिक कथाएं एवं ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियां आदि विशेष रूप से लिखी गईं। मुसलमानों की ऐतिहासिक घटनाएं और महापुरुषों की सवानेहउम्री वगैरा भी लिखी गईं।

जैसे—

प्रण विदेह भृगुपति नाराजे बड़े राजों का गुरूर,
साथ धनुष के रामचन्द्र ने किया तोड़ कर चकनाचूर।

—भैरोसिंह

× × ×

शस्त्र गहाऊं आज कृष्ण को भंग प्रतिज्ञा करवाऊं।
सभा सहित पाण्डवों को जीतूं तो गंगासुत कहलाऊं।

—म० रिसालगिर

इसी प्रकार राजा बलि, मोरध्वज, शिव, दधीचि, हरिश्चन्द्र, कर्ण, युधिष्ठिर, दिलीप, रघु आदि की कथाएं लावनी में विशेष रूप से लिखी गईं जो जनता पर विशेष प्रभाव डालती थीं। इन लावनियों के अन्दर धार्मिक भावनाएं जागृत करने और ऐतिहासिक तत्त्व अक्षुण्ण रखने का काफी मसाला रहता था।

तीसरा दौर

तीसरे दौर में राम-कृष्ण की लीलाओं—बाल्यकाल से लेकर उनके अन्तिम समय तक की समस्त घटनाओं को बड़े रोचक और मर्मस्पर्शी ढंग से लिखने का प्रयत्न किया गया है। भाषा की दृष्टि से इसका महत्त्व और बढ़ जाता है जब कि हम उन भावों को सीधी सरल आम फहम भाषा और रोचक छंदों और राग-रागनियों द्वारा जन साधारण में प्रचार हुआ देखते हैं। कला की दृष्टि से भी इसका कम महत्त्व नहीं है नमूना पेश है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा मे कृष्ण जी जब आए,
मन में अति सुख पाये सदा शिव दर्शन को धाये।

—उ० नत्थासिंह

हरि प्रथम बजाई जब बांसुरी वृन्दावन कुंज विहारी ने,
धुनि सुनत अचानक उठि धाई तजे काज सकल वृजनारी ने।

—बाबा बनारसी

राम के भी जन्म से लेकर अनेक घटनाओं का वर्णन जैसे धनुषयज्ञ, अहिल्यातारण, वनवास, केवट सम्वाद, मारीच यानी कपट मृग, जानकी हरण, सुग्रीव मिलाप, लंका दहन, रावण-अंगद संवाद, लक्ष्मणशक्ति, मेघनाद बध, सुलोचना सती आदि कथाओं का बहुत ही रोचक वर्णन खयालों के अन्दर पाया जाता है। दो-चार टेकें बतौर नमूने के हम यहां पेश करते हैं—

बाल तनय बल विपुल देख के सकल निशाचर मन्दर के,
दशकंधर के, खुल गये कपाट कालिब अन्दर के।

—सुन्दरसिंह

किया राम वन गमन मान कर पितु की वानी को,
तापस वेष बनाय चले तज के रजधानी को।

—नारायण

लावनी का चतुर्थ दौर—

इस दौर में नखशिख वर्णन या सरापा अधिक लिखा गया, जिसमें उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की विशेषता रहती थी। शायर या कवि अपने भावों को किसी अलंकार के सहारे ही व्यक्त कर सकता है अथवा कल्पना काम करती है। उदाहरण देखिए—

चार चतुष्पद चार पखेरु चारपुष्प और चारी फल,
श्री राधा वृषभानु-लली के यह सोलह लक्षण उज्ज्वल।

× × ×

इस खयाल में उपमा के आधार पर पशु-पक्षी और फूल-फलों की कल्पना की है।

'लावनी' और 'रिन्द'

हमारे खयाल से उमर खय्याम के पैरोकार ही रिन्द कहलाये। यह भी एक सम्प्रदाय विशेष बन गया था। रिन्द उसे समझना चाहिए जो न तो बुतपरस्ती करे और न नमाज पढ़े, शरीअत से बागी, न देवी को माने न देवता को माने, न कुरान को माने, न औलिया को माने, न वेद को माने, न मस्जिद में जाके सिजदा करे, न मन्दिर में घण्टा बजावे। उपदेशकों, मुल्लाओं, पण्डितों, शेखों, विरहमनों को वेवकूफ समझे और उन्हें खरी-खोटी सुनावे। ऐसे लोगों या जमात

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रिन्दों की जमात कहा जा सकता है। किन्तु रिन्द की सिफत खास और ही हैं और वह यह कि सिवा अपने माशूक के और किसी तरफ नजर उठाके न देखे और हर वक्त इश्क की शराब के नशे में मस्त रहे, अब जरा रिन्दों का कलाम या सिद्धान्त सुनिए—

कभी न उतरेगा अब नशा यह कि पी है और बेशुमार पी है,

दूसरा कहता है—

उठो शेख जी चलो पियें मस्जिद में बैठकर आज शराब

तीसरा कहता है—

बुतखाने में अजान दे मस्जिद में शंख बजाएंगे,
इस्लाम कुफ्र को कर शामिल रिन्दाना मजहब चलाएंगे।

आपका फर्मान भी सुनिए—

भर-भर प्याले दे शराब साकिया सुबह से शाम तलक,
मैं वह पीनेवाला हूं खाली कर दूं गोदाम तलक।

गरज यह है कि 'लावनी' वालों में भी रिन्दों की कमी न थी। फर्क इतना है कि कोई तो इश्के यार की मय से मस्त होते थे और कोई शराब पीकर बकते-झकते थे।

क्योंकि—

उस मय वाले जन्नत में ऐश उड़ाते हैं,
इस मयवाले नाली में पड़े पाते हैं,
उस मय वाले खुशबू से महकते हैं,
इस मय वालों से मगज सड़े जाते हैं,

श्रेय और प्रेय प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का आनन्द इस रिन्दाना कलाम में प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार लावनी में भी रिन्दों ने रंग गांठा, इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों का स्वर एक रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती: जन्म शताब्दी पर एक रिपोर्ट

□ डॉ० हरिगोपाल शास्त्री

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) में दिनांक 23 जनवरी से 24 जनवरी तक खड़ी बोली हिन्दी को परिष्कृत कर राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित कराने वाले कवि, लेखक एवं पत्रकार, भारतीय संस्कृति, जीवन-मूल्य एवं उच्च परम्पराओं के प्रतीक स्वामी नारायणानन्द सरस्वती का जन्म-शताब्दी समारोह सोत्साह मनाया गया। श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में—'स्वामी नारायणानन्द ने 'लावनी का इतिहास' लिखकर हिन्दी-जगत् का बड़ा उपकार किया था।' वास्तव में स्वामी जी का लक्ष्य भारत को ही नहीं अपितु भारती को भी स्वतन्त्र कराना था। इस समारोह के प्रमुख अतिथि श्री रमेशचन्द्र दुबे, संयुक्त शिक्षा-सचिव, उ० प्र० शासन, लखनऊ थे। अध्यक्षता महा मण्डलेश्वर डॉ० श्याम सुन्दरदास शास्त्री ने एवं संयोजन डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश' ने किया।

प्रारम्भ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वरिष्ठ हिन्दी प्रवक्ता (सम्प्रति आचार्य एवं विभागाध्यक्ष) डॉ० राकेश ने स्वामी दर्शनानन्द द्वारा संस्थापित गुरुकुल महाविद्यालय की हिन्दी साहित्य-सेवाओं पर प्रकाश डाला, फिर स्वामी जी के जीवन-चरित पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा—'स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, जिन्होंने उच्च आध्यात्मिक काव्य शक्ति को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और हिन्दी काव्य की एक विशेष विधा, जिसे लावनी या खयाल कहा जाता है जो केवल चंगवाजों की मंडली के बीच ही विद्यमान थी उसे साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का काम स्वामी जी ने किया।'

जन्म-शताब्दी समारोह के मंत्री डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' ने कहा कि—स्वामी जी का साहित्यिक जीवन लावनी से आरम्भ हुआ। बाद में पं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' से मित्रता होने पर उन्होंने घनाक्षरी, सवैया, गीत, ग़ज़ल आदि की भी रचना की। उन्होंने 60-65 वर्ष पूर्व कानपुर से 'कवीन्द्र' और गया जी से 'सन्त-सन्देश' नामक साहित्य-सुधा-समन्वित मासिक पत्र निकाले थे। वे कांग्रेस आन्दोलनों में भी कई बार जेल गए थे। 'स्वदेशी आन्दोलन' पर स्वामी जी ने अनेक रचनाएं लिखीं, 'संजीवनी' नामक काव्य संग्रह (सन् 1921) में संकलित उनके 'स्वदेशी गान' की दो प्रसिद्ध पंक्तियां हैं—

'जियें तो बदन पर स्वदेशी बसन हो।
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो॥'

समारोह के अध्यक्ष डॉ० श्याम सुन्दरदास शास्त्री, श्री राजकुमार शर्मा 'तरुण' (भूतपूर्व विधायक), श्री हरिपालसिंह एडवोकेट प्रधान आर्यसमाज रुड़की, डॉ० हीरालाल, अध्यक्ष केन्द्रीय अध्यापक संगठन (उ० प्र०) तथा प्रो० कमल कान्त 'बुधकर' आदि ने स्वामी जी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

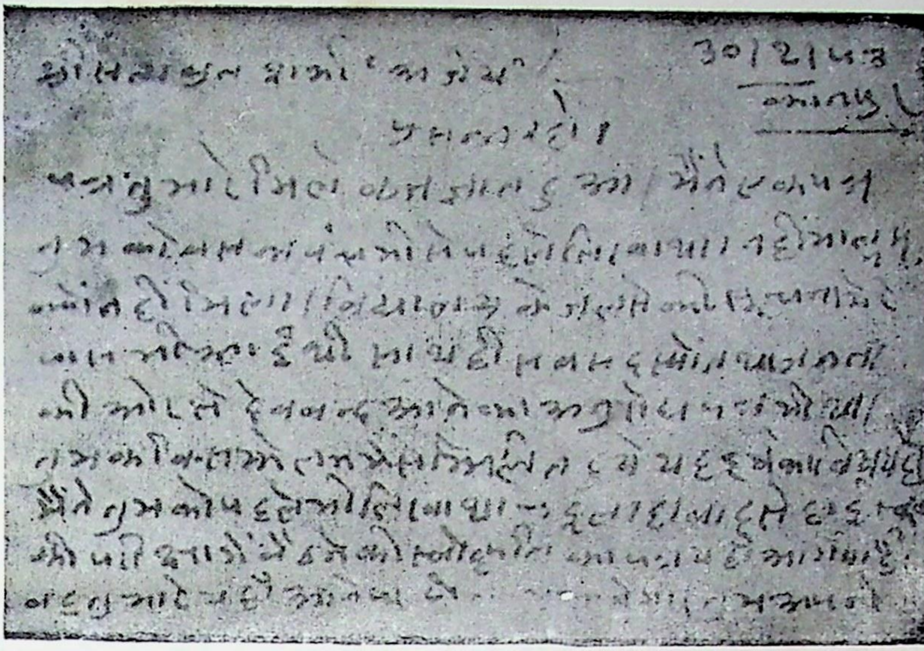
इस कार्यक्रम के प्रमुख अंशों का प्रसारण 29-1-83 को आकाशवाणी के नजीबाबाद केन्द्र द्वारा किया गया। एवं दैनिक नवभारत टाइम्स, दैनिक हिन्दुस्तान, साप्ताहिक जागरण आदि पत्र-पत्रिकाओं ने समारोह के भव्य समाचार प्रकाशित कर अपना अमूल्य सहयोग हमें प्रदान किया।

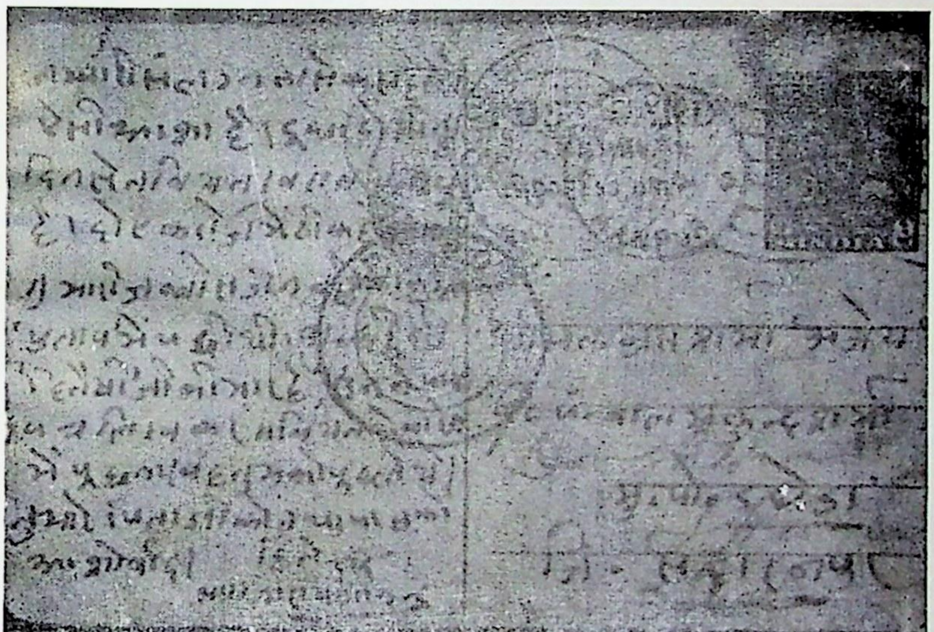
इस अवसर पर हमें पद्मभूषण प० बनारसीदास चतुर्वेदी, अभिनव भरत आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी, डॉ० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमन्त्री श्री प्रभात शास्त्री, सहायक मन्त्री श्री श्यामकृष्ण पाण्डेय, महाकवि गुलाब खण्डेलवाल, श्री श्रीराम शर्मा 'राम', डॉ० सी० आर० स्वामीनाथन, डॉ० नित्यानन्द शर्मा एवं डॉ० जगदीश बाजपेयी आदि महानुभावों के शुभ सन्देश भी प्राप्त हुए, जिनके प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

प्राचार्य
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





(स्वामीजी का पत्र डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' के नाम)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	अशुद्ध	शुद्ध
1	ढर	उर
2	अन्तरतल	अन्तस्तल
4	26.9.56	27.9.56
9	चंगा	चंग
22	उश्द्देस्स	उद्देश्य
24	सदयों	सहृदयों
25	परिशिष्ट	खंड 3
32	अपेक्षा	उपेक्षा
35	क्रोध	बोध
48	अहै	अद्वै
,,	जात	जान
,,	भ्रम	श्रम
,,	जीवन	जोवन
,,	चरम	चश्म
49	आप	आव
50	मतन	यतन
50	हुन्दी	हुन्डी
61	तितहर्फी	तिसहर्फी
,,	समअत	सनअत
65	19 नवम्बर	11 नवम्बर
67	वादु	स्वादु
,,	भाव	भव
,,	महामयी	मोदमयी
72	अक्स्ति	शक्स्ति
,,	गांसे	गांझे
81	अथ	अद्य
82	बजोर	वज़ारे
83	कहे	करे
85	भुवन	श्रवन
86	प्रीत	प्रीत भरत
87	नन्दूमल	नन्हूमल
89	गिरायी	गिरामी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ सं०	अशुद्ध	शुद्ध
,,	तलखत	तलखस्त
90	वृक्ष	वृद
,,	दखुजरी	दरगुजरी
,,	माया	भाया
150	जंगली	जंगलों
151	विहौर	बिठौरा
,,	सतमाना	सतयाना
158	वराट	वराह
,,	मह	भट्ट
166,67,71	शंकरलाल पांडे	शंकरलाल मिश्र
169	हरिक	हीरक
172	भग	भज
188	पुनीन्द्रपाल सिंह	मुनीन्द्रपाल सिंह
190	नवला	नलवा
224	विधा	विद्या
225	प्रजा	पुजा
226	पथि	पार्थ
226	में	में जप मैं
227	वदवन्त	वादवन्त
228	बी	बीज
249	वदान्तवादी	वेवान्तवादी
,,	वशकीमती	वेशकीमती
250	मोहकप	मोहरूप
,,	छन्द	मन्द
253	बढ़ा	बदा
255	गभ	गन्न
259	रदीफ	रदीफ
264	कैह	कंह
,,	जिठा	जिह्वा
267	वस्त्र	वस्ल
268	बवद	बुबद
269	गैमे	गैट
270	तुरन्त	तुरंग

Central Library 185472 Gurukula Kangri (Deemed to be Un.) Haridwar

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R.P.S

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या 097 ARY-S

आगत संख्या 185472

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

097

185472

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक ऐसे स्वामी की कहानी है जिसमें देश-भक्ति का जोश, पत्रकारिता और साहित्य की प्रतिभा और चरित्र की मंगलता का अद्भुत समन्वय था।

—अभीत अमर उजाला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar